PARAMOUNT Mission IAS
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

स्वतंत्रता के बाद का भारत

GS MAINS

PAPER 1

2017

PARAMOUNT IAS
Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

स्वतंत्रता के बाद का भारत

विषय-वस्तु

1. राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया और इसकी चुनौतियाँ. 1-15
2. संविधान और इसका विकास. 16-25
3. भारत की विदेशी नीति. 26-60
4. भारत में नियोजित विकास का आरंभ. 61-77
5. भारत में दलीय व्यवस्था. 78-101
6. नेहरू के बाद का काल (1964-84). 102-124
7. इंदिरा गांधी के बाद का काल. 125-134
8. भारतीय राजनीति में नए बदलाव. 135-147
9. जन आंदोलनों का उदय. 148-161
10. क्षेत्रीय आकांक्षाएं. 162-171

अध्याय

1

राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया और इसकी चुनौतियाँ

परिचय

भारत राष्ट्र एक ठोस ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज है और इसलिए यह लंबे समय से एक रचना प्रक्रिया से गुजर रहा है। भारतीय राष्ट्रवाद की जड़े इसके इतिहास और स्वंतत्रता-संघर्ष के अनुभवों में बहुत गहरी जमी हुई है। सन् 1947 के 14-15 अगस्त की मध्यरात्रि को हिन्दुस्तान आजाद हुआ। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरु ने इस रात संविधान सभा के एक विशेष सत्र को संबोधित किया था। उनका यह प्रसिद्ध भाषण 'भाग्यवधू से चिर-प्रतीक्षित भेंट' या 'ट्रिस्ट विद् डेस्टिनी' के नाम से जाना गया।

- हमारी आजादी की लड़ाई में कई आवाजें, बुलंद थीं। बहरहाल, दो बातों पर सबकी सहमति थी- पहली बात यह कि आजादी के बाद देश का शासन लोकतांत्रिक सरकार के जरिए चलाया जाएगा और दूसरी यह कि सरकार सबके भले के लिए काम करेगी। इस शासन में गरीबों और कमजोर वर्गों का खास ख्याल रखा जाएगा।
- हिन्दुस्तान सन् 1947 में जिन हालात के बीच आजाद हुआ, शायद उस वक्त कोई भी मुल्क वैसे हालात में आजाद नहीं हुआ था। आजादी मिली लेकिन देश के बंटवारे के साथ। सन् 1947 का साल अभूतपूर्व हिंसा, विस्थापन और त्रासदी का साल था।
- आजाद हिन्दुस्तान को इन्हीं परिस्थितियों में अपने बहुविध लक्ष्यों को हासिल करने की यात्रा शुरू करनी पड़ी। आजादी के उन उथल-पुथल भरे दिनों में हमारे नेताओं का ध्यान इस बात से नहीं भटका कि यह नया राष्ट्र चुनौतियों की चपेट में है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत के भविष्य को लेकर गंभीर सवाल खड़े थे:

- क्या भारत एक रह पाएगा?
- क्या ऐसा करने के लिए भारत सिर्फ राष्ट्रीय एकता की बात पर सबसे ज्यादा जोर देगा और बाकी उद्देश्यों को तिलांजलि दे देगा?
- क्या ऐसे में हर क्षेत्रीय और उप-क्षेत्रीय पहचान को खारिज कर दिया जाएगा?
- उस वक्त का सबसे तीखा और चुभता हुआ एक सवाल यह भी थी कि भारत की क्षेत्रीय अखण्डता को कैसे हासिल किया जाए?

मुख्य तौर पर भारत के सामने तीन तरह की चुनौतियां थीं।

- **पहली** और तात्कालिक चुनौती एकता के सूत्र में बंधे एक ऐसे भारत को गढ़ने की थी जिसमें भारतीय समाज की सारी विविधताओं के लिए जगह हो। भारत अपने आकार और विविधता में किसी महादेश के बराबर था। यहां अलग-अलग बोली बोलने वाले लोग थे, उनकी संस्कृति अलग थी और वे अलग-अलग धर्मों के अनुयायी थे। उस वक्त आमतौर पर यही माना जा रहा था कि इतनी विविधताओं से भरा कोई देश ज्यादा दिनों तक एकजुट नहीं रह सकता।
- **दूसरी** चुनौती लोकतंत्र को कायम करने की थी। आप जानते हैं कि संविधान में मौलिक अधिकारों की गारंटी दी गई है और हर नागरिक को मतदान का अधिकार दिया गया है। भारत ने संसदीय शासन पर आधारित प्रतिनिधित्वमूलक लोकतंत्र को अपनाया। इन विशेषताओं से यह बात सुनिश्चित

हो गई कि लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर राजनीतिक मुकाबले होंगे। लोकतंत्र को कायम करने के लिए लोकतांत्रिक संविधान जरूरी होता है लेकिन इतना काफी नहीं था। चुनौती यह भी थी कि संविधान से मेल खाते लोकतांत्रिक व्यवहार-बरताव चलन में आएं।

- **तीसरी** चुनौती थी ऐसे विकास की जिससे समूचे समाज का भला होता हो न कि कुछ एक तबकों का। इस मोर्चे पर भी संविधान में यह बात साफ कर दी गई थी कि सबके साथ समानता का बरताव किया जाए और सामाजिक रूप से वंचित तबकों तथा धार्मिक-सांस्कृतिक अल्पसंख्यक समुदायों को विशेष सुरक्षा दी जाए। संविधान ने 'राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों' के अंतर्गत लोक-कल्याण के उन लक्ष्यों को भी स्पष्ट कर दिया था जिन्हें राजनीति को जरूर पूरा करना चाहिए। असली चुनौती आर्थिक विकास तथा गरीबी के खात्मे के लिए कारगर नीतियों को तैयार करने की थी तथा स्वतंत्रता के तुरंत पश्चात राष्ट्र-निर्माण की चुनौती इन सबसे प्रमुख थी।

विस्थापन और पुनर्वास

14-15 अगस्त, सन् 1947 को एक नहीं बल्कि दो राष्ट्र- भारत और पाकिस्तान अस्तित्व में आए। ऐसा 'विभाजन' के कारण हुआ। ब्रिटिश इंडिया को **'भारत'** और **'पाकिस्तान'** के रूप में बांट दिया गया।

- मुस्लिम लीग ने 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' की बात की थी। इस सिद्धांत के अनुसार भारत किसी एक कौम का नहीं बल्कि 'हिंदू' और 'मुसलमान' नाम की दो कौमों का देश था और इसी कारण मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए एक अलग देश यानी पाकिस्तान की मांग की।
- कांग्रेस ने 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' तथा पाकिस्तान की मांग का विरोध किया। बहरहाल, सन् 1940 के दशक में राजनीतिक मोर्चे पर कई बदलाव आए। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच राजनीतिक प्रतिस्पर्धा तथा ब्रिटिश-शासन की भूमिका जैसी कई बातों का जोर रहा।

विभाजन की प्रक्रिया

देश विभाजन के समय यह निर्णय हुआ कि अब तक जिस भू-भाग को 'इंडिया' के नाम से जाना जाता था उसे 'भारत' और 'पाकिस्तान' नाम के दो देशों के बीच बांट दिया जाएगा। यह विभाजन दर्दनाक तो था ही, साथ ही इस पर फैसला करना और अमल में लाना और भी कठिन था। यह निर्धारित किया गया कि विभाजन में धार्मिक बहुसंख्या को विभाजन का आधार बनाया जाएगा। इसके मायने यह थे कि जिन इलाकों में मुसलमान बहुसंख्यक थे वे इलाके 'पाकिस्तान' के भू-भाग होंगे और शेष हिस्से 'भारत' कहलाएंगे।

- 'ब्रिटिश भारत' में कोई एक भी इलाका ऐसा नहीं था जहां मुसलमान बहुसंख्यक हों। ऐसे दो इलाके थे जहां मुसलमानों की आबादी ज्यादा थी। एक इलाका पश्चिम में था तो दूसरा इलाका पूर्व में। ऐसा कोई उपाय न था कि इन दोनों इलाकों को जोड़कर एक जगह कर दिया जाए। इसे देखते हुए फैसला हुआ कि पाकिस्तान में दो इलाके शामिल होंगे यानी पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान तथा इनके बीच में भारतीय भू-भाग का एक बड़ा विस्तार रहेगा। दूसरी बात यह कि मुस्लिम-बहुल हर इलाका पाकिस्तान में जाने को राजी हो, ऐसा भी नहीं था। खान अब्दुल गफ्फार खान पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के निर्विवाद नेता थे। उनकी प्रसिद्धि 'सीमांत गांधी' के रूप में थी और वे 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' के एकदम खिलाफ थे। उनकी आवाज की अनदेशी की गई और 'पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत' को पाकिस्तान में शामिल मान लिया गया।
- 'ब्रिटिश-भारत' के मुस्लिम-बहुल प्रांत पंजाब और बंगाल में अनेक हिस्से बहुसंख्यक गैर-मुस्लिम आबादी वाले थे। ऐसे में फैसला हुआ कि इन दोनों प्रांतो में भी बंटवारा धार्मिक बहुसंख्यकों के आधार पर होगा और इसमें जिले अथवा उससे निचले स्तर के प्रशासनिक हलके को आधार माना जाएगा।
- इसी समस्या से जुड़ी हुई सबसे महत्वपूर्ण चुनौती 'अल्पसंख्यकों' की थी। सीमा के दोनों तरफ 'अल्पसंख्यक' थे, जो इलाके अब पाकिस्तान में हैं वहां लाखों की संख्या में हिन्दू और सिख आबादी थी। ठीक इसी तरह पंजाब और बंगाल के भारतीय भू-भाग में भी लाखों की संख्या में मुस्लिम आबादी थी। दिल्ली और उसके आस-पास के इलाकों में भी मुसलमानों की एक बड़ी आबादी थी। ये सब लोग एक तरह से सांसत में थे। इन लोगों ने पाया कि हम तो अपने ही घर में विदेशी बन गए। जिस जमीन पर वे और उनके पुरखे सदियों से आबाद रहे उसी जमीन पर वे 'विदेशी' बन गए थे।

PARAMOUNT IAS
Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE

जैसे ही यह बात साफ हुई कि देश का बंटवारा होने वाला है वैसे ही दोनों तरफ के अल्पसंख्यकों पर हमले होने लगे। कोई भी इस बात का अनुमान नहीं लगा सका था कि यह समस्या विकट रूप धारण करने जा रही है। इस कठिनाई से उबरने के लिए किसी के पास कोई योजना भी नहीं थी। शुरू-शुरू में लोग और नेता यही मानकर चल रहे थे कि हिंसा की घटनाएं अस्थाई हैं और जल्दी ही इनको काबू में कर लिया जाएगा। लेकिन, बड़ी जल्दी हिंसा नियंत्रण से बाहर हो गई। दोनों तरफ के अल्पसंख्यकों के पास एकमात्र रास्ता यही बचा था कि वे अपने-अपने घरों को छोड़ दें। कई बार तो उन्हें ऐसा चंद घंटो के भीतर करना पड़ा।

विभाजन के परिणाम

सन् 1947 में बड़े पैमाने पर एक जगह की आबादी दूसरी जगह जाने को मजबूर हुई थी। आबादी का यह स्थानांतरण आकस्मिक, अनियोजित और त्रासदी से भरा था। मानव-इतिहास के अब तक ज्ञात सबसे बड़े स्थानांतरणों में से यह एक था। धर्म के नाम पर एक समुदाय के लोगों ने दूसरे समुदाय के लोगों को बेरहमी से मारा। लाहौर, अमृतसर और कलकत्ता जैसे शहर सांप्रदायिकता में तब्दील हो गए।

- लोग अपना घर-बार छोड़ने के लिए मजबूर हुए। वे सीमा के एक तरफ से दूसरी तरफ गए और इस क्रम में लोगों को बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। दोनों ही तरफ के अल्पसंख्यक अपने घरों में भाग खड़े हुए और अक्सर अस्थाई तौर पर उन्हें शरणार्थी शिविरों में पनाह लेनी पड़ी।
- 'विभाजन' में सिर्फ संपदा, देनदारी और परिसंपत्तियों का ही बंटवारा नहीं हुआ। इस 'विभाजन' में दो समुदाय जो अब तक पड़ोसियों की भांति रहते आ रहे थे, हिंसक अलगाव का शिकार हुए। वित्तीय संपदा के साथ-साथ टेबल, कुर्सी, टाईपराइटर और पुलिस के वाद्ययंत्रों तक का बंटवारा हुआ था। सरकारी और रेलवे के कर्मचारियों का भी बंटवारा हुआ। अब तक साथ-साथ रहते आए दो समुदायों का यह एक हिंसक और भयावह विभाजन था। अनुमान किया जाता है कि विभाजन के कारण 80 लाख लोगों को अपना घर-बार छोड़कर सीमा-पार जाना पड़ा। विभाजन की हिंसा में तकरीबन पांच से दस लाख लोगों ने अपनी जान गंवाई।
- ऐसे में सवाल यह था कि भारत अपने मुसलमान नागरिकों तथा दूसरे धार्मिक अल्पसंख्यकों मसलन सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी और यहूदियों के साथ क्या बरताव करे? बंटवारे के कारण हिंदू और मुसलमानों के बीच तनाव पहले से ही कायम था।
- इन संघर्षों के साथ प्रतिस्पर्धी राजनीतिक हित जुड़े थे। मुस्लिम लीग का गठन मुख्य रूप से औपनिवेशिक भारत में मुसलमानों के हितों की रक्षा के लिए हुआ था। मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए अलग राष्ट्र की मांग करने के एतबार से अग्रणी थी। ठीक इसी तरह कुछ और संगठन भी थे जो भारत को हिंदू राष्ट्र बनाने के लिए हिंदुओं को लामबंद करने की कोशिश में लगे थे।
- भारत की कौमी सरकार के अधिकतर नेता सभी नागरिकों को समान दर्जा देने के हिमायती थे चाहे नागरिक किसी भी धर्म का हो। वे भारत को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में नहीं देखना चाहते थे जहां किसी एक धर्म के अनुयायियों को दूसरे धर्मावलंबियों के ऊपर वरीयता दी जाए अथवा किसी एक धर्म के विश्वासियों के मुकाबले बाकियों को हीन समझा जाता हो। वे मानते थे कि नागरिक चाहे जिस धर्म को माने, उसका दर्जा बाकी नागरिकों के बराबर ही होना चाहिए। नागरिकता की कसौटी धर्म को नहीं बनाया जाना चाहिए। हमारे नेतागण धर्मनिरपेक्ष राज्य के आदर्श के हिमायती थे। उनके इस आदर्श की अभिव्यक्ति भारतीय संविधान में हुई।

भारतीय रियासतें, एकीकरण एवं विलय

स्वतंत्रता के समय भारतीय रियासतों की संख्या 562 थी तथा इनके अंतर्गत 7,12,508 वर्ग मील का क्षेत्र था। इन भारतीय रियासतों में से कुछ रियासतें तो अत्यंत छोटी थीं, जैसे- बिलबारी, जिसकी जनसंख्या केवल 27 थी तथा वार्षिक आय मात्र 8 रु.। जबकि कुछ रियासतें अत्यंत बड़ी थीं, जैसे- हैदराबाद (लगभग इटली के बराबर) जिसकी जनसंख्या 1 करोड़ 40 लाख थी तथा आय 8.5 करोड़ रुपये वार्षिक। ये रियासतें भारतीय प्रायद्वीप के अल्प उर्वर एवं दुर्गम प्रदेशों में स्थित थीं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने विजय अभियान में महत्वपूर्ण तटीय क्षेत्रों, बड़ी-बड़ी नदी घाटियों- जो कि नौ-परिवहन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण थीं, अत्यधिक उर्वर प्रदेश, जहां धनाढ्य लोग निवास

PARAMOUNT
FORE THE ABOVE
Mission IAS
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

करते थे तथा दूर-दराज के दुर्गम प्रदेश, जिनकी भौगोलिक संरचना अत्यधिक जटिल थी तथा उर्वरता की दृष्टि से ये प्रदेश निर्धन थे, इन सभी को अपने अधीन कर लिया।

- जिन कारकों ने ईस्ट इंडिया कंपनी को सुदृढ़ बनाया प्राय: वही कारक इन रियासतों के अस्तित्व में आने के लिये उत्तरदायी थे। इनमें से बहुत सी रियासतें स्वायत्त एवं अर्द्ध-स्वायत्त रूप में अपने अस्तित्व को बनाये हुयीं थीं तथा संबंधित भू-क्षेत्रों में शासन कर रही थीं। कंपनी ने इन रियासतों के आपसी संघर्ष तथा आंतरिक दुर्बलता से लाभ उठाकर इन्हें अपने नियंत्रण में ले लिया। यद्यपि कंपनी ने अलग-अलग रियासतों के प्रति अलग-अलग नीतियां अपनायीं। कुछ को उसने प्रत्यक्ष रूप से अधिग्रहित कर लिया तथा कुछ पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण बनाये रखा। इन भारतीय रियासतों के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी के संबंधों को निम्न अवस्थाओं में विश्लेषित किया जा सकता है-

ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारतीय रियासतों से समानता प्राप्त करने के लिये संघर्ष 1740-1765

यह संघर्ष आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंदिता के रूप में तब प्रारंभ हुआ, जब डूप्ले ने भारतीय रियासतों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की नीति अपनायी। अपने व्यापारिक हितों की रक्षा के लिये अंग्रेजों ने भी डूप्ले की नीति का अनुसरण किया तथा अपनी राजनीतिक सत्ता को सिद्ध करने के लिये अर्काट का घेरा (1751) डाल दिया।

- प्लासी के युद्ध (1757) के पश्चात उसने बंगाल के नवाबों को अपने हाथों की कठपुतली बना लिया। 1765 में मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय से बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी का अधिकार प्राप्त होने पर कंपनी की स्थिति में अत्यधिक वृद्धि हुयी। इस अधिकार से कंपनी की स्थिति, राजस्व वसूल करने वाले अन्य मुगल गवर्नरों के समान हो गयी तथा अब उसे अन्य भारतीय रियासतों के समान समानता का अधिकार प्राप्त हो गया।

मध्य राज्य अथवा घेरे की नीति 1765-1813

कंपनी की इस नीति की झलक वारेन हेस्टिंग्स के मैसूर तथा मराठों के साथ युद्ध से मिली, जब उसने अपने राज्य के चारों ओर मध्य राज्य बनाने का प्रयत्न किया। कंपनी को इस समय मुख्य भय मराठों एवं अफगान आक्रांताओं के आक्रमण से था (इसीलिये कंपनी ने बंगाल की रक्षा के निमित्त अवध की रक्षा व्यवस्था का दायित्व संभाल लिया)।

- वैलेजली की सहायक संधि की नीति घेरे की नीति का ही विस्तार था, जिसका उद्देश्य भारतीय रियासतों को अपनी रक्षा के लिये कम्पनी पर निर्भर करने के लिये बाध्य करना था। हैदराबाद, अवध एवं मैसूर जैसी विशाल रियासतों ने वैलेजली की सहायक संधि को स्वीकार किया, जिससे अंग्रेजी प्रभुसत्ता की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुयी।

अधीनस्थ पृथक की नीति 1813-1857

वारेन हेस्टिंग्स की नीतियों के फलस्वरूप अंग्रेजों की साम्राज्यवादी भावनायें जागृत हो उठीं तथा सर्वश्रेष्ठता का सिद्धांत विकसित होना प्रारंभ हो गया। भारतीय रियासतों से संबंधों का आधार अधीनस्थ सहयोग तथा कंपनी की सर्वश्रेष्ठता को स्वीकार करने की नीति थी न कि पारस्परिक समानता पर आधारित मैत्रीपूर्ण संबंध। इस नयी नीति के तहत रियासतों ने अपनी समस्त बाह्य संप्रभुता कम्पनी के अधीन कर दी। हालांकि अपने आंतरिक मामलों में वे पूर्ण स्वतंत्र थीं। प्रारंभ में ब्रिटिश रेजीडेन्ट कम्पनी, एवं भारतीय रियासतों के मध्य सम्पर्क सूत्र की भूमिका निभाता था। किंतु धीरे-धीरे रियासतों के आंतरिक प्रशासन में उसके प्रभाव में वृद्धि होने लगी।

- वर्ष 1833 के चार्टर एक्ट से कम्पनी की समस्त व्यापारिक शक्तियां समाप्त हो गयीं तथा अब वह पूर्णरूपेण एक राजनीतिक शक्ति के रूप में कार्य करने लगी। रियासतों के प्रति कम्पनी की नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह किया गया कि उत्तराधिकार के मसले पर अब उसे कम्पनी की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक था। कालांतर में कम्पनी ने उनके मंत्रियों तथा अधिकारियों की नियुक्ति में भी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया।
- वर्ष 1834 में कंपनी के डायरेक्टरों ने रियासतों के विलय संबंधी एक विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किया, जिसके अनुसार जब कभी और जहां कहीं संभव हो रियासतों का कंपनी में विलय कर लिया जाये। लार्ड डलहौजी के विलय के सिद्धांत द्वारा लगभग आधा दर्जन रियासतें अंग्रेजी साम्राज्य में विलय कर ली गयीं, जिनमें सतारा एवं नागपुर जैसी बड़ी रियासतें भी सम्मिलित थीं। इन सभी का सम्मिश्रण ही कंपनी की सर्वश्रेष्ठता थी।

PARAMOUNT IAS
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ADVANCE

अधीनस्थ संघ की नीति 1857-1935

वर्ष 1858 में ब्रिटिश ताज द्वारा भारत का शासन कंपनी से अपने हाथों में लेने पर भारतीय रियासतों तथा सरकार के संबंधों की परिभाषा अधिक स्पष्ट हो गयी।

- वर्ष 1857 के विद्रोह में भारतीय रियासतों की कम्पनी के प्रति राजभक्ति एवं निष्ठा तथा भविष्य में किसी राजनीतिक आंदोलन को रोकने में उसकी शक्ति के उपयोग की संभावना के मद्देनजर रियासतों के विलय की नीति त्याग दी गयी। अब नयी नीति, शासक को कुशासन के लिये दंडित करने या आवश्यकता पड़े तो अपदस्थ करने की थी न कि पूरी रियासत को विलय करने की।
- वर्ष 1858 के पश्चात नाममात्र का मुगल शासन भी समाप्त हो गया। अब ताज ही भारत की सर्वोच्च एवं असंदिग्ध शक्ति के रूप में भारत में उपस्थित था। अत: सभी उत्तराधिकारियों को ताज की स्वीकृति लेना आवश्यक था। अब गद्दी पर शासक का पैतृक अधिकार नहीं रह गया था अपितु अब यह सर्वश्रेष्ठ शक्ति से एक उपहार के रूप में शासकों को मिलती थी। क्योंकि भारतीय राजाओ और ताज के बीच बराबरी की भावना सदा के लिए समाप्त हो गयी थी।
- वर्ष 1876 में महारानी विक्टोरिया द्वारा कैसर-ए-हिन्द (भारत की साम्राज्ञी) की उपाधि धारण करने के बाद तो इस बात पर नवीन मुहर लग गयी कि अब भारतीय राज्यों की संप्रभुता समाप्त हो चुकी है तथा ब्रिटिश ताज ही भारत में सर्वश्रेष्ठ है। अब सरकार को रियासतों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार भी मिल गया था, चाहे वह हस्तक्षेप महाराजा के हितों की रक्षा के लिये हो अथवा उसकी प्रजा के हित के लिये या अंग्रेजों के हितों के लिये ही अथवा भारत के हित के लिये हो।
- आधुनिक संचार व्यवस्था, रेलवे, सड़कें, टेलीग्राफ, नहरें, पोस्ट-ऑफिस, प्रेस तथा भारतीय जनमत ने भी अंग्रेजों को भारतीय रियासतों के मामलों में हस्तक्षेप करने तथा उनके अधिकार को कम करने में सहायक परिस्थितियों की भूमिका निभायी।
- भारत सरकार इन रियासतों के बाहरी और विदेशी संबंधों में भी पूर्ण नियंत्रण रखती थी। सरकार इनकी ओर से स्वयं युद्ध की घोषणा कर सकती थी, तटस्थता कर सकती थी एवं शांति संधि का प्रस्ताव पारित कर सकती थी। इस संबंध में बटलर आयोग (जो केन्द्र राज्य संबंध से संबंधित है) ने 1927 में कहा कि 'अंतरराष्ट्रीय मामलों में रियासतों के प्रदेश अंग्रेजी भारत के प्रदेश, हैं और रियासतों के नागरिक अंग्रेजी नागरिकों के समान है'।

भारतीय रियासतों के प्रति कर्जन की नीति

कर्जन ने विभिन्न संधियों को विस्तृत रूप से परिभाषित करके यह कहना प्रारंभ कर दिया कि भारतीय राजाओं की अपनी प्रजा के सेवक के रूप में गवर्नर-जनरल से सहयोग करते हुये सरकार की विभिन्न योजनाओं में भागीदारी निभाना चाहिये। उसने संरक्षण और अनाधिकार निरिक्षण की नीति अपनायी। उसका मत था कि भारतीय रियासतों एवं सरकार के मध्य संबंध न सामंतशाही और न ही संघीय व्यवस्था पर आधारित होने चाहिये।

- इनका आधार विभिन्न संधियां भी नहीं होनी चाहिए अपितु इन्हें विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में एक निश्चित समय में एक सामान्य स्वरूप की ओर विकसित होना चाहिये।
- इस नवीन प्रवृत्त के फलस्वरूप सभी रियासतों की स्थिति लगभग एक जैसी हो गयी, चाहे वे संधि रियासतें हों या भिन्न-भिन्न अधिकार प्राप्त रियासतें। सभी रियासतें, अंग्रेजी सरकार पर निर्भर थीं तथा भारतीय राजनैतिक व्यवस्था का अभिन्न अंग समझी जाती थीं।

वर्ष 1905 के पश्चात

सरकार ने भारतीय रियासतों के प्रति सौहार्दपूर्ण सहकारिता की नीति अपनायी। भारत में राजनीतिक अस्थिरता के भय से अब सरकार ने प्रतिरक्षात्मक नीति का अनुसरण किया। मोटंग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों की सिफारिशों के आधार पर एक सलाहकारी एवं परामर्शदात्री निकाय के रूप में 'नरेंद्र मंडल' का गठन किया गया। इसका किसी रियासत के आंतरिक मामलों से कोई संबंध नहीं था और न ही यह मंडल रियासतों के समकालीन अधिकारों एवं उनकी स्वतंत्रता के विषय में कोई सुझाव दे सकता था और न ही यह इन मुद्दों पर किसी प्रकार का कोई वाद-विवाद कर सकता था।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE

नरेंद्र मंडल में प्रतिनिधित्व के लिये रियासतों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया-

1. सीधे प्रतिनिधित्व वाली रियासतें- 109
2. सीमित वैधानिक एवं क्षेत्राधिकार वाली रियासतें, जिन्हें प्रतिनिधित्व चुनने का अधिकार था- 127
3. सामंतशाही जागीरें या जागीरें- 309

किंतु संप्रभुता एवं सर्वश्रेष्ठता के विस्तार के मुद्दे की अभी भी व्याख्या नहीं की गयी थी। सरकार तथा रियासतों के संबंधों के परीक्षण तथा इन्हें परिभाषित करने के लिये भारत सरकार ने 1927 में बटलर समिति की नियुक्ति की। इस समिति ने निम्न सिफारिशें दीं-

- सर्वश्रेष्ठता, सर्वश्रेष्ठ ही रहनी चाहिये तथा इसे बदलती हुयी परिस्थितियों के अनुकूल अपना दायित्व निभाना चाहिये। अस्पष्ट मामलों में रीति-रिवाज महत्वपूर्ण होते हैं।
- भारतीय रियासतों को उनके शासकों की अनुमति के बिना किसी ऐसी भारतीय सरकार को नहीं सौंपना चाहिये जो भारतीय विधानसभा के प्रति उत्तरदायी हों।
- वायसराय, रियासतों के संबंध संचालन हेतु ताज का प्रतिनिधि होना चाहिये।

किंतु सर्वश्रेष्ठता को अभी भी स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया था। अंततः रूढ़िवादी रिवाज, नरेन्द्रों की निहित अनुमति तथा ताज के विशेषाधिकारियों पर पल्लवित होता रहा।

संघ की नीति वर्ष 1935 से वर्ष 1947 तक

वर्ष 1935 के भारत सरकार अधिनियम में, प्रस्तावित समस्त भारतीय संघ की संघीय विधानसभा में भारतीय नरेंद्रों को 375 में से 125 स्थान दिये गये तथा राज्य विधान परिषद के 260 स्थानों में से 104 स्थान उनके लिये सुरक्षित किये गये। योजना के अनुसार, यह संघ तब अस्तित्व में आना था, जब परिषद में आधे स्थानों वाली रियासतें तथा कम से कम आधी जनसंख्या प्रस्तावित संघ में सम्मिलित होने की स्वीकृति दें।

चूंकि पर्याप्त रियासतों ने इस संघ में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया इसलिये संघ अस्तित्व में नहीं आ सका तथा सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ हो गया।

रियासतों का एकीकरण और विलय

द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ होने के पश्चात भारत में तीव्र राजनैतिक गतिविधियां प्रारंभ होने तथा कांग्रेस द्वारा असहयोग की नीति अपनाये जाने के कारण ब्रिटिश सरकार ने क्रिप्स मिशन (1942), वैवेल योजना (1945), कैबिनेट मिशन (1946) तदुपरांत एटली की घोषणा (1947) द्वारा गतिरोध को हल करने का प्रयत्न किया।

- क्रिप्स मिशन ने भारतीय रियासतों की सर्वश्रेष्ठता को भारत के किसी अन्य राजनीतिक दल को देने की संभावना से इंकार कर दिया। रियासतों ने पूर्ण संप्रभुता संपन्न एक अलग गुट बनाने या अन्य इकाई बनाने की विभिन्न संभावनाओं पर विचार-विमर्श किया- जो कि भारत के राजनीतिक परिदृश्य में एक तीसरी शक्ति के रूप में कार्य करे।
- 3 जून की माउंटबैटन योजना तथा एटली की घोषणाओं में रियासतों को यह अधिकार दिया गया कि वे भारत या पाकिस्तान किसी भी डोमिनियन में सम्मिलित हो सकती हैं। लार्ड माउंटबैटन ने रियासतों को संप्रभुता का अधिकार देने या तीसरी शक्ति के रूप में मान्यता देने से स्पष्ट तौर पर इंकार कर दिया।
- राष्ट्रीय अस्थायी सरकार में रियासत विभाग के मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल, जिन्हें मंत्रालय के सचिव के रूप में वी.पी. मेनन की सेवायें प्राप्त थीं, भारतीय रियासतों से देशभक्तिपूर्ण अपील की कि वे अपनी रक्षा, विदेशी मामले तथा संचार अवस्था को भारत के अधीनस्थ बना कर भारत में सम्मिलित हो जायें।
- सरदार पटेल ने तर्क दिया कि चूंकि ये तीनों ही मामले पहले से ही ताज की सर्वश्रेष्ठता के अधीन थे तथा रियासतों का इन पर कोई नियंत्रण भी नहीं था अतः रियासतों के भारत में सम्मिलित होने से उनकी संप्रभुता पर कोई आंच नहीं आयेगी। 15 अगस्त 1947 के अंत तक 136 क्षेत्राधिकार रियासतें भारत में सम्मिलित हो चुकी थीं। किंतु कुछ अन्य ने स्वयं को इस व्यवस्था से अलग रखा।

कुछ महत्वपूर्ण रियासतें

जूनागढ़

जूनागढ़ का मुस्लिम नवाब रियासत को पाकिस्तान में सम्मिलित करना चाहता था किंतु हिंदू जनसंख्या भारत में सम्मिलित होने के पक्ष में थी। जनता ने भारी बहुमत से भारत में सम्मिलित होने के पक्ष में निर्णय दिया।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

कश्मीर

जम्मू एवं कश्मीर राज्य का शासक हिन्दू एवं जनसंख्या मुस्लिम बहुसंख्यक थी। यहां का शासक भी कश्मीर की संप्रभुता को बनाये रखने के पक्ष में था तथा भारत या पाकिस्तान किसी भी डोमिनियन में नहीं सम्मिलित होना चाहता था। किंतु कुछ समय पश्चात ही नवस्थापित पाकिस्तान ने कबाइलियों को भेजकर कश्मीर पर आक्रमण कर दिया तथा कबाइली तेजी से श्रीनगर की ओर बढ़ने लगे। शीघ्र ही पाकिस्तान ने अपनी सेनायें भी कबाइली आक्रमणकारियों के समर्थन में कश्मीर भेज दी।

- अंत में विवश होकर कश्मीर के शासक ने 26 अक्टूबर 1947 को भारत के साथ विलय-पत्र (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर कर दिये। तत्पश्चात कबाइलियों को खदेड़ने के लिये भारतीय सेना जम्मू-कश्मीर भेजी गयी।
- भारत ने पाकिस्तान समर्थित आक्रमण की शिकायत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में दर्ज करायी तथा उसने जनमत संग्रह द्वारा समस्या के समाधान की सिफारिश की। इसके साथ ही भारत ने 84 हजार वर्ग किलोमीटर का भू-क्षेत्र पाकिस्तान के अधिकार में ही छोड़ दिया। भारतीय संविधान के निर्माण के पश्चात जम्मू एवं कश्मीर राज्य को अनुच्छेद 370 के द्वारा विशेष राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।

हैदराबाद

हैदराबाद की रियासत बहुत बड़ी एवं महत्वपूर्ण थी। यह रियासत चारों तरफ से हिंदुस्तानी इलाके से घिरी थी। पुराने हैदराबाद के कुछ हिस्से वर्तमान महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में और बाकी हिस्से आन्ध्र प्रदेश में हैं। हैदराबाद के शासक को 'निजाम' कहा जाता था और वह दुनिया के सबसे दौलतमंद लोगों में शुमार किया जाता था।

- निजाम चाहता था कि हैदराबाद की रियासत को आजाद रियासत का दर्जा दिया जाए। निजाम ने सन् 1947 के नवम्बर में भारत के साथ यथास्थिति बहाल रखने का एक समझौता किया। यह समझौता एक साल के लिए था। इस बीच भारत सरकार से हैदराबाद के निजाम की बातचीत जारी रही।
- इसी बीच हैदराबाद की रियासत के लोगों के बीच निजाम के शासन के खिलाफ एक आंदोलन ने जोर पकड़ा। तेलंगाना इलाके के किसान निजाम के दमनकारी शासन से खासतौर पर दुखी थे। वे निजाम के खिलाफ उठ खड़े हुए। महिलाएं निजाम के शासन में सबसे ज्यादा जुल्म का शिकार हुई थीं। महिलाएं भी बड़ी संख्या में इस आंदालेन से आ जुड़ीं। हैदराबाद शहर इस आंदोलन का गढ़ बन गया।
- कम्युनिष्ट और हैदराबाद कांग्रेस इस आंदोलन की अग्रिम पंक्ति में थे। आंदोलन को देख निजाम ने लोगों के खिलाफ एक अर्द्ध-सैनिक बल रवाना किया। इसे रजाकार कहा जाता था। रजाकार अव्वल दर्जे के सांप्रदायिक और अत्याचारी थे। रजाकारों ने गैर-मुसलमानों को खासतौर पर अपना निशाना बनाया। रजाकारों ने लूटपाट मचायी और हत्या पर उतारू हो गए।
- वर्ष 1948 के सितंबर में भारतीय सेना, निजाम के सैनिकों पर काबू पाने के लिए हैदराबाद आ पहुंची। कुछ रोज तक रुक-रुक कर लड़ाई चली और इसके बाद निजाम ने आत्मसमर्पण कर दिया। निजाम के आत्मसमर्पण के साथ ही हैदराबाद का भारत में विलय हो गया।

मणिपुर

आजादी के कुछ दिन पहले मणिपुर के महाराजा बोधचन्द्र सिंह ने भारत सरकार के साथ भारतीय संघ में अपनी रियासत के विलय के एक सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर किए थे। इसकी एवज में उन्हें यह आश्वासन दिया गया था कि मणिपुर की आंतरिक स्वायत्तता बरकरार रहेगी।

- जनमत के दबाव में महाराजा ने वर्ष 1948 के जून में चुनाव करवाया और इस चुनाव के फलस्वरूप मणिपुर की रियासत में संवैधानिक राजतंत्र कायम हुआ। मणिपुर भारत का पहला भाग है जहां सार्वभौम वयस्क मताधिकार के सिद्धांत को अपनाकर चुनाव हुए।
- मणिपुर की विधानसभा में भारत में विलय के सवाल पर गहरे मतभेद थे। मणिपुर की कांग्रेस चाहती थी कि इस रियासत को भारत में मिला दिया जाए जबकि दूसरी राजनीतिक पार्टियां इसके खिलाफ थीं।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE

- मणिपुर की निर्वाचित विधानसभा से परामर्श किए बगैर भारत सरकार ने महाराजा पर दबाव डाला कि वे भारतीय संघ में शामिल होने के समझौते पर हस्ताक्षर कर दें। भारत सरकार को इसमें सफलता मिली। मणिपुर में इस कदम को लेकर लोगों में क्रोध और नाराजगी के भाव पैदा हुए। इसका असर आज तक देखा जा सकता है।

रियासतों के भारत में सम्मिलित हो जाने के पश्चात दो प्रमुख समस्याएं थीं।

1. इन सभी रियासतों का एक आधुनिक इकाई के रूप में किस प्रकार गठन किया जाये। तथा
2. इन्हें एक ही संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत किस प्रकार लाया जाये।

इस समस्या का समाधान निम्न प्रकार से किया गया-

- बहुत सी छोटी-छोटी रियासतें (216), जो अलग इकाई के रूप में नहीं रह सकती थीं, संलग्न प्रांतों में विलय कर दी गयीं। इन्हें श्रेणी-ए में सूचीबद्ध किया गया। उदाहरणार्थ- छत्तीसगढ़ और उड़ीसा की 39 रियासतें बंबई प्रांत में सम्मिलित कर दी गयीं।
- कुछ रियासतों का विलय एक इकाई में इस प्रकार किया गया कि वो केंद्र द्वारा प्रशासित की जायें। इन्हें श्रेणी- सी में सूचीबद्ध किया गया। इसमें 61 रियासतें सम्मिलित थीं। इस श्रेणी में हिमाचल प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, भोपाल, बिलासपुर, मणिपुर, त्रिपुरा एवं कच्छ की रियासतें थीं।
- एक अन्य प्रकार का विलय राज्य संघों का गठन करना था। इनकी संख्या 5 थी। ये रियासतें थीं- काठियावाड़ की संयुक्त रियासतें, मत्स्य प्रदेश की संयुक्त रियासतें, पटियाला और पूर्वी पंजाब रियासती संघ, विन्ध्य प्रदेश और मध्य भारत के संघ तथा राजस्थान, ट्रावनकोर और कोचीन की रियासतें।
- प्रारंभ में रक्षा, संचार अवस्था तथा विदेशी मामलों के मुद्दे पर ही इन रियासतों का विलय किया गया था किंतु कुछ समय पश्चात यह महसूस किया जाने लगा कि आपस में सभी का निकट संबंध होना अनिवार्य है। पांचों राज्य संघ तथा मैसूर ने भारतीय न्याय क्षेत्र को स्वीकार कर लिया। इन्होंने समवर्ती सूची के विषयों (कर को छोड़कर), अनुच्छेद 238 के विषयों तथा केंद्र की नियंत्रण शक्ति को 10 वर्षों के लिये स्वीकार कर लिया। सातवें संशोधन (1956) से श्रेणी-बी को समाप्त कर दिया गया।

अंत में सभी रियासतें पूर्णरूपेण भारत में सम्मिलित हो गयीं तथा भारत की एकीकृत राजनीतिक व्यवस्था का अंग बन गयीं।

सरकार का दृष्टिकोण

छोटे-बड़े विभिन्न आकार के देशों में बंट जाने की इस संभावना के विरुद्ध अंतरिम सरकार ने कड़ा रुख अपनाया। मुस्लिम लीग ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इस कदम का विरोध किया। लीग का मानना था कि रजवाड़ों को अपनी मनमर्जी का रास्ता चुनने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए।

- रजवाड़ों के शासकों को मनाने-समझाने में सरदार पटेल ने ऐतिहासिक भूमिका निभाई और अधिकतर रजवाड़ों को उन्होंने भारतीय संघ में शामिल होने के लिए राजी कर लिया। आज यह आसान जान पड़ सकता है लेकिन अपने आप में यह बड़ा जटिल काम था।
- इसके लिए बड़ी चतुराई और युक्तिपूर्ण पहलकदमी की जरूरत थी। मिसाल के तौर पर आज के ओडीशा में ही तब 26 और छत्तीसगढ़ में 15 छोटे-छोटे राजवाड़े थे। सौराष्ट्र में 14 बड़े और 119 छोटे रजवाड़े और अन्य अनेक प्रशासनिक तंत्र थे।
- देशी रजवाड़ों की इस चर्चा से तीन बातें सामने उभरकर आती हैं। पहली बात तो यह कि अधिकतर रजवाड़ों के लोग भारतीय संघ में शामिल होना चाहते थे। दूसरी बात यह कि भारत सरकार का रुख लचीला था और वह कुछ इलाकों को स्वायत्तता देने के लिए तैयार थी जैसा कि जम्मू-कश्मीर में हुआ।
- भारत सरकार ने विभिन्नताओं को सम्मान देने और विभिन्न क्षेत्रों की मांगों को संतुष्ट करने के लिए यह रुख अपनाया था। तीसरी बात, विभाजन की पृष्ठभूमि में विभिन्न इलाकों के सीमांकन के सवाल पर खींचतान जोड़ पकड़ रही थी और ऐसे में देश की क्षेत्रीय अखंडता- एकता का सवाल सबसे ज्यादा अहम हो उठा था।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE

- शांतिपूर्ण बातचीत के जरिए लगभग सभी रजवाड़े जिनकी सीमाएं आजाद हिन्दुस्तान की नयी सीमाओं से मिलती थीं, 15 अगस्त, 1947 से पहले ही भारतीय संघ में शामिल हो गए।
- अधिकतर रजवाड़ों के शासकों ने भारतीय संघ में अपने विलय के एक सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर किए, इस सहमति-पत्र को 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन' कहा जाता है। इस पर हस्ताक्षर का अर्थ था कि रजवाड़े भारतीय संघ का अंग बनने के लिए सहमत हैं। जूनागढ़, हैदराबाद, कश्मीर और मणिपुर की रियासतों का विलय बाकियों की तुलना में थोड़ा कठिन साबित हुआ।

राज्यों का पुनर्गठन

देश के बंटवारे और देशी रियासतों के विलय के साथ ही राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया का अंत नहीं हुआ। भारतीय प्रांतों की आंतरिक सीमाओं को तय करने की चुनौती अभी महत्वपूर्ण समस्या थी। यह महज प्रशासनिक विभाजन का मामला न था। प्रांतों की सीमाओं को इस तरह तय करने की चुनौती थी कि देश की भाषाई और सांस्कृतिक बहुलता की झलक मिले साथ ही राष्ट्रीय एकता भी खंडित न हो।

- औपनिवेशिक शासन के समय प्रांतों की सीमाएं प्रशासनिक सुविधा के लिहाज से तय की गई थीं या ब्रिटिश सरकार ने जितने क्षेत्र को जीत लिया हो उतना क्षेत्र एक अलग प्रांत मान लिया जाता था। प्रांतों की सीमा इस बात से भी तय होती थी कि रजवाड़े के अंतर्गत कितना इलाका शामिल है।
- राष्ट्रीय सरकार ने ऐसे सीमांकन को बनावटी मानकर खारिज कर दिया। उसने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का वायदा किया। वर्ष 1920 में कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन हुआ था। दरअसल, इसके बाद से ही इस सिद्धांत को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने मान लिया था कि राज्यों का पुनर्गठन भाषा के आधार पर होगा। अनेक प्रांतीय कांग्रेस-समितियों को भाषाई इलाके के आधार पर बनाया गया था और ये समितियां ब्रिटिश इंडिया के प्रशासनिक विभाजन को अपने कामकाज में नहीं रखती थी।
- आजादी और बंटवारे के बाद स्थितियां बदल दी। नेताओं को इस बात पर चिंता हुई कि अगर भाषा के आधार पर प्रांत बनाए गए तो इससे अव्यवस्था फैल सकती है तथा देश के टूटने का खतरा पैदा हो सकता है। उनका यह भी लग रहा था कि भाषावार राज्यों के गठन से दूसरी सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों से ध्यान भटक सकता है। जबकि देश इन चुनौतियों की चपेट में है। केन्द्रीय नेतृत्व ने इस मसले को स्थगित करने का फैसला किया।
- केन्द्रीय नेतृत्व के इस फैसले को स्थानीय नेताओं और लोगों ने चुनौती दी। पुराने मद्रास प्रांत के तेलुगु-भाषी क्षेत्रों में विरोध भड़क उठा। पुराने मद्रास प्रांत में आज के तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश शामिल थे। इसके कुछ हिस्से मौजूदा केरल एवं कर्नाटक में भी हैं।
- विशाल आन्ध्र आंदोलन (आन्ध्र प्रदेश नाम से अलग राज्य बनाने के लिए चलाया गया आंदोलन) ने मांग की कि मद्रास प्रांत के तेलुगुभाषी इलाकों को अलग करके एक नया राज्य आन्ध्र प्रदेश बनाया गया। तेलुगु-भाषी क्षेत्र की लगभग सारी राजनीतिक शक्तियां मद्रास प्रांत के भाषाई पुनर्गठन के पक्ष में थीं।
- केन्द्र सरकार 'हां-ना' की दुविधा में थी और उसकी इस मनोदशा से इस आंदोलन ने जोर पकड़ा। कांग्रेस के नेता और दिग्गज गांधीवादी, पोट्टी श्रीरामुलु, अनिश्चितकालीन भूख-हड़ताल पर बैठ गए। 56 दिनों की भूख हड़ताल के बाद उनकी मृत्यु हो गई। इससे बड़ी अव्यवस्था फैली और आन्ध्र प्रदेश में जगह-जगह हिंसक घटनाएं हुई।
- लोग बड़ी संख्या में सड़कों पर निकल आए। पुलिस फायरिंग में अनेक लोग घायल हुए या मारे गये। मद्रास में अनेक विधायकों ने विरोध जताते हुए अपनी सीट से इस्तीफा दे दिया। आखिरकर 1952 के दिसम्बर में प्रधानमंत्री ने आन्ध्र प्रदेश नाम से अलग राज्य बनाने की घोषणा की।
- आन्ध्र प्रदेश के गठन के साथ ही देश के दूसरे हिस्सों में भी भाषाई आधार पर राज्यों को गठित करने का संघर्ष चल पड़ा। इन संघर्षों से बाध्य होकर केन्द्र सरकार ने 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग बनाया। इस आयोग का काम राज्यों के सीमांकन के मामले पर गौर करना था। इसने अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया कि राज्यों की सीमाओं का निर्धारण वहां बोली जाने वाली भाषा के आधार पर होना चाहिए।
- इस आयोग की रिपोर्ट के आधार पर 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पास हुआ। अधिनियम के आधार पर 14 राज्य और 6 केन्द्र-शासित प्रदेश बनाए गए।

PARAMOUNT IAS
Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOR RIVER ABOVE
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- आजादी के बाद के शुरूआती सालों में एक बड़ी चिंता यह थी कि अलग राज्य बनाने की मांग से देश की एकता पर आंच आएगी। आशंका थी कि नए भाषाई राज्यों में अलगाववाद की भावना पनपेगी और नव-निर्मित भारतीय राष्ट्र पर दबाव बढ़ेगा।
- जनता के दबाव में आखिरकार नेतृत्व ने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का मन बनाया। अगर हर इलाके के क्षेत्रीय और भाषाई दावे को मान लिया गया तो बंटवारे और अलगाववाद के खतरे में कमी आएगी। इसके अलावा क्षेत्रीय मांगों को मानना और भाषा के आधार पर नए राज्यों का गठन करना एक लोकतांत्रिक कदम के रूप में भी देखा गया।
- भाषावार राज्यों के पुनर्गठन की घटना को 56 साल से भी अधिक समय हो गया। भाषाई राज्य तथा इन राज्यों के गठन के लिए चले आंदोलनों ने लोकतांत्रिक राजनीति तथा नेतृत्व की प्रकृति को बुनियादी रूपों में बदला है। राजनीति और सत्ता में भागीदारी का रास्ता अब एक छोटे-से अंग्रेजी भाषी अभिजात तबके के लिए ही नहीं, बाकियों के लिए भी खुल चुका था।
- भाषावार पुनर्गठन से राज्यों के सीमांकन के लिए एक समरूप आधार भी मिला। बहुतों की आशंका के विपरीत इससे देश नहीं टूटा। इसके उलट देश की एकता और ज्यादा मजबूत हुई। सबसे बड़ी बात यह कि भाषावाद राज्यों के पुनर्गठन से विभिन्नता के सिद्धांत को स्वीकृति मिली।

राज्य पुनर्गठन आयोग

संविधान के द्वारा राज्यों का श्रेणियों में विभाजन तात्कालिक उपयोगिता के आधार पर किया गया था। प्राय: सभी इस व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे। जब केंद्रीय सरकार ने मद्रास राज्य की तेलुगू भाषी जनता के अनुरोध पर 1952 में आंध्र को अलग राज्य बना देने का निर्णय किया तो स्थिति में आकस्मिक परिवर्तन आ गया।

- 1 अक्टूबर, 1953 में आंध्र प्रदेश राज्य की स्थापना के पश्चात, भाषा के आधार पर नए राज्यों के पुनर्गठन की मांग भड़क उठी। जब इस समस्या की असंभव हो गया तो इस समस्या के शांतिपूर्ण निदान के लिए 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति की गई।
- भारत के सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश फजल अली इस आयोग के अध्यक्ष और पंडित एच.एन. कुंजरू, सरदार और के.एम. पाणिक्कर इसके सदस्य थे।
- संविधान निर्माण के पश्चात् ही 27 नवंबर, वर्ष 1947 को संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश एस.के. धर की अध्यक्षता में एक चार सदस्यीय आयोग का गठन किया और उसे इस बात की जाँच-पड़ताल करने के लिए कहा कि भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन उचित है अथवा नहीं।
- इस आयोग ने दिसंबर 1948 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। इस रिपोर्ट में आयोग ने प्रशासनिक आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का समर्थन किया।

पुनर्गठन आयोग की सिफारिश

22 दिसंबर, वर्ष 1953 को फजल अली की अध्यक्षता में गठित आयोग ने 30 सितंबर, वर्ष 1955 में केंद्र सरकार की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी और राज्यों के पुनर्गठन के संबंध में निम्न सिफारिशें कीं-

- राज्यों का पुनर्गठन भाषा और संस्कृति के आधार पर अनुचित है।
- राज्यों का पुनर्गठन राष्ट्रीय सुरक्षा, वितीय एवं प्रशासनिक आवश्यकता तथा पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।
- ए, बी, सी और डी वर्गों में विभाजित राज्यों को समाप्त कर दिया जाये तथा इनकी जगह पर सोलह राज्यों तथा तीन केंद्र शासित प्रदेशों का निर्माण किया जाए।

- संसद ने इस आयोग की सिफारिशों को कुछ परिवर्तनों के साथ स्वीकार कर वर्ष 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के अंतर्गत भारत में चौदह राज्य और पांच केंद्र शासित प्रदेश थे। जिन चौदह राज्यों का उल्लेख था, वे हैं- आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, बंबई, जम्मू-कश्मीर,केरल, मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा (वर्तमान में ओडीशा), पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल, वर्ष 2014 में भाषाई गठन के आधार पर बनने वाला अंतिम राज्य तेलंगाना है।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE

जिन पांच केंद्रशासित प्रदेशों का नाम था, वे हैं- दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा एवं अंडमान-निकोबार द्वीप समूह।

भारत में मौजूदा 29 राज्य हैं- आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, ओडिशा, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तराखण्ड, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर तथा तेलंगाना ।

नए राज्यों का निर्माण

भारत में नए राज्यों के निर्माण की शक्ति संविधान द्वारा भारतीय संसद को प्रदान की गई है (अनुच्छेद-3)। तत्सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार, केन्द्रीय व्यवस्थापिका अर्थात् संसद सामान्य विधान द्वारा किसी राज्य में से उसका राज्यक्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को अथवा राज्यों के भागों को मिलाकर नए राज्य का निर्माण के सकती है।

- संसद राज्यों की सहमति अथवा अनुमति के बिना भी उनके राज्यक्षेत्रों में परिवर्तन हेतु संविधान द्वारा अधिकृत है।
- संविधान का अनुच्छेद संसद को किसी भी राज्य के क्षेत्र को बढ़ाने अथवा घटाने की, सीमाओं में परिवर्तन करने की अथवा राज्य के नाम में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान करता है। संसद द्वारा यह कार्य साधारण कानून बनाकर किया जा सकता है।
- अनुच्छेद-3 में उल्लिखित कानून निर्माण सम्बन्धी प्रावधानों के अनुसार, तत्संबंधी विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही प्रस्तुत किया जाएगा और राष्ट्रपति द्वारा यह विधेयक प्रभावित होने वाले राज्य के विधानमण्डल को निर्दिष्ट किया जाएगा। विधेयक भेजे जाने के साथ ही राष्ट्रपति द्वारा राज्य को अपना मत प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में एक अवधि का निर्धारण किया जा सकता है।
- राज्य द्वारा अभिव्यक्त किए गए मत को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए संसद बाध्य नहीं है। साथ ही संविधान द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया है कि अनुच्छेद-2 और 3 के अधीन निर्मित कोई भी कानून अथवा विधि अनुच्छेद-368 के प्रयोजनार्थ इस संविधान का संशोधन नहीं समझे जाएंगे।
- उत्तराखंड, झारखंड और छत्तीसगढ़ की तरह तेलंगाना को अलग राज्य बनाने की मांग के आंदोलन की एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है। छोटे राज्यों की अवधारणा के साथ सत्ता का विकेंद्रीकरण जुड़ा हुआ है। जवाहरलाल नेहरू सत्ता के विकेंद्रीकरण के पक्षधर रहे। इस प्रकार भारतीय राष्ट्र में मजबूत केंद्र बनाम कमजोर प्रदेश और विकेंद्रीकृत सत्ता की दो राजनीतिक धाराएं सक्रिय रही हैं।

छोटे राज्यों की प्रसांगिकता

देशभर में उठ रहे राज्यों के विभाजनों के मुद्दे को खड़ा करने के पीछे विभिन्न दलों एवं राजनेताओं की महत्वाकांक्षाएं तो सर्वोपरि है, अपितु देश एवं राज्य में चल रही प्रशासनिक व्यवस्था के प्रति जनता में द्वेष पैदा करना भी है।

- देश में पहले भी छोटे राज्यों के गठन के उदाहरण देखने को मिले हैं, किंतु तेलंगाना राज्य की मांग को लेकर देशभर में जो स्थिति निर्मित हुई है वह निश्चय ही चिंतनीय है। तेलंगाना की मांग ने जो उग्र रूप धारण किया देश के विभिन्न राज्यों में भी राज्यों के विभाजन की आवाजें उठाई जाने लगीं।
- तेलंगाना राष्ट्र समिति के आंदोलन के आगे झुकते हुए पृथक् तेलंगाना राज्य के गठन की मांग स्वीकार करने की घोषणा केंद्र सरकार ने 9 दिसंबर, 2009 की यद्यपि की थी, तथापि इस घोषणा के बाद आंध्र प्रदेश में उत्पन्न व्यापक विरोध ने सरकार के इस फैसले के कार्यान्वयन की राज्य विधानसभा पर टाल दिया है। ज्ञातव्य है कि तेलंगाना राष्ट्र समिति एक लम्बे समय से पृथक् तेलंगाना राज्य के गठन हेतु आंदोलनरत् है।
- टी.आर.एस. पार्टी के नेता चंद्रशेखर राव के आमरण अनशन के पश्चात् उनकी नाजुक हालत से निपटने के लिए दबाव के चलते केंद्र सरकार ने पृथक् तेलंगाना राज्य के गठन का फैसला किया। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए केंद्र सरकार ने घोषणा की है कि सभी राजनीतिक दलों की सहमति के बाद ही तेलंगाना मामले में कोई कदम उठाया जाएगा।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- सेवानिवृत न्यायाधीश श्री बी.एन. कृष्णा की अध्यक्षता में 3 फरवरी, 2010 को तेलंगाना मुद्दे पर गठित पांच सदस्यीय समिति के कार्य क्षेत्रों की केंद्र सरकार ने 12 फरवरी, 2010 की घोषणा की। समिति पृथक तेलंगाना की मांग के साथ ही अखंड आंध्र प्रदेश की वर्तमान स्थिति बनाए रखने की मांग के संदर्भ में भी विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन करेगी।
- इसके सदस्यों में राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय के कुलपति श्री रणबीर सिंह, अंतरराष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान के शोधार्थी डा. अबुसलेह शरीफ और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान के प्रोफेसर डा. रवींद्र कौर शामिल हैं।

गौरतलब है कि श्री कृष्णा समिति ने 31 दिसंबर, 2010 को अपनी रिपोर्ट गृह मंत्रालय को सौंप दी। इस रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सरकार ने 6 जनवरी, 2011 को सर्वदलीय बैठक बुलाई। परंतु टीआरएस, तेलुगुदेशम पार्टी तथा भाजपा इस बैठक से अलग रहे। वैसे तो तेलंगाना क्षेत्र में आठ टीआरएस सर्वप्रमुख दल है। टीआरएस ने स्पष्ट कर दिया है कि उसे अलग तेलंगाना के अतिरिक्त अन्य कोई समझौता मंजूर नहीं है।

श्रीकृष्णा समिति रिपोर्ट

मौजूदा स्थिति को यथावत बनाए रखना व्यवहारिक नहीं है और इसमें हस्तक्षेप करना बेहद जरूरी है। आंध्र प्रदेश की सीमांध्र और तेलंगाना में विभाजित किया जाए और हैदराबाद को केंद्रशासित प्रदेश बनाया जाए। समिति के अनुसार यह भी व्यवहारिक नहीं है।

- आंध्र प्रदेश का रॉयलसीमा, तेलंगाना और तटीय आंध्र प्रदेश में विभाजित किया जाए और इसमें हैदराबाद, रॉयल तेलंगाना का हिस्सा ही। यह आर्थिक तौर पर सही है।
- आंध्र प्रदेश की सीमांध्र और तेलंगाना में विभाजित किया जाए। इसके केंद्र शासित प्रदेश में- रंगा रेढ्डी, महबूब नगर और नलगोंडा जिलों को शामिल किया जाए। समिति ने इसे भी व्यवहारिक नहीं माना है।
- आंध्र प्रदेश की सीमांध्र और तेलंगाना की मौजूदा सीमाओं को बरकरार रखते हुए विभाजित किया जाए, जिसमे हैदराबाद तेलंगाना की राजधानी हो और सीमांध्र की नई राजधानी बनाई जाए। समिति का मानना है कि इस विकल्प पर विचार किया जा सकता है। लेकिन इस विकल्प पर हैदराबाद और तेलंगाना के अन्य जिलों में उनके निवेश, नौकरी और जीवनयापन जैसे मुद्दों के बारे में तटीय आंध्र और रॉयल सीमा क्षेत्र के लोगों को शंका है।

राज्य को एकीकृत रखा जाए और तेलंगाना क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सशक्तिकरण के लिए कुछ संवैधानिक और वैधानिक कदम उठाए जाएं और तेलंगाना क्षेत्रीय काउंसिल का गठन किया जाए। समिति ने राष्ट्रीय दृष्टिकोण से एकीकृत आंध्र प्रदेश का विकल्प सुझाया है जो सभी के लिए बेहतर है लेकिन विभाजन को एक ही सूरत में स्वीकार किया जाना चाहिए जबकि अन्य विकल्प मौजूद न हो या तीनों क्षेत्र आपसी सहमति से ऐसा चाहते हैं।

अन्य प्रदेशों के नवीन राज्य की मांग

उत्तर प्रदेश में बुंदेलखंड, पूर्वांचल और हरित प्रदेश के बाद अब अलग बृज प्रदेश राज्य की मांग बलवती हो गई है। केंद्र सरकार द्वारा तेलंगाना राज्य की स्थापना की घोषणा किए जाने के बाद देशव्यापी स्तर पर राज्य निर्माण की मांगे उठने लगीं। इस परिप्रेक्ष्य में डा. कर्ण सिंह ने राज्य पुनर्गठन आयोग की पुन:स्थापना का सुझाव सरकार को दिया है।

- अगर नए राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना होती है तो उसके सामने संभवत: नए राज्यों के गठन के लिए कोई एक, राष्ट्रीय स्तर पर लागू किए जा सकने वाले आधार की खोजने की चुनौती होगी। संबद्ध क्षेत्रों में अल्पविकास एवं पिछड़ापन एक आधार हो सकता है।
- भारतीय राजनीति में बहुत सारे मुद्दे ऐसे रहे हैं जो इस गणराज्य के बनने के दौरान आंदोलन के आधार बने लेकिन गणराज्य बनने की जो प्रक्रिया रही उसमें काफी कुछ बदला। सत्ता को संचालित करने वाली शक्तियों ने उन तमाम तरह के आंदोलनों में अपना राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विस्तार किया है।
- सत्ता के उन आंदोलनों की राजनीतिक अवधारणा को ही परिवर्तित कर दिया। दरअसल विकेंद्रीकरण अब खुद सत्ता को नियंत्रित करने वाली राजनीतिक शक्तियों की जरूरत के रूप में सामने आ गया।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE ESTD 2005

- गौरतलब है कि सत्ता को संचालित करने वाली शक्तियों का विस्तार हुआ है यह तटीय आंध्र, रायलसीमा एवं तेलंगाना में भी हुआ है। वस्तुतः सत्ता की संचालित करने वाली राजनीतिक शक्तियों के बीच सत्ता के बंटवारे की ही लोकतंत्र के विस्तार के रूप में स्थापित किया जाता है। लेकिन इन शक्तियों में सत्ता के बंटवारे की संभावना बढ़ाना लोकतंत्र का विस्तार नहीं है अपितु लोकतंत्र का विस्तार तो विभिन्न राजनीतिक वर्गों की सत्ता की स्थापना है। राज्यों का गठन लगभग उसी रूप में सामने आया है जैसे एक जिले की, दो जिलों में बांट देने की प्रक्रिया पूर्ण होती है।
- राज्यों के पुनर्गठन की समस्या को लेकर फजल अली की अध्यक्षता में गठित आयोग ने 1955 में अपनी रिपोर्ट सौंपी थी। आयोग के अन्य सदस्य थे हृदयनाथ कुंजरू एवं के. एम. पाणिक्कर। उस समय के.एम. पाणिक्कर ही केवल छोटे राज्यों के पक्षधर थे।
- आज 64 वर्ष बाद यह प्रतीत होता है कि पाणिक्कर का पक्ष शायद सही है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश देश के बड़े राज्य बने एवं विकास की दौड़ में सबसे पीछे हैं इसके विपरीत दक्षिण के छोटे राज्य शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, महिला प्रगति आदि सभी क्षेत्रों में कहीं आगे हैं, उनमें केरल का सूचकांक सबसे ऊपर है।
- छोटे राज्यों में जनता एवं प्रशासन की निकटता के कारण चीजें खुलकर सामने आ जाती हैं। आज बीमार प्रांत उत्तर प्रदेश के विभाजन की मांग विभिन्न कोनों से आ रही है। तत्कालीन मुख्यमंत्री मायावती ने भी पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वांचल और बुंदेलखंड प्रांतों के निर्माण की बात उठाई थी।
- राहुल गांधी ने भी बुंदेलखंड के विकास हेतु एक स्वायत्त परिषद बनाने का सुझाव दिया है। वर्तमान में बरेली, रामपुर, बदायूं, मुरादाबाद, अमरोहा, शाहजहांपुर, पीलीभीत और बिजनौर को मिलाकर रूहेलखंड प्रांत के निर्माण की भी मांग उठ रही है।

अंततः कहा जा सकता है कि समय आ गया है कि राज्यों के पुनर्गठन के लिए फिर से एक आयोग का गठन किया जाए। पुनर्गठन का आधार विकास का मुद्दा होना चाहिए, संस्कृति, परम्परा, भाषा आदि नहीं। यह जरूरी हो गया है कि सरकार इस विचार को सिद्धांत एवं नीति के रूप में स्वीकार कर ले। छोटे राज्य बनाने में बुनियादी संरचना के निर्माण पर होने वाले व्यय के आर्थिक भार को सहने के लिए भी तैयार रहना होगा।

विभिन्न राज्य पुनर्गठन आयोग अधिनियम

- असम सीमा परिवर्तनं अधिनियम वर्ष 1951 के द्वारा भारत के राज्य क्षेत्र से एक भाग भूटान को सौंप कर असम की सीमा में परिवर्तन किया गया
- आंध्र राज्य अधिनियम वर्ष 1958 के द्वारा, संविधान के प्रारम्भ के समय विद्यमान मद्रास राज्य से कुछ राज्यक्षेत्र निकालकर, आंध्र प्रदेश नामक नया राज्य बनाया गया।
- हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर (नया राज्य) अधिनियम, 1954 से हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर, इन दो भागों का विलय कर एक राज्य अर्थात् हिमाचल प्रदेश बनाया गया।
- बिहार और पश्चिमी बंगाल अधिनियम, वर्ष 1956 द्वारा कुछ राज्य क्षेत्र बिहार से पश्चिमी बंगाल की अंतरित किए गए।
- राज्य पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 1956 से भारत के विभिन्न राज्यों की सीमाओं में स्थानीय और भाषाई मांगों को पूरा करने के लिए परिवर्तन किया गया। विद्यमान राज्यों के बीच कुछ राज्यक्षेत्रों को अंतरित किया गया। इसके अतिरिक्त एक नया केरल राज्य बनाया गया और मध्य और विंध्य प्रदेश की रियासतों का उनसे लगे हुए राज्यों में विलय कर दिया गया।
- राजस्थान और मध्य प्रदेश अधिनियम, वर्ष 1959 द्वारा राजस्थान राज्य से कुछ राज्यक्षेत्र मध्य प्रदेश की अंतरित किए गए।
- आंध्र प्रदेश और मद्रास (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, वर्ष 1959 द्वारा आंध्र प्रदेश और मद्रास राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन किए गए।
- बंबई पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 1960 द्वारा बंबई राज्य को विभाजित करके गुजरात नामक एक नया राज्य बनाया गया और बंबई के बचे हुए राज्य की महाराष्ट्र नाम दिया गया।

- अर्जित राज्यक्षेत्र अधिनियम, वर्ष 1960 से भारत और पाकिस्तान के बीच वर्ष 1958–1959 में किए गए समझौते द्वारा अर्जित कुछ राज्यक्षेत्रों का असम, पंजाब और पश्चिमी बंगाल राज्यों में विलय के लिए उपबंध किया गया।
- नागालैंड राज्य अधिनियम, वर्ष 1962 के द्वारा नागालैंड राज्य की रचना की गई जिसमें नागा पहाड़ी और त्येनसांग क्षेत्र का राज्यक्षेत्र समाविष्ट किया गया।
- पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 1966 जिसके द्वारा पंजाब राज्य को पंजाब और हरियाणा राज्यों में और चंडीगढ़ के संघ राज्यक्षेत्रों में बांटा गया।
- आंध्र प्रदेश और मैसूर अधिनियम, वर्ष 1968 (राज्य क्षेत्र अंतरण)।
- बिहार और उत्तर प्रदेश (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, वर्ष 1968।
- असम पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 1969 द्वारा असम राज्य के भीतर मेघालय नाम का स्वशासी उपराज्य बनाया गया।
- हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, वर्ष 1970 (1970 का 53) की धारा 4 द्वारा (25–1–1971 से) राज्य का दर्जा दिया गया।
- पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, वर्ष 1971 द्वारा मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय की राज्यों के प्रवर्ग में सम्मिलित किया गया और मिजोरम तथा अरुणाचल प्रदेश की संघ राज्यक्षेत्र में सम्मिलित किया गया।
- हरियाणा और उत्तर प्रदेश (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, वर्ष 1979।
- मिजोरम राज्य अधिनियम, वर्ष 1986 द्वारा मिजोरम को राज्य का दर्जा दिया गया।
- अरुणाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, वर्ष 1986।
- गोवा, दमन और दीव पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 1987।
- मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 2000 द्वारा नया छत्तीसगढ़ राज्य बना।
- उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 2000 द्वारा नया उत्तरांचल (वर्तमान उत्तराखण्ड) राज्य बना।
- बिहार पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 2000 द्वारा झारखंड राज्य बना।
- आंध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 2013 द्वारा तेलंगाना राज्य बना।

FOREVER ABOVE ESTD 2005
PARAMOUNT

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

1. भारत का जन्म कठिन परिस्थितियो में किस प्रकार हुआ? भारत को किस-किस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा चर्चा करें।

(200 शब्द)

2. भारत और पाकिस्तान विभाजन के घटनाक्रम एवं परिणाम की चर्चा करें।

(200 शब्द)

3. एकीकरण की योजना की व्यापक विशेषताओं की चर्चा करें। यह प्रभावी ढंग से किस प्रकार कार्य किया?

(200 शब्द)

4. राजवाड़ा को परिभाषित करें। रियासतों को एकजुट करने के लिए किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। चर्चा करें।

(200 शब्द)

5. किस प्रकार सबसे बड़े रियासी राज्य (हैदराबाद) और निजाम विलय के लिए सहमत हुए?

(200 शब्द)

6. पुर्तगाल का मुद्दा क्या था? 'ऑपरेशन विजय' आरंभ करने के लिए कौन सी परिस्थितियाँ उत्तरदायी है। विवेचना करें।

(200 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अध्याय

2

संविधान और इसका विकास

परिचय

भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 से लागू हुआ। तब से यह दिन गणतंत्र दिवस के रूप में मनाया जाता है। वर्ष 1950 से पहले 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस कहा जाता था। 26 जनवरी 1930 से ही प्रति वर्ष गांवो, मुहल्लों, शहरों में हजारों संख्या में छोटे-बड़े दल बनाकर ब्रिटिश शासन से भारत की पूर्ण आजादी की प्रतिज्ञा लिया करते थे। इसलिए इसी दिन नए गणतंत्र का उदय उचित था। इस प्रकार शुरू से ही आजादी के संघर्ष और भारत को गणतंत्र बनाने वाले संविधान के बीच कड़ी बरकरार रही।

- संविधान के निर्माण की प्रक्रिया 26 जनवरी 1950 से कई दशकों पहले ही शुरू हो गई थी, और उसके बाद भी जारी हैं इसकी जड़ें ब्रिटेन से आजादी पाने के संघर्षों एवं राजे-रजबाड़े में जिम्मेदार और प्रतिनिधि सरकार स्थापित करने के प्रयत्नों में हैं।
- राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य योगदान संवैधानिक सुधारों संबंधी प्रस्ताव पास करने से कहीं बढ़कर ठोस राजनीतिक अमल मे रहा। इससे आम जनता के बीच संसदीय जनतंत्र, गणतंत्रवाद, नागरिक अधिकारों, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के आर्थिक विचारों का प्रचार करने में मदद मिली।
- ये विचार संविधान के आवश्यक सिद्धांतों का हिस्सा थे। उदाहरण के लिए, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम में संयुक्त राज्य अमरीका में लोक सभा के लिए प्रयुक्त 'कांग्रेस' शब्द का शामिल किया जाना सरकार के संसदीय स्वरूप का विचार प्रचारित करने में मददगार साबित हुआ।
- गांधीजी द्वारा कांग्रेस का संविधान संशोधित किए जाने के बाद वर्ष 1920 से विशेष तौर पर, पार्टी संगठन का काम-काज चुनाव के सिद्धांत पर चलने लगा। सारे पदाधिकारी चुनाव के जरिए तय किए जाने लगे, चाहे वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी का अध्यक्ष हो या गांव के स्तर पर कांग्रेस कमिटी का सचिव।
- अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी प्रदेश कांग्रेस कमेटियों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों से बनी थी। वह लोक सभा या संसद के समान थी, और कार्य समिति मंत्रिपरिषद के समान। कांग्रेस के अध्यक्ष प्रधानमंत्री के समानार्थ हुआ करते।
- इस प्रकार, जब वर्ष 1950 में संविधान सरकार का संसदीय स्वरूप स्वीकृत किया गया, जिसमें प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद् का प्रावधान था, तो यह ब्रिटिश पार्लियामेंट की नकल नहीं थी, जैसा कि आमतौर पर माना जाता है। वास्तव में यह उस राष्ट्रीय परंपरा को ही नियमित रूप दिया जा रहा था, जिससे लोग ही परिचित थे।
- संविधान को मूल आधार जनतंत्र की भावना थी। जनता मे इस भावना का संचार राष्ट्रीय आंदोलन ने ही किया था। इसका प्रतिबिंब व्यापक जन भागीदारी में मिलता है। इससे आजादी के बाद व्यापक मताधिकार को जगह मिली।

संविधान और लोकतंत्र

''स्वराज ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा मुफ्त भेंट में नही मिलेगा। यह भारत द्वारा एक आत्म-घोषणा होगी। यह सही है कि यह पार्लियामेंट के कानून के रूप में होगा। लेकिन यह भारत की जनता की इच्छाओं का ही नम्र पुष्टीकरण होगा, वैसे ही जैसे

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

दक्षिण अफ्रीकी संघ के मामले में हुआ था। जब समय आएगा तो ब्रिटिष पार्लियामेंट भारत की जनता की इच्छा नौकरशाही के जरिए नहीं बल्कि उसके द्वारा मुफ्त रूप से चुने प्रतिनिधियों के जरिए प्रतिबिंबित करेगी। स्वराज कभी भी एक राष्ट्र द्वारा दूसरे को मुफ्त में नहीं दिया जा सकता। यह ऐसी अनमोल धरोहर है जो राष्ट्र के सबसे अच्छे रक्त द्वारा खरीदा जाता है। जब हम इसकी पूरी कीमत चुका देंगे, तो यह दान नहीं रह जाएगा।

गांधीजी ने यह वक्तव्य वर्ष 1922 में दिया था। इसमें स्पष्ट किया गया कि अंग्रेजों ने संवैधानिक सुधार या रचनाएं कभी भी अपनी इच्छा से नहीं किया बल्कि हमेशा की भारत के राष्ट्रवादी दबाव में। ब्रिटिश प्रशासकों एवं बाद में नव-साम्राज्यवादी विद्वानों द्वारा एक मिथक बड़ी सावधानी और सफलता से प्रचारित किया है। वह यह कि भारत में निर्मित आधुनिक संवैधानिक सरकार और संविधान 1861, 1892, 1909, 1919 और 1935 में अंग्रेजों द्वारा लागू किए गए संवैधानिक पहलों की ही परिणति हैं। लेकिन इसका खंडन इस तथ्य से ही किया जा सकता है कि अंग्रेजों द्वारा दी गई रियायतें हमेशा ही भारतीयों द्वारा की गई मांग से कहीं कम रही।

उदाहरण के लिए, चुनाव का सिद्धांत सबसे पहले अंग्रेजों ने वर्ष 1892 के इंडियन काउंसिल्स एक्ट के रूप मे लागू किया। अंग्रेज, भारतीय प्रेस, और फिर राष्ट्रवादी प्रेस काफी वर्षों पहले से ही काउंसिलों में चुनाव की प्रणाली लागू करने, चुनावी बहुमत के प्रावधान, और काउंसिलों के गैर-अधिकारिक सदस्यों के अधिक अधिकारों की मांग करता रहा है। राष्ट्रवादी मांगे वर्ष 1892 में प्रदत्त अधिकारों से कहीं अधिक रहीं।

इस तथ्य पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि राष्ट्रवादी मांगे अंग्रेजों द्वारा लागू किए गए प्रावधानों से न केवल थोड़ा आगे थी, बल्कि बहुत आगे थी। कांग्रेस ने मांग की कि परिषदों (काउंसिलो) के कम से कम आधे सदस्य चुने जाने चाहिए, वयस्क पुरूष मताधिकार एवं मतदान लागू किया जाना चाहिए, विधान परिषदों को वित्तीय बिलों पर वोट का अधिकार होना चाहिए इत्यादि। लेकिन वास्तव में भारत में अंग्रेजों ने पूरी तरह मनोनीत शाही केंद्रीय विधान परिषद बनाई जिसमें अधिकतम सत्रह ही सदस्य थे और सरकारी बहुमत था, और नाममात्र के लिए ही इसमें कुछ भारतीय सदस्य थे। वर्ष 1892 के कानून के तहत सदस्य चुने जाने लगे, लेकिन वे अल्पमत में थे और उन्हें बहुत ही कम अधिकार थे। दूसरी ओर, भारत के संवैधानिक ढांचे के बारे में राष्ट्रवादी विचार तेजी से विकसित हो रहे थे। वर्ष 1895 में विचार स्वातंत्र्य कानून के सामने समानता, घर-परिवार की अनुल्लंघनीयता, संपत्ति के अधिकार, इत्यादि जैसे मानवीय अधिकारों संबंधी विचार विकसित हुए। इनके बारे मे एनी बेसेंट का विचार था कि ये संभवत: लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की प्रेरणा से उदित हुए थे। अंतिम ब्रिटिश कानून गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 भी भारत की जनता के वर्ष 1895 में की गई घोषणा को संतुष्ट नहीं कर पाया।

भारतीय नेताओं को लंबा अनुभव था। संविधान तैयार करते समय उन्हें आजादी से पहले ही संवैधानिक विरासत त्यागने ओर नए सिरे से शुरूआत की कोई जरूरत नहीं थी। यह वहीं विरासत थी जिनके लिए उन्होंने कड़ा संघर्ष किया था और बलिदान दिए थे। इस प्रकार वे वर्ष 1935 में इंडिया एक्ट से बहुत-कुछ ले सकता थे क्योंकि इसके कई मुद्दों के लिए दबाव डाला गया था। उनके विचार में वर्तमान संस्थाओं के अनुभवों का लाभ उठाया जाना चाहिए। उन्होंने पुरातन में जो अनुपयोगी था, उसे छोड़ दिया और बहुत कुछ ऐसा जोड़ा जो नया था। साथ ही, पुराने में जो कुछ उपयोगी था, उसे अपनाने में उन्होंने हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

संवैधानिक विकास

उन्नीसवीं सदी के नौवें और अंतिम दशक में राष्ट्रीय आंदोलन ने यह विचार अपनाया गया कि ब्रिटेन भारत को जिम्मेदार सरकार बनाने का अधिकार प्रदान करे। इसी विचार को आगे विकसित करते हुए आंदोलन ने बीसवीं सदी के दूसरे दशक के अंत में आत्मनिर्णय अर्थात अपना संविधान खुद बनाने के भारतीयों के अधिकार का विचार प्रसारित किया गया।

वर्ष 1918 के कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन में तय किया गया कि: 'प्रेसिडेंट विल्सन, मि. लॉयड ज्यॉर्ज, तथा दूसरे ब्रिटिश राजनयिकों ने घोषणा की है कि विश्व में शांति की गारंटी करने के लिए सभी प्रगतिशील राष्ट्रों में आत्मनिर्णय का सिद्धांत लागू किया जाए, इसे ध्यान में रखते हुए यह कांग्रेस मांग करती है कि भारत को एक ऐसा प्रगतिशील राष्ट्र घोषित किया जाए जिस पर आत्मनिर्णय का सिद्धांत लागू किया जाए।'' अंग्रेज शासकों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वर्ष 1919 में सुधारों की नई किश्त लागू की गई, लेकिन यह कहा गया कि संवैधानिक सुधारों का

समय और गति सिर्फ अंग्रेज की तय करेंगे। भारतीयों ने इसका जवाब गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन के रूप में दिया। वर्ष 1922 में इस आंदोलन की समाप्ति के बाद कांग्रेस के एक हिस्से ने स्वराज पार्टी बना ली। इस पार्टी ने विधान परिषदों के चुनावों में भाग लिया और संवैधानिक संघर्षों में जोश के साथ हिस्सा लिया।

इस संदर्भ में मोतीलाल नेहरू ने भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने केंद्रीय असेंबली में 8 फरवरी वर्ष 1924 को एक प्रस्ताव पेश किया। इसमें कहा गया कि सरकार ''जल्द से जल्द एक प्रतिनिधि गोलमेज सम्मेलन बुलाए, जिसमें महत्वपूर्ण अल्पसंख्यकों के हितों एव अधिकारों की रक्षा का उचित ध्यान रखते हुए भारत के संविधान की स्कीम पेश की जाए।'' इस स्कीम का निश्चय एक नव-निर्वाचित भारतीय विधायिका करे और फिर उसे ब्रिटिश पार्लियामेंट को एक कानून का रूप देने के लिए भेजा जाए। यह पहला मौका था जब संविधान और उसके प्रावधान स्पष्ट रूप में पेश किए गए। यह प्रस्ताव ''राष्ट्रीय मांग'' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यह केंद्रीय असेंबली में 76 के मुकाबले 48 मतों के बड़े बहुमत से पास हुआ।

अंग्रेजों ने ''राष्ट्रीय मांग'' के प्रति हेय दृष्टि अपनाई। उन्होंने संवैधानिक परिवर्तनों का सुझाव देने के लिए नवंबर 1927 में साइमन कमिशन नियुक्त किया जिसके सदस्य केवल श्वेत थे। इस कदम का भारत के सभी राजनीतिक हलकों में जोरदार विरोध हुआ। सेक्रेट्री ऑफ स्टेट लॉर्ड बर्केनहेड ने 24 नवंबर 1927 को हाउस ऑफ लॉर्ड्स में 7 जुलाई 1925 को भारतीयों को दी गई अपनी चुनौती दोहराई: ''वे एक ऐसा संविधान बना कर दिखा दें जिस पर सभी भारतीयों के बीच सहमति हो।'' चुनौती स्वीकार की गई।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और भारतीय संविधान

कांग्रेस की पहल पर एक सर्वदलीय सम्मेलन मई 1928 मे बुलाया गया। इसमे मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया जो ''भारत संविधान के सिद्धांत तय करे।'' 10 अगस्त 1928 को पेश नेहरू रिपोर्ट वास्तव में भारत के संविधान के मसौदे की रूपरेखा थी। इसमें एक ऐसी संसदीय प्रणाली की कल्पना की गई थी जिसमें पूर्ण जिम्मेदार सरकार, मिले-जुले मतदाता क्षेत्र हों और अल्पसंख्यकों के लिए समयबद्ध सीटों का आरक्षण हो। नेहरू रिपोर्ट ने भारत की जनता के लिए मूलभूत मानवधिकार हासिल करने पर विशेष जोर दिया। इसमें विचारों की आजादी, अपना धर्म मानने और उस पर चलने की आजादी, विचार प्रकट करने की आजादी साथ ही शांतिपर्वूक बिना जोर जर्बदस्ती के मिल बैठ विचार करने, सभा-संस्था बनाने की आजादी, स्त्री-पुरूष के लिए समान अधिकार, यूनियन बनाने के अधिकार, मुफ्त प्राथमिक शिक्षा के अधिकार, शामिल थे। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि राज्य का धर्मनिरपेक्ष चरित्र मूलभूत अधिकारों में शामिल किया गया। नेहरू रिपोर्ट के उन्नीस अधि कारों में दस संविधान शामिल किए गए। रिपोर्ट ने प्रदेशों का पुनर्गठन भाषाई आधार पर करने की सलाह दी।

संविधान सभा की मांग 1934 के बाद बारंबार दोहराई गई। उसे 1936-37 के चुनावों के लिए तैयार कांग्रेस घोषणापत्र में शामिल किया गया। कांग्रेस को ग्यारह में से सात प्रदेशों में बहुमत मिला, और उसने अपना मंत्रिमंडल कायम करने का निर्णय किया। लेकिन उसने यह स्पष्ट कर दिया कि इसका अर्थ वर्तमान में संवैधानिक ढांचे की स्वीकृति नहीं थी। कांग्रेस कार्यसमिति की एक बैठक वर्धा में 27-28 फरवरी 1937 को हुई। इससें मंत्रिमंडल बनाने का निर्णय लिया गया; लेकिन साथ ही विधायकों को यह भी याद दिलाया गया कि फैजपुर कांग्रेस अधिवेशन के निर्णयों के अनुसार उन्हें सदनों में संविधान सभा की मांग जल्द से जल्द पेश करनी थी।

कांग्रेस विधायकों एवं अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी (अ. भ.कां.क.) के सदस्यों का प्रस्ताविक कनवेंशन जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में दिल्ली में 19 एवं 20 मार्च को आयोजित किया गया। प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए नेहरू ने कहा '' उन्हे पंचायती राज के लिए काम करना चाहिए, जिसका निर्माण संविधान सभा करेगी, जो हमारी जनता द्वारा चुनी गई उच्च पंचायत होगी।'' उन्होंने साफ कहा कि ''इस सविधान का पूरी तरह त्याग करना होगा ताकि संविधान सभा का रास्ता पूरी तरह साफ हो।''

द्वितीय विश्व युद्ध एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ने के बाद कांग्रेस सरकारों ने इस्तीफा दे दिया। ऐसा उन्होंने ब्रिटेन द्वारा बिना भारत से सलाह किए विश्व युद्ध में सहयोगी बना लेने के विरोध में किया। इसी समय मंत्रिमंडलों ने असेंबलियों मे प्रस्ताव पास किया कि ''भारत को स्वतंत्र राष्ट्र घोषित किया जाए जिनका अपना संविधान हो।''

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A MOVEMENT BY PARAMOUNT LEAGUE

तुरंत बाद गांधीजी ने भी नेहरू और कांग्रेस का साथ दिया। ''एकमात्र रास्ता'' नामक एक लेख में उन्होंने कहा था कि वे संविधान सभा के बारे में स्वयं नेहरू से भी ज्यादा उत्साही हैं: ''आप चाहे जिस भी दृष्टिकोण से देखें, जनतांत्रिक स्वराज का रास्ता उचित तरीके से निर्मित असेंबली से होकर जाता है, चाहे आप इसे जो भी नाम दे लें।'' उनका विचार था कि असीमित मताधिकार पर आधारित संस्था ही, जिसमें स्त्री पुरूष दोनों ही भाग लेंगे, विरोधी विचारों के प्रति न्याय कर पाएगी: ''मुझे इसमें रास्ता दिखाई देता है जो जन राजनीतिक एवं अन्य शिक्षा के लिए जरिया बनने के अलावा सांप्रदायिक एवं अन्य विभाजनकारियों का उपाय भी है।

गांधीजी एवं जवाहरलाल नेहरू के बीच 15 से 19 अप्रैल 1940 को वर्धा में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक के दौरान हुई बातचीत से गांधीजी की दूरदर्शिता एवं व्यावहारिकता का पता चलता है। जहां नेहरू का कहना था कि ब्रिटिश सरकार को पहले भारत को आजाद घोषित करना चहिए और तब संविधान सभा बुलानी चाहिए, वहीं गांधीजी का मानना था कि पहले असेंबली बुलाई जानी चाहिए और उसे आजादी का सवाल तय करने के लिए मुक्त छोड़ देना चाहिए। जैसा कि अक्सर ही देखा गया था, गांधीजी के विचार वास्तविक घटनाओं के अधिक नजदीक थे।

सन् 1940 में वाइसराय लिनलिथगो ने 'अगस्त प्रस्ताव' पेश किया। इसका उद्देश्य युद्ध-कार्य में भारत का सहयोग प्राप्त करना था। इसमें पहली बार स्वीकार किया गया कि नए संविधान के निर्माण का कार्य, पूरी तरह तो नहीं, लेकिन प्रमुखत: भारतीयों का होना चाहिए। इसमें युद्ध के बाद एक ऐसी संस्था के निर्माण का वादा किया गया जो ''भारत के राष्ट्रीय जीवन के प्रमुख हिस्सों के प्रतिनिधियों से बनी हो, ताकि नए संविधान की रूपरेखा तैयार की जा सके।'' यह स्पष्ट नहीं किया गया कि इस संस्था का निर्माण किस प्रकार हो सीधे चुनावों के जरिए, या सीमित मताधिकार वाले अप्रत्यक्ष चुनावों का मनोनयन के जरिए।

भारत की सभी प्रमुख राजनीतिक पार्टियों ने अगस्त प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस ने भारत से बिना पूछे युद्ध में घसीटे जाने के खिलाफ दिसंबर 1940 में व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ दिया।

मार्च 1942 में दक्षिणी-पूर्वी एशिया में ब्रिटेन की हार हो गई। रंगून के पतन के तीन दिनों बाद ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजने की घोषणा की। युद्ध कैबिनेट के एक महत्वपूर्ण लेबर सदस्य थे क्रिप्स और नेहरू के मित्र भी। उनके संवैधानिक प्रस्ताव क्रिप्स प्रस्तावों के नाम से जाने जाते हैं। इनमे पहली बार संविधान सभा स्थापित करने के तरीकों का उल्लेख किया गया।

भारतीय संविधान में क्रिप्स एवं कैबिनेट मिशन का योगदान

क्रिप्स प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार की ओर से एक बड़ा कदम था। पहली बार उसने स्वीकार किया कि संविधान भारतीयों की जिम्मेदारी होगी। संविधान सभा का विचार भी बिना दुविधा के स्वीकार कर लिया गया और इसके प्रावधान अधिक स्पष्ट किए गए। लेकिन क्रिप्स प्रस्तावों के कुछ दूसरे महत्वपूर्ण पहलू कांग्रेस द्वारा इसे स्वीकार करने में बाधा साबित हो रहे थे।

क्रिप्स मिशन की विफलता के कारण राष्ट्रीय आंदोलन तथा अंग्रेजों के बीच टकराव एक और दौर शुरू हुआ। अ.भा.कां. क. के 8 अगस्त 1942 के 'प्रस्ताव छोड़ो' और 'करो या मरो' का नारा दिया गया। साथ ही इसमें यह भी कहा गया कि आजाद भारत की अस्थायी सरकार संविधान सभा की स्कीम तैयार करेगी। जन आंदोलनों ने अंग्रेजों के मन मे कोई शक नहीं छोड़ा कि अंतिम बातचीत का समय पहुंच चुका है। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद मई 1945 में भारत संबंधी कए श्वेत पत्र जारी किया गया। इसके बाद जून-जुलाई 1945 में शिमला सम्मेलन हुआ जो असफल रहा।

जुलाई 1945 के ब्रिटिश चुनावों में लेबर पार्टी की जीत ने नई संभावनाएं पैदा कर दी। वाइसराय लॉर्ड वैवेल ने 19 सितंबर 1945 को भारत संबंधी नई नीति घोषित की। 19 फरवरी 1946 को ब्रिटेन ने एक कैबिनेट मिशन भारत भेजने की घोषणा की, जिसका उद्देश्य आजादी तथा संविधान निर्माण के प्रश्नों को हल करना था।

कैबिनेट मिशन 24 मार्च 1946 को भारत पहुंचा और उसने भारतीय नेताओं के साथ विस्तारे से बातें की। समझौता नहीं हो सकने पर मिशन ने 16 मई 1946 को अपनी योजना घोषित की। उसने स्वीकार किया कि संविधान बनाने की संस्था स्थापित करने का सबसे अच्छा जरिया वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनाव हैं। लेकिन साथ ही उसका यह भी विचार था कि अभी ऐसा कदम उठाने से नया संविधान बनाने में काफी दरे हो जा सकती

है। इसलिए यह तय पाया गया कि प्रदेशों की नव निर्वाचित असेंबलियां दस लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिध के हिसाब से संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव करें। सिख तथा मुस्लिम विधायक अपने संप्रदायों की जनसंख्या के आधार पर अपने प्रतिनिधि चुन लें। संघीय तथा प्रादेशिक अधिकारों संबंधी कई अन्य प्रावधान भी प्रस्तावित थे। इसमें विशेष महत्व के प्रावधान प्रदेशों के वर्गीकरण के बारे में थे। प्रदेशों को 'ए', 'बी' तथा 'सी' श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया था। 'ए' में थे - मद्रास, बंबई, यू.पी. बिहार मध्य प्रदेश और उड़ीसा। ये 'हिंदू-बहुल' प्रदेश थे। 'बी' और 'सी' श्रेणियें में पंजाब, उ.प्र. सीमांत प्रदेश एवं सिंध, पश्चिम में, और पूर्व में आसाम तथा बंगाल थे। कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव के अनुसार संविधान सभा अध्यक्ष के चुनाव तथा अन्य औपचारिक कार्य करने के बाद अलग-अलग हिस्सों में बंटकर आगे का कार्य करे। प्रादेशिक प्रतिनिधि अपने-अपने कमीशनों में बैठकर पहले अपने प्रदेशों के समूहों के संविधान तय करें। यह प्रक्रिया पूरी हो जाने पर प्रदेशों और राजवाड़ों (राज्यों) के प्रतिनिधि आपस में मिलकर संघीय संविधान तय करें। भारतीय संघ के पास विदेश, प्रतिरक्षा एवं संचार के विभाग होने चाहिए।

कांग्रेस ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि संविधान सभा सार्वभौम होनी चाहिए। इसे विभिन्न मुद्दों पर कैबिनेट मिशन के सुझाव स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार होना चाहिए। अंग्रेजों की ओर से इस संबंध में कोई वादा नहीं किया जा रहा था। फिर भी काफी विचार के बाद कांग्रेस ने स्कीम स्वीकार करना तय किया। उसे महसूस हो रहा था कि इसे नहीं मानने से सत्ता हस्तांतरण में देरी हो सकती है। मुस्लिम लीग इसे स्वीकार न कर हर कदम पर बाधाएं खड़ी करने की कोशिश कर रही थी। लीग हर मुद्दे पर संविधान सभा का विरोध कर रही थी, और इसके निर्माण के बाद भी विरोध करती रही।

संविधान सभा

संविधान सभा में 389 सदस्य प्रस्तावित थे। इसमें 296 ब्रिटिश भारत से और 93 भारतीय रजवाड़ों के राज्यों से थे। लेकिन शुरू में संविधान सभा में सिर्फ ब्रिटिश भारत के सदस्य ही शामिल थे। इसके लिए जुलाई-अगस्त 1946 में चुनाव हुए। सामान्य श्रेणी वाली 210 सीटों में कांग्रेस ने 199 जीतीं। इसने पंजाब से 4 सिख सीटों में से 9 भी जीतीं। कांग्रेस को 78 मुसलिम सीटों में 3 मिलीं, और तीन सीटें कूर्ग, अजमेर-मेरवारा तथा दिल्ली से मिलीं। इस प्रकार कांग्रेस को कुल 208 सीटों प्राप्त हुई। मुसलिम लीग ने 78 मुसलिम सीटों में से 73 जीती।

चूंकि संविधान सभा सार्वत्रिक वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी नहीं गई थी इसलिए वह सही मानों में प्रतिनिधि स्वरूप की नहीं थी, जैसे कि कांग्रेस चाहती थी। साथ ही, इसमे सिर्फ मुसलमानों ओर सिखों को ही विशेष प्रतिनिधित्व वाले 'अल्पसंख्यक' माना गया था। इन कारणों से सभा को सचमुच देश की विविधता का प्रतिनिधि बनाने के विशेष प्रयत्न किए गए। कांग्रेस कार्यसमिति ने जुलाई 1946 की शुरूआत में प्रादेशिक कांग्रेस कमेटियों को विशेष निर्देश दिए गए कि सामान्य श्रेणी की कांग्रेस लिस्ट में अनुसूचित जातियों, पारसियों, भारतीय ईसाइयों, ऐंग्लो इंडियनों, आदिवासियों और महिलाओं के प्रतिनिधि वे शामिल करें।

असेंबली के चुनाव के लिए नाम तय करने में महत्वपूर्ण पहलू संविधान तैयार करने के लिए अच्छे से अच्छे सक्षम व्यक्तियों की खोज थी। इस संबंध में खुद गांधीजी ने पहल की। उन्होंने कांग्रेस लिस्ट के लिए सोलह प्रमुख नामों का सुझाव दिया। इस प्रकार तीस ऐसे लोग कांग्रेस लिस्ट में चुने गए जो इसके सदस्य नहीं थे। अलावा, "असेंबली का वैचारिक स्वरूप स्वयं कांग्रेस सदस्यता के कारण अधिक व्यापक हो गया।"

संविधान सभा एवं इसके अधिवेशन

भारत की संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन 9 दिसंबर 1946 को सुबह 11 बजे शुरू हुआ। व्यावहारिक दृष्टि से आजाद भारत का इतिहास इसी ऐतिहासिक तारीख से शुरू होता है। संविधान की रूपरेखा तय करने और इसके तहत सरकार एवं जनता द्वारा सत्ता ग्रहण करने का काम संविधान सभा के अधिवेशन से शुरू होता है। सिफ कोई सैनिक विद्रोह ही इस संवैधानिक तर्क को उलट सकता था।

प्रथम अधिवेशनः प्रथम अधिवेशन में 207 सदस्यों ने भाग लिया। मुसलिम लीग ने, इसका आयोजन रोकने में असफल होने के बाद, इसमें भाग लेने से इनकार कर दिया। फलस्वरूप, लीग के 76 मुसलिम सदस्य अलग रहे, जबकि कांग्रेस के छह मुसलिम सदस्यों ने भाग लिया। 11 दिसंबर को डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद स्थायी अध्यक्ष (चेयरमैन) चुने गए। यह पद बाद में असेंबली का प्रेसीडेंट कहलाया। 13 दिसंबर को जवाहरलाल नेहरू ने प्रसिद्ध

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

''उद्देश्यों संबंधी प्रस्ताव'' पेश किया। इस पर 19 दिसंबर तक बहस होती रही। लेकिन इस पर अंतिम निर्णय तब तक के लिए स्थगित कर दिया गया जब तक कि मुसलिम लीग तथा रजवाड़ों (राज्यों) के प्रतिनिधि भी शामिल न हो जाएं।

दूसरा अधिवेशनः दूसरा अधिवेशन अलग अधिवेशन 20 से 22 जनवरी 1947 को हुआ, और यह तय किया गया कि अब लीग के सदस्यों का अधिक इंतजार न किया जाए। उद्देश्यों संबंधी प्रस्ताव पास कर दिया गया।

तीसरा अधिवेशनः तीसरा अधिवेशन 28 अप्रैल से 2 मई 1947 को हुआ, और इसमें भी लीग ने भाग नहीं लिया। 3 जून को माउंटबैटन योजना की घोषणा की गई। इसमें स्पष्ट किया गया कि भारत का विभाजन किया जाएगा। इसने संविधान सभा का परिप्रेक्ष्य ही पूरी तरह से बदल दिया। कैबिनेट मिशन योजना, जिसका सार था लीग के साथ समझौता, अब प्रासंगिक नहीं रह गया।

15 अगस्त 1947 को भारत की आजादी के साथ संविधान सभा एक सार्वभौम संस्था बन गई, और साथ ही नए राज्य के लिए एक विधायिका भी। इस पर संविधान बनाने तथा सामान्य कानून बनाने की भी जिम्मेदारी थी। विधायिका के रूप में इसका बड़ा आकार और विधायिका की इसकी जिम्मेदारी संविधान बनाने के काम मे बाधा नहीं बने। इसका कारण यह कि सभा के सदस्यों ने बड़ी जिम्मेदारों और सांगठनिक सूझबूझ का परिचय देते हुए बड़ी तैयारियां की थी।

कार्य को पांच चरणों में बांटा गया था–

(i) एक कमेटियों को मूल प्रश्नों पर रिपोर्टें तैयार करनी थी;

(ii) दूसरा, संवैधानिक सलाहाकार बी.एन. राव ने इन आरंभिक रिपोर्टों तथा दूसरे देशों के संविधानों में शोध करके एक कामकाजी दस्तावेज का मसविदा तैयार किया;

(iii) तीसरा, डॉ. अंबेडकर की अध्यक्षता और टिप्पणियों के लिए प्रसारित किया गया;

(iv) चौथा, मसविदे पर बहस हुई और संशोधन प्रस्तावित किए गए; और अंतिम, संविधान स्वीकृत किया गया।

भारतीय संविधानः मुख्य प्रावधान

भारत के संविधान में ऐसे नियम शामिल किए गए, जिसके अनुरूप ही देश के सामान्य नियम तैयार किए जाने थे। इसने जनतांत्रिक और संसदीय सरकार की रूपरेखा पेश की। संविधान में मूलभूत अधिकार एवं निर्देशक सिद्धांत भी शामिल किए गए। मूलभूत अधिकार राज्य द्वारा अधिकारों पर अतिक्रमण के प्रति संरक्षण थे। निर्देशक सिद्धांत इन अधिकारों को प्रभावशाली बनाने के लिए राज्य द्वारा लागू किए गए सुधार थे।

भारत द्वारा संसदीय प्रणाली बिना बहस के नहीं अपनाई गई। इसके विकल्प के रूप में पंचायतों पर आधारित अप्रत्यक्ष चुनाव और विकेंद्रीकृत सरकार के विचार थे, लेकिन उन्हें अधिक समर्थन नहीं मिला। ये विचार कुछ गांधीवादियों, विशेषकर श्रीमन नारायण ने प्रतिपादित किए थे। लेकिन केंद्रीकृत संसदीय संविधान को इनके बजाए निर्णायक समर्थन मिला।

समाजवाद के प्रति कई सदस्यों का बौद्धिक या भावनात्मक झुकाव भी संसदीय सरकार के लिए सहायक साबित हुआ। अधिकतर सदस्यो की इच्छा ''संविधान में समाजवाद शामिल करने की नहीं, बल्कि ऐसा जनतांत्रिक संविधान बनाने की थी जिनका झुकाव समाजवादी हो, ताकि भविष्य में नागरिकों की इच्छा या जरूरत के मुताबिक राष्ट्र समाजवाद बन सके।''

वयस्क मताधिकार

वयस्क मताधिकार की मांग कांग्रेस बीस के दशक से ही कर रही थी। अब इसे लागू करने का समय आ चुका था। कुछ लोगों का मत था कि वयस्क मताधिकार को ग्राम पंचायतों के स्तर तक ही सीमित रखा जाए, और उच्चत स्तरों की निकायों का चुनाव अप्रत्यक्ष तरीके से हो। लेकिन भारी बहुमत का विचार था कि चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर सीधे हों। यह ब्राह्मणवादी, उच्चजाति के प्रमुख वाले, पुरूष–उन्मुख, कुलीन अधिकतर निरक्षर समाज के लिए कम महत्व की बात नहीं थी।

प्रमुख संवैधानिक विशेषज्ञ अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने, जिन्होंने संविधान के निर्माण मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी, उनके अनुसार

''इस असेंबली ने सामान्य व्यक्ति और जनतांत्रिक शासन की अंतिम सफलता मे बड़े विश्वास के साथ वयस्क मताधिकार

का सिद्धांत स्वीकार किया है वयस्क मताधिकार का एकमात्र विकल्प ग्राम समुदाय या स्थानीय निकायों पर आधारित अप्रत्यक्ष चुनाव हैं।'' इसे उचित नहीं पाया गया।

ऑस्टिन ने वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष चुनाव को ''ऐसा शंख'' बताया ''जिसकी आवाज ने सोते भारत को जगा दिया या कम से कम उसमें हलचल पैदा कर दी''। के.एम. पणिक्कर ने गहन अवलोकन करते हुए कहा कि ''वयस्क मताधिकार का सामाजिक प्रभाव इसके राजनीतिक महत्व से कहीं आगे जाते है कई सामाजिक समूह पहले अपनी ताकत के प्रति सचेत नहीं थे, और राजनीतिक परिवर्तनों से अछूते थे; उन्हें एकाएक महसूस हुआ कि वे सत्ता का प्रयोग कर सकते है।'' वयस्क मताधिकार का असर आज भी दिखाई देता है। समाज के निचले स्तरों में नए सामाजिक तबके अपनी आवश्यकता के लिए विभिन्न राजनीतिक पाटियों और उम्मीदवारों के प्रयोग कर रहे हैं। वयस्क मताधिकार का आकर्षण इसमें है कि उच्चतम तबकों के उम्मीदवारो को भी साधारण लोगों से वोट मांगने पड़ते हैं।

संविधान ने कितना बड़ा कदम उठाया था, यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश शासन के अंत में ''मताधिकार संपत्ति शिक्षा और दूसरे कारकों से देश की जनसंख्या के लगभग 15 फीसदी तक सीमित था''।

भूमिका

संविधान का मूल दर्शन या प्रेरक विचार इसकी भूमिका में पाया जाता है। यह नेहरू द्वारा तैयार उद्देश्यों से संबंधित प्रस्ताव पर आधारित था। इसे असेंबली के प्रथम अधिवेशन में 13 दिसंबर वर्ष 1946 को पेश किया गया और 22 जनवरी वर्ष 1947 को स्वीकृत किया गया। भूमिका में कहा गया कि संविधान सभा में भारत की जनता सभी नागरिकों के लिए ''सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याया; विचारों एवं आस्था, आराधना के प्रकटीकरण की आजादी; स्थिति एवं अवसर की समानता; सबों के बीच बराबरी और व्यक्ति का सम्मान तथा राष्ट्र की एकता हासिल करने का संकल्प करती है'' कहा जाता है कि संविधान में मुक्ति, समानता और भाईचारे के मुकाबले न्याय को, एवं राजनीतिक न्याय के मुकाबले सामाजिक और आर्थिक न्याय को, एवं राजनीतिक न्याय के मुकाबले सामाजिक और आर्थिक न्याय को प्राथमिकता जानबूझकर दी गई थी। शब्दों में क्रम से पता चलता है कि सामाजिक और आर्थिक न्याय का विचार शायद भारत के संविधान का सबसे 'मूल विचार' था।

मूल अधिकार एवं निर्देशक सिद्धांत

''सामाजिक क्रांति के प्रति समर्पण की मूल बातें **भाग III और IV**, मूलभूत अधिकारों एवं राज्य नीति संबंधी निर्देशक सिद्धांतों में पाई जाती है। यह संविधान की आत्मा है। जहां मूलभूत अधिकार न्यायोन्मुख हैं, निर्देशक सिद्धांत नहीं हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि निर्देशक सिद्धांत कम महत्व के हैं। मानव अधिकारों की सार्वत्रित घोषणा में दो प्रकार के अधिकार हैं–परंपरागत नागरिक और राजनीतिक अधिकार, तथा नए आर्थिक और सामाजिक अधिकार। भारतीय संविधान में प्रथम किस्म के अधिकारों को मूलभूत अधिकारों में शामिल किया गया है, और दूसरे किस्म को निर्देशक सिद्धांतों में। इस अंतर का कारण बहुत सीधा है। राज्य जहां मूल अधिकारों के तहत राजनीतिक एवं नागरिक अधिकारों की सीधी गारंटी कर सकता है, वहीं वह आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की गारंटी लंबी अवधि में आर्थिक एवं सामाजिक विकास के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के दौरान ही कर सकता है। इन दूसरे किस्म के अधिकारों को कानून के तहत नहीं लाया जा सकता, अर्थात् कोई भी नागरिक इन्हें हासिल करने के लिए कोर्ट में नहीं जा सकता। फिर भी नियम बनाते वक्त राज्य ने इन्हें उपलब्ध कराने की पूरी कोशिश की है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत, निर्देशक सिद्धांतों में शामिल अधिकार जब कभी कानूनों में शामिल किए जाएंगे, तो वे कानून प्रणाली की परिधि में आ जाएंगे।

संविधान में अधिकारों को लिखित रूप देना उनकी लिस्ट तैयार करना और अधिकारों की घोषणा करना ब्रिटिश संवैधानिक परंपरा और व्यवहार से बिल्कुल अलग घटना थी। अंग्रेजों ने अधिकारों की लिस्ट बनाने की भारतीय मांग बारंबार ठुकराई। दूसरी ओर, भारतीयों के मन में औपनिवेशिक शासन के अनुभव के कारण उचित शंका पैदा हुई। इसलिए उन्होंने अधिकारो को लिखित रूप देने पर जोर दिया। यह समझ अंतर्राष्ट्रीय रूझानों से भी मेल खाता था। जर्मनी, सोवियत संघ तथा अन्य जगहों पर मानवाधिकारों के दमन के कारण एटलांटिक चार्टर एवं संयुक्त चार्टर तैयार किए गए, और संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार कमीशन की स्थापना की गई।

संविधान में मूलभूत अधिकार शामिल किए जाने का एक और कारण था 1895 मे तैयार किए गए प्रथम भारतीय संविधान

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

बिल में यह विचार बीज-रूप मे मौजूद था। यह वर्ष 1928 के मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट में भी प्रमुखता से रखा गया था। अलावा, यह न सिर्फ ''विकसित जनतांत्रिक विचार'' था, बल्कि ''अल्पसंख्यकों की आशंका दूर करने का एक कारगर उपाय भी।'' अंग्रेजों के इस दावे का मुंहतोड़ जवाब देने के लिए कि कि वे भारत में अल्पसंख्यकों के हितो की रक्षा के लिए बने हुए हैं, अन्यथा बहुसंख्यक उन्हें दबा देते; कांग्रेस यह साबित करने पर तुली हुई थी कि यह दावा कितना गलत था। जैसा कि पटेल ने कहा:

''इसे बोगस और गलत दावा साबित करना हमारा काम है। भारत में दूसरों से अधिक दिलचस्पी हमारी है, और अल्पसंख्यकों की रक्षा में भी। हमारी जिम्मेदारी है, उनमें से प्रत्येक को संतुष्टि करना।''

असेंबली को मूलभूत अधिकारों के बारे में कभी कोई शक नहीं रहा। एकमात्र प्रश्न यह था कि तुरंत बाद किए जा सकने वाले राजनीतिक अधिकारों और दूरगामी उद्देश्यों के रूप में समय के साथ प्रदान किए जाने वाले सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों के बीच अंतर कैसे किया जाए। इसका हल आयरिश संविधान से एक विचार लेकर निकाला गया, और सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को ''राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धांत'' बताया गया। इन्हें कचहरियों से दूर रखा गया। कानून की परिधि में और इससे बाहर दो प्रकार के अधिकारों का सुझाव वर्ष 1945 की सप्रू रिपोर्ट ने दिया था (हालांकि सकारात्मक तथा नकारात्मक अधिकारों के संदर्भ में नहीं), और शायद यह विचार वहीं से लिया गया है।

मूलभूत अधिकारों एवं निदेशक तत्त्वों का विश्लेषण

मूलभूत अधिकार सात भागों में विभाजित किए गए हैं:

(i) समानता का अधिकार,

(ii) आजादी का अधिकार,

(iii) शोषण के विरूद्ध अधिकार,

(iv) धर्म-संबंधी अधिकार,

(v) सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार,

(vi) संपत्ति संबंधी अधिकार,

(vii) संवैधानिक उपायों संबंधी अधिकार।

- ये अधिकार संविधान की धाराओ 12 से 35 में शामिल किए गए हैं। इनका उद्देश्य व्यक्तियों और अल्पसंख्यकों की राज्य की मनमानी से रक्षा करना है। लेकिन इनमें से तीन धाराएं अन्य नागरिकों से व्यक्ति की रक्षा के लिए बनाई गई हैं: जैसे धारा 17 छूआछूत को समाप्त करती है; धारा 15 (2) में कहा गया है कि दुकानों, रेस्तरां, कुएं, रोड तथा अन्य जन-स्थानों पर नागरिकों के साथ धर्म, रंग, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा; धारा 23 जबरन श्रम पर रोक लगाती है। जबरन काम औपनिवेशिक राज्य तथा रजवाड़ों द्वारा भी लिया जाता था
- यह अर्द्ध-सामंती भूस्वामियों द्वारा शोषण का अधिक हिस्सा था। इन नागरिक अधिकारों पर अन्य नागरिकों द्वारा हानि पहुंचाए जाने से राज्य द्वारा रोक की आवश्यकता थी। इस प्रकार, राज्य को न केवल नागरिकों के अधिकार पर अतिक्रमण से बचना था, बल्कि दूसरे नागरिकों की ओर से अतिक्रमण से उनकी रक्षा भी करनी थी। ऐसा नागरिक जिसके मूलभूत अधिकार को हानि पहुंचाई गई हो, सुप्रीम कोर्ट या हाई कोर्ट में शिकायत कर सकता था। यह अधिकार छीना नहीं जा सकता, सिवा आपातकाल के। कोर्ट को तय करने का अधिकार है कि सचमुच इन अधिकारों का उल्लंघन हुआ है। इनके निदान के लिए कोर्ट हेबस कॉर्पस, मैंडामस, रोक, क्वो वारंटो और सर्टियोरारी जैसे तरीकों का प्रयोग कर सकता है।
- निर्देशक सिद्धांतों को अदालतों के अधिकार क्षेत्र से पूरी तरह दूर रखा गया है। वे भावी विधायिकाओं और कार्यकारिणी द्वारा निर्देशों और आदेशों के रूप में हैं।
- संविधान का इरादा निर्देशक सिद्धांतों एवं मूलभूत अधिकारों को अविभाज्य बनाया था, और दोनों में किसी टकराव की अपेक्षा नहीं की गई थी। लेकिन यह सच्चाई है कि उनकी व्याख्या संबंधी गंभीर मतभेद कई बार उभर आए हैं।
- यह आम तौर पर माना जाता है कि अदालतों ने वर्ष 1971 तक मूलभूत अधिकारों को निर्देशकों सिद्धांतों से अधिक महत्व दिया है।

- लेकिन इंदिरा गांधी द्वारा वर्ष 1971 तथा वर्ष 1976 मे लाए गए 25वें तथा 42वें संशोधनों के जरिए निर्देशक तत्वों को प्रधानता दी गई। लेकिन वर्ष 1980 में सुप्रीम कोर्ट ने मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारतीय संघ के मुकदमें में महत्वपूर्ण फैसला सुनाया। इसके अनुसार मूलभूत अधिकार एवं निर्देशक तत्व, दोनों ही समान महत्व के थे, और एक के बिना पर दूसरे को छोड़ा नहीं जा सकता था।

धर्मनिरपेक्ष राज्य

संविधान भारत को एक सार्वभौम, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, तथा जनतांत्रिक गणतंत्र घोषित करता है। हालांकि 'धर्मनिरपेक्ष' और 'समाजवादी' शब्द वर्ष 1976 में 42वें संशोधन के जरिए जोड़े गए थे, संविधान की आत्मा धर्मनिरपेक्ष थी। वर्ष 1973 में सुप्रीम कोर्ट ने संविधान के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को इसके मूल लक्षणो में एक बताया। इसके अलावा इसमे मूलभूत अधिकारों में धर्म के आधार पर भेदभाव पर रोक, आस्था की आजादी समेत धार्मिक आजादी धर्म का प्रचार ओर व्यवहार, धार्मिक मामलों का प्रबंधन, किसी भी धर्म को बढ़ावा देने के लिए टैक्स की आजादी, कुछ शैक्षणिक संस्थाओं में धार्मिक पूजा या धार्मिक उपदेश में हिस्सा लेना, अल्पसंख्यकों के हितो की रक्षा और उनके द्वारा अपनी शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित और प्रबंधित करने समेत सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार शामिल हैं।

- भारतीय संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता के अर्थ पर बहस होती रही है। कुछ का कहना है कि पश्चिम में, जहां से यह शब्द लिया गया, इसका मतलब काफी भिन्न है। पश्चिम में चर्च और राज्य के बीच संघर्ष के फलस्वरूप दोनों अलग हो गए। चर्च को धार्मिक मामले तय करने का अधिकार मिला, जबकि राज्य गैर-धार्मिक मामले तय करने लगा। भारत में, धर्मनिरपेक्षता सांप्रदायिक ताकतों के खिलाफ राष्ट्रवादी ताकतों के संघर्ष के सदंर्भ में विकसित हुई।
- ये सांप्रदायिक ताकतें धर्म का प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यों के लिए करना चाहती थीं, और इस प्रकार उभरते राष्ट्र को ध र्म के आधार पर विभाजित करना चाहती थीं। जैसा कि नेहरू ने कहा है:
- ''हम अपने राज्य को धर्मनिरपेक्ष कहते हैं। 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द शायद पूरी तरह उचित नहीं है, लेकिन बेहतर शब्द के अभाव में हम इसी का प्रयोग कर रहे है। इसका अर्थ समाज मे धर्म के प्रति उदासीनता पैदा करना नहीं है। इसका मतलब है, धर्म और आस्था की आजादी को बढ़ावा देना। इनमें उनकी भी आजादी शामिल है जो धर्म नहीं मानते। इसका मतलब है सभी धर्मों को पूरी आजादी; बस शर्त यह है कि वे एक-दूसरे के मामलों में और हमारे राज्य की मूल मान्यताओं में हस्तक्षेप न करें।''
- डॉ. एस राधाकृष्णन ने जो, भारतीय दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान और वर्ष 1962 से वर्ष 1967 तक भारत के राष्ट्रपति रहे, धर्मनिरपेक्षता के भारतीय संदर्भ में कहा:
- हम यह मानते है कि किसी भी धर्म को प्राथमिकता नहीं दी जानी चाहिए.... नागरिकों के किसी भी दल को वे अधि कार एवं विशेषाधिकार नहीं मिलने चाहिए जिनमे वह दूसरों को वंचित रखता है। धर्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति के प्रति न भेदभाव बरता जाना चाहिए और न ही उसे नुकसान पंहुचाया जाना चाहिए। सबों को समान जीवन का पूरा हक होना चाहिए। ऐसी धर्मनिरपेक्षता भारत की प्राचीन धार्मिक परंपरा के अनुकूल है।

❑❑❑

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE ESTD 2015

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

1. लोकतंत्र स्थापित करने की प्रक्रिया से पूर्व भारत की स्थिति पर चर्चा करें।

(200 शब्द)

2. चुनावी राजनीति का आविर्भाव कैसे हुआ? इसका परिणाम क्या हुआ? टिप्पणी करें।

(200 शब्द)

3. भारत चुनाव आयोग की भूमिका पर चर्चा करें।

(200 शब्द)

4. चुनावों पर लोगों की प्रतिक्रिया कैसे थी? इसकी उपलब्धि का विश्लेषण करें।

(200 शब्द)

5. किस प्रकार कांग्रेस पार्टी ने विश्वास निर्माण और जनसमूह की एकीकरण में भूमिका निभाई?

(200 शब्द)

6. विरोधी पार्टी के उद्‌भव के कारकों पर चर्चा करें? सोशलिस्ट पार्टी की भूमिका पर चर्चा करें।

(200 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अध्याय

3

भारत की विदेशी नीति

परिचय

भारतीय गणतंत्र के संस्थापकों की दृष्टि मात्र राष्ट्रीय एकीकरण और आर्थिक स्थिरता तक सीमित नहीं थी। भारतीय समाज को सामाजिक परिवर्तन के एक बड़े दौर से गुजरना था। परिणामस्वरूप, सामाजिक सुधारों के कई महत्वपूर्ण कदम नेहरू काल में उठाए गए जिन्हें कुछ लोग कल्याणकारी राज्य की शुरूआत के रूप में देखते है। भारत विकट और चुनौतीपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में स्वतंत्र हुआ था। दुनिया महायुद्ध की तबाही से अभी बाहर निकली थी और उसके सामने पुनर्निर्माण का सवाल प्रमुख था। एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था बनाने के प्रयास हो रहे थे और उपनिवेशवाद की समाप्ति के फलस्वरूप दुनिया के नक्शे पर नए देशों का उदय हो रहा था। नए देशों के सामने लोकतंत्र कायम करने और अपने देश का विकास करने की दोहरी चुनौती थी। स्वतंत्रता के तुरंत बाद भारत ने जो विदेश नीति अपनाई उनमें हम इन सारे लक्षणों की झलक पाते हैं। वैश्विक स्तर के इन लक्षणों के अलावा भारत की कुछ अपनी चिंताएं भी थीं। अंग्रेजी सरकार अपने पीछे अंतर्राष्ट्रीय विवादों की एक पूरी विरासत छोड़ गई थी। बंटवारे के कारण अलग से दबाव पैदा हुए थे और गरीबी मिटाने का काम सामने मुंह फैलाए खड़ा था। इन्हीं सब के बीच भारत ने एक स्वतंत्र राष्ट्र-राज्य के रूप में अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भागीदारी शुरु की।

एक राष्ट्र के रूप में भारत का जन्म विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में हुआ था। ऐसे में भारत ने अपनी विदेश नीति में अन्य सभी देशों की संप्रभुता का सम्मान करने और शांति कायम करके अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने का लक्ष्य सामने रखा। इस लक्ष्य की प्रतिध्वनि संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में सुनाई देती है।

जिस तरह किसी व्यक्ति या परिवार के व्यवहारों को अंदरूनी और बाहरी कारक निर्देशित करते हैं उसी तरह एक देश की विदेश नीति पर भी घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय वातावरण का असर पड़ता है। विकासशील देशों के पास अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के भीतर अपने सरोकारों को पूरा करने के लिए जरूरी संसाधनों का अभाव होता है। इसके चलते व विकसित देशों की अपेक्षा बड़े सीधे-सादे लक्ष्यों को लेकर अपनी विदेश नीति तय करते हैं। ऐसे देशों का जोर इस बात पर होता है कि उनके पड़ोस में अमन-चैन कायम रहे और विकास होता रहे। इसके अतिरिक्त, विकासशील देश आर्थिक और सुरक्षा की दृष्टि से ज्यादा ताकतवर देशों पर निर्भर होते हैं। इस निर्भरता का भी उनकी विदेश नीति पर जब-तब असर पड़ता है। दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् अनेक विकासशील देशों ने ताकतवर देशों की मर्जी को ध्यान में रखकर अपनी विदेश नीति अपनाई क्योंकि इन देशों से इन्हें अनुदान अथवा कर्ज मिल रहा था। इस वजह से दुनिया के विभिन्न देश दो खेमों में बंट गए। एक खेमा संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके समर्थक देशों के प्रभाव में रहा तो दूसरा खेमा सोवियत संघ के प्रभाव में था।

भारत की विदेश नीतिः गुटनिरपेक्षता एवं पंचशील

भारतीय विदेश नीति के मौलिक सिद्धांत भली-भांति परिभाषित हैं तथा ये आज भी लगभग वहीं हैं जिनका भारत की अंतरिम सरकार के प्रधान के रूप में वर्ष 1946 में पंडित नेहरू ने वर्णन किया था। इनमें निरंतरता इसलिए बनी रही क्योंकि कुछ क्रांतिकारी घटनाओं के होते हुए भी वातावरण की मुख्य मांगे,

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

अर्थात् विश्व शांति तथा सुरक्षा की रक्षा या उपनिवेशवाद तथा नस्ली भेदभाव की समाप्ति, आपसी असहयोग तथा मित्रता के बंधनों को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता शक्ति राजनीति, शीत युद्ध से अलग रहने की आवश्यकता तथा संयुक्त राष्ट्र को सुदृढ़ करने की आवश्यकता आज भी उतनी ही वैध मानी जाती है जितनी कि 1946 में थी।

तथापि भारतीय विदेश नीति के प्रारंभिक वर्षों में अपनाए गए उद्देश्य तथा सिद्धांत काफी स्पष्ट हो गए हैं परंतु स्थिति में परिवर्तन तथा सूक्ष्म पुर्नव्याख्याएं भी हुई हैं। इन सिद्धांतों को सर्वप्रथम पंडित नेहरू ने बनाया तथा परिकल्पित किया।

भारत की विदेश नीति की मूल बातों का समावेश हमारे संविधान के अनुच्छेद-51 में कर दिया गया है जिसके अनुसार राज्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देगा, राज्य राष्ट्रों के मध्य न्याय और सम्मानपूर्वक संबंधों को बनाए रखने का प्रयास करेगा, राज्य अंतर्राष्ट्रीय कानूनों तथा संधियों का सम्मान करेगा तथा राज्य अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को पंच फैसलों द्वार निपटाने की रीति को बढ़ावा देगा। कुल मिलाकर भारत की विदेश नीति के प्रमुख आदर्श निम्नलिखित है:

- भारतीय विदेश नीति अपने आप में स्वतंत्र है, भारत दो बड़ी शक्तियों में से किसी के गुट में शामिल नहीं है। पर ऐसा मानना सही नहीं कि भारत की विदेशी नीति 'तटस्थ' है। वस्तुत: अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत कभी 'तटस्थ' नहीं रहा बल्कि इसके गुण और दोष के आधार पर विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों से अपनी सम्मति स्पष्ट रूप से व्यक्त करता रहा है।
- भारत कभी भी द्विपक्षीय या बहुपक्षीय सैन्य संधि के पक्ष में नहीं रहा है। विश्व की समस्याओं को सुलझाने में सैन्य शक्ति की भूमिका का भारत ने हमेशा विरोध किया है।
- भारत ने सभी देशों से मित्रता बनाये रखने की प्रयास की। उल्लेखनीय है कि भारत ने अमरीकी गुट (पूंजीवादी व्यवस्था) और सोवियत गुट (साम्यवादी व्यवस्था) के देशों से बिना किसी भेदभाव के मित्रता की।

भारत ने कभी भी एक देश को दूसरे देश से लड़ाने की नीति पर अमल नहीं किया। भारत में सरकार का ढांचा लोकतांत्रिक है। लेकिन विदेश नीति के मामले में भारत न पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों से अधिक जुड़ा और न ही साम्यवादी देशों से इस कारण दूर हुआ।

- भारत बहुत दिनों तक ब्रिटेन का उपनिवेश रहा, इसने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही उपनिवेशवाद विरोधी नीति का अनुगमन किया। विश्व के मानचित्र पर भारत के एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरने के साथ ही एशिया-अफ्रीका-लातिनी अमरीका के देशों में उपनिवेशों के स्वतंत्र होने का सिलसिला शुरू हुआ। भारत की आजादी के बाद श्रीलंका, बर्मा और इंडोनेशिया आजाद हुए। इसके बाद भारत ने विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों से उपनिवेशवाद के खिलाफ बोलकर अफ्रीकी देशों की स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- भारत ने अपनी विदेश नीति के अंतर्गत नस्लवाद विरोधी नारा बुलंद किया। उल्लेखनीय है कि गांधी जी ने 19वीं शताब्दी के आरंभ में दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद के खिलाफ संघर्ष किया था।
- भारत इस विचार का समर्थक रहा है कि अस्त्रों की होड़ और सैन्य संधियों को रोके बिना विश्व-शांति कायम करना असंभव है। भारत नि:शस्त्रीकरण को विश्व शांति की कुंजी मानता है। इसके अतिरिक्त नि:शस्त्रीकरण से अस्त्रों पर खर्च की जाने वाली विशाल राशि की बचत होगी और इस राशि का उपयोग गरीब देशों के विकास के लिए किया जा सकता है।

भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएं

सितंबर 1946 में अंतरिम सरकार की स्थापना के बाद से ही भारतीय विदेश नीति विकसित होने लगी। पं. नेहरू ने स्पष्ट कहा कि स्वतंत्र भारत अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक स्वतंत्र नीति का अवलम्बन करेगा और किसी गुट में सम्मिलित नहीं होगा। भारत विश्व के किसी भी भाग में उपनिवेशवाद और प्रजातीय सहयोग बढ़ाने पर भी जोर देगा। यदि स्वाधीन भारत की विदेश नीति का समीक्षात्मक विश्लेषण करें तो निम्नलिखित विशेषताएं हमारे सामने प्रकट होती हैं-

शांति की विदेश नीति

शांति की विदेश नीति सदैव ही विश्व शांति की समर्थक रही है। भारत ने प्रारंभ से ही यह महसूस किया है कि युद्ध और संघर्ष नवोदित भारत के आर्थिक और राजनीतिक विकास को अवरुद्ध करने वाला है। अगस्त 1954 में पणिक्कर ने कहा था-

भारत को इस बात की बड़ी चिंता है कि उसकी प्रगति को तथा सामान्य रूप से मानव-जाति की उन्नति को संकट में डालने वाला कोई युद्ध न हो। 1956 के स्वेज नहर के संकट के कारण भारत की आर्थिक योजनाएं अत्यधिक प्रभावित हुई।

मैत्री और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति

भारत की विदेशी नीति मैत्री और सह-अस्तित्व पर जोर देती है। यदि सह-अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता तो आणविक शस्त्रों से समूची दुनिया का ही विनाश हो जाएगा। इसी कारण भारत ने अधिक से अधिक देशों के साथ मैत्री संधियां और व्यापारिक समझौते किए।

पंचशील सिद्धांत

'पंचशील' के पांच सिद्धांतों का प्रतिपालन भी भारत की शांतिप्रियता का द्योतक है। वर्ष 1954 के बाद से भारत की विदेश नीति को 'पंचशील' के सिद्धांतों ने एक नई दिशा प्रदान की। पंचशील से अभिप्राय है- आचरण के पांच सिद्धांत । जिस प्रकार बौद्ध धर्म में ये व्रत एक व्यक्ति के लिए होते हैं उसी प्रकार आधुनिक पंचशील के सिद्धांतों द्वारा राष्ट्रों के लिए दूसरे के साथ आचरण के सम्बंध निश्चित किए गए हैं। ये सिद्धांत निम्नलिखित प्रकार से हैं-

- एक-दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और सर्वोच्च सत्ता के लिए पारस्परिक सम्मान की भावना
- अनाक्रमण
- एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना
- समानता एवं पारस्परिक लाभ, तथा
- शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व

'पंचशील' के इन सिद्धांतों का प्रतिपादन सर्वप्रथम 29 अप्रैल, 1954 को तिब्बत के सम्बंध में भारत और चीन के बीच हुए एक समझौते में किया गया था। 28 जून, 1954 को चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई तथा भारत के प्रधानमंत्री नेहरू ने पंचशील में अपने विश्वास को दोहराया। इसके उपरांत एशिया के प्राय: सभी देशों ने 'पंचशील' के सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया। अप्रैल 1955 में बाण्डुग सम्मेलन में पंचशील के इन सिद्धांतों को पुन: विस्तृत रूप दिया गया। बाण्डुंग सम्मेलन के बाद विश्व के अधिसंख्य राष्ट्रों ने पंचशील सिद्धांत को मान्यता दी और उसमें आस्था प्रकट की। पंचशील के सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय सम्बंधों के लिए नि:संदेह आदर्श भूमिका का निर्माण करते हैं। पंचशील के सिद्धांत आपसी विश्वासों के सिद्धांत हैं। पं. नेहरू ने स्पष्ट कहा था कि- ''यदि इन सिद्धांतों को सभी देश मान्यता दे दें तो आधुनिक विश्व की अनेक समस्याओं का निदान मिल जाएगा।''

पंचशील सिद्धांत की आलोचना

पंचशील के सिद्धांत आदर्श हैं जिन्हें यथार्थ जीवन में उतारा जाना चाहिए। इनसे हमें नैतिक शक्ति मिलती है और नैतिकता के बल पर हम न्याय और आक्रमण का प्रतिकार कर सकते हैं। आलोचकों का मानना है की भारत-चीन संबंधों की पृष्ठभूमि में 'पंचशील' एक अत्यंत असफल सिद्धांत साबित हुआ। इसके द्वारा भारत ने तिब्बत में चीन की सर्वोत्तम सत्ता को स्वीकार करके तिब्बत की स्वायत्तता के अपहरण में चीन का समर्थन किया था। इसकी आलोचना करते हुए आचार्य कृपलानी ने कहा था कि यह महान सिद्धांत पापपूर्ण परिस्थितियों की उपज है क्योंकि यह अध्यात्मिक और सांस्कृतिक रूप से हमारे साथ सम्बद्ध एक प्राचीन राष्ट्र के विनाश पर हमारे स्वीकृति पाने के लिए प्रतिपादित किया गया था।

साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध

साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध: ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अधीन दासता में पिसने के बाद भारत की साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा नस्लवाद के अमानवीय, अनुदारवादी, तथा उच्च स्तरीय शोषण प्रवृति का पूर्णतया आभास है। भारत की आजादी की लड़ाई वास्तव में साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ाई थी। विश्व के किसी भी भाग में साम्राज्यवाद का अस्तित्व भारत को अस्वीकार्य है।

ऐसे विभिन्न देश जो कभी न कभी साम्राज्यवाद के शिकार थे जैसे इंडोनेशिया, लीबिया, ट्यूनीशिया, अल्जीरिया, मोरक्को, अंगोला, नामीबिया आदि सभी की भारत ने उपनिवेशीय शासन से छुटकारा पाने के लिए किए जाने वाले संघर्ष में पूर्ण रूप से सहायता की है। वर्ष 1947 के बाद से भारत, साम्राज्यवाद तथा नवउपनिवेशवाद की शक्तियों (जो नये राष्ट्रों की स्वतंत्रता को विभिन्न अप्रत्यक्ष तथा सूक्ष्म तरीकों से सीमित कर रहे हैं) के

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

विरुद्ध एशियाई, अफ्रीकी तथा लातीनी अमरीकी राष्ट्रों की एकता बनाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। एशियाई सम्बंध कान्फ्रेंस, वर्ष 1955 के बाडुंग सम्मेलन, गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के सम्मेलनों में, संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की बैठकों में तथा वास्तव में सभी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में, भारत ने इन बुराइयों के विरुद्ध सदा ही आवाज उठाई है। अफ्रीकी-एशियाई एकता की दृढ़ता बल्कि, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा नव-उपनिवेशवाद के विरुद्ध सम्पूर्ण तीसरे विश्व की एकता आज भी भारतीय विदेश नीति के मूल सिद्धांत हैं।

उपनिवेशीय तथा साम्राज्यवादी शक्तियों की ओर से घोर विरोध के बावजूद भारत साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा नव-उपनिवेशवादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष का समर्थन करता रहा है। तथा ऐसा करने के लिए दृढ़ निश्चयी है। इस सम्बंध में शक्तिशाली भूमिका निभाने के लिए भारत दक्षिण-दक्षिण सहयोग के विकास का प्रबल समर्थक रहा है एवं इसके लिए निरंतर प्रयत्नशील है।

संयुक्त राष्ट्र तथा विश्व शांति के लिए समर्थन

भारत संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख सदस्यों में से एक है। भारत ने सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन में भाग लिया था तथा संयुक्त राष्ट्र के चार्टर पर हस्ताक्षर किए थे। तब से लेकर आज तक भारत ने सयुंक्त राष्ट्र तथा दूसरी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के क्रियाकलापों का समर्थन किया है तथा इनमें सक्रियता से भाग लिया है।

संयुक्त राष्ट्र की विचारधारा का समर्थन करने तथा इसके क्रिया-कलापों में सक्रियता सकारात्मक तथा रचनात्मक रूप से भाग लेना भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धांत रहा है। भारत महासभा का एक सक्रिय सदस्य रहा है तथा यह सुरक्षा परिषद् में कई बार अस्थाई सदस्य बना है।

बहुत सी अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के क्षेत्रीय कार्यालय भारत में स्थित है। भारत UNICFF, FAO, UNESCO तथा ऐसी दूसरी संस्थाओं के कार्यक्रमों में सक्रियता से जुड़ा हुआ है। भारत हमेशा से लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण के लिए संयुक्त राष्ट्र के निर्देशों का पालन करता रहा है तथा प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय प्रायोजित कार्यक्रमों को लागू करने के यथासम्भव प्रयत्न करता है। इसलिए संयुक्त राष्ट्र की कार्यप्रणाली का समर्थन करना तथा इसमें सक्रियता से भाग लेना भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

गुटनिरपेक्षता का सिद्धांत

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व राजनीति दो ध्रुवों में विभाजित हो गया। साम्यवादी सोवियत संघ और पूंजीवादी अमेरिका द्वारा संसार के नवस्वतंत्र देशों को अपने-अपने गुटों में शामिल करने तथा इन देशों की शासन प्रणालियों को अपनी विचारधाराओं के अनुकूल ढालने के निरंतर प्रयास किये जा रहे थे। ऐसे विश्व परिदृश्य में भारत ने विश्व राजनीति में अपनी पृथक पहचान एवं स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने के उद्देश्य से गुटनिरपेक्षता नीति का अनुपालन किया। गुटनिरपेक्षता को अपनाये जाने के कारण निम्नलिखित प्रकार से हैं-

- भारत किसी गुट में शामिल होकर विश्व में अनावश्यक तनावपूर्ण स्थिति पैदा करने का इच्छुक नहीं था।
- भारत किसी भी गुट के विचारधारा से ग्रस्त होना नहीं चाहता था। किसी भी गुट में शामिल होने पर भारत की शासनप्रणाली एवं नीतियों पर उस गुट विशेष के नेतृत्व का दृष्टिकोण हावी हो जाता।
- भारत की भौगोलिक सीमाएं साम्यवादी देशों से जुड़ीं थीं, अत: पश्चिमी देशों के गुट में शामिल होना अदूरदर्शी कदम होता। दूसरी ओर साम्यवादी गुट में शामिल होने पर भारत को विशाल पश्चिमी आर्थिक व तकनीकी सहायता से वंचित होना पड़ता।
- नवस्वतंत्र भारत को आर्थिक विकास हेतु दोनों गुटों से समग्र तकनीकी एवं आर्थिक सहायता की जरूरत थी, जिसे गुटनिरपेक्ष रहकर ही प्राप्त किया जा सकता था।
- गुटनिरपेक्षता का सिद्धांत भारत की मिश्रित एवं सर्वमान्य संस्कृति के अनुरूप था।
- भारत के दक्षिणपंथी तथा वामपंथी दलों के विदेश-नीति से जुड़े आपसी मतभेदों को समाप्त करने का सर्वमान्य सूत्र, गुटनिरपेक्षता सिद्धांत को ही स्वीकार किया गया।
- गुटनिरपेक्षता स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान घोषित आदर्शों एवं मान्यताओं का पोषण करती थी। यह गांधीवादी विचारधारा के सर्वाधिक निकट थी।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से भारत ने गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत को अपने विश्व राजनीतिक व्यवहार का प्रमुख मापदंड बनाया।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOCUS ABOVE

भारत की गुटनिरपेक्षता के प्रमुख लक्ष्य

स्वतंत्रता आंदोलन के समय से ही भारतीय नेताओं पर कुछ मान्यताओं का स्पष्ट प्रभाव पड़ चुका था। ये मान्यताएं थीं- राजनीति एवं सत्ता का आदर्शवादी दृष्टिकोण, एशियावाद, पश्चिमी लोकतांत्रिक प्रणाली तथा साम्यवाद का सैद्धांतिक रूप से खंडन और अंतर्राष्ट्रीय सम्बंधों के आदर्शवादी दृष्टिकोण को मान्यता।

इन मान्यताओं के प्रत्यक्ष प्रभाव के आलोक में ही भारत की गुटनिरपेक्षता नीति के लक्ष्य निर्धारित किये गये। ये लक्ष्य इस प्रकार थे-

- अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को कायम रखना और उसका संवर्धन करना।
- उपनिवेशों के लोगों के आत्मनिर्णय अधिकार को बढ़ावा देना।
- समानता पर आधारित विश्व समुदाय की स्थापना तथा रंगभेद का विरोध।
- आण्विक नि:शस्त्रीकरण तथा नवीन आर्थिक व्यवस्था की स्थापना।
- अफ्रीका और एशिया के देशों का समर्थन।
- अंतर्राष्ट्रीय विवादों तथा संघर्षों के शांतिपूर्ण निपटारे का समर्थन।
- संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के अंतर्गत ही उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति करना।

गुटनिरपेक्षता का तात्पर्य

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व के नवस्वतंत्र देशों द्वारा अपनायी गयी गुटों से अलग रहने की नीति को वर्ष 1940 व वर्ष 1950 के दशकों में विद्वानों द्वारा कई नाम दिये गये, जैसे- अप्रतिबद्धता, अहस्तक्षेप, तटस्थता, तटस्थतावाद, सकारात्मक तटस्थता, स्वतंत्र एवं सक्रीयनीति, शांतिपूर्ण सक्रीय सह-अस्तित्व इत्यादि।

जवाहरलाल नेहरू द्वारा मई 1950 में ही इस नीति को व्यक्त करने के लिए गुटनिरपेक्षता शब्द का प्रयोग किया गया था। उसके बाद इस नाम का प्रयोग भारत एवं विदेश में व्यापक रूप से प्रचलित हो गया।

यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि गुटनिरपेक्ष देशों के प्रथम सम्मेलन (बेलग्रेड, 1 सितंबर 1961) में भी इन देशों की नीति को गुटनिरपेक्षता शब्द द्वारा व्यक्त नहीं किया गया।

वास्तव में गुटनिरपेक्षता शब्द किसी बौद्धिक या शैक्षिक सिद्धांत पर कार्य है। गुटनिरपेक्षता की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्न हैं-

- 'फोंटाना डिक्शनरी ऑफ मॉडर्न थॉट' के अनुसार 'शीतयुद्ध की स्थिति में दो परस्पर विरोधी मुख्य शक्तिसमूहों में से किसी का भी पक्ष लेने से इनकार करना। तटस्थता की अपेक्षा गुटनिरपेक्षता कम अलगाववादी थी और ये द्विध्रुवीयता को खुले सैनिक संघर्ष में बदलने से रोकने हेतु किये जाने वाले सामूहिक हस्तक्षेप की धारणा से जुड़ी हुई थी।'
- जवाहरलाल नेहरू के अनुसार 'गुटनिरपेक्षता का अर्थ है, सैनिक गुटों से अपने आपको अलग रखने का किसी देश द्वारा प्रयत्न करना। इसका अर्थ है- जहां तक हो सके, तथ्यों को सैन्य दृष्टि से न देखना। हालांकि कभी-कभी ऐसा करना पड़ता है। परन्तु हमारा दृष्टिकोण स्वतंत्र होना चाहिए और वह अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बंधों की स्थापना में सहायक होना चाहिए।'
- ए.अप्पादोराई ने गुटनिरपेक्षता की सबसे उपयुक्त परिभाषा दी है, उनके अनुसार 'गुटनिरपेक्षता का अर्थ है- शांति कायम रखना' शांतिपूर्ण तरीकों जैसे वार्ता, जांच, मध्यस्थता, समझौता एवं न्यायनिर्णय की दिशा में प्रयत्न', किसी भी पक्ष की आक्रमणकारी के रूप में भर्त्सना करने में तब तक संकोच करना, जब तक तथ्यों की अंतर्राष्ट्रीय जांच द्वारा आक्रमण निर्विवाद रूप से सिद्ध न हो जाये। दोनों पक्षों पर तब तक विश्वास रखना जब तक इसके विपरीत कोई बात सिद्ध न हो जाये तथा वार्ता की संभावना की पूरी खोज करना एवं कम से कम युद्ध को स्थान विशेष तक सीमित रखना- यही भारत का दृष्टिकोण है।

गुटनिरपेक्षता की विशेषताएं

- शीतयुद्ध का विरोध।
- सैन्य एवं सुरक्षा गठबंधनों का विरोध।
- शक्ति राजनीति से निर्लिप्तता।
- स्वतंत्र विदेश नीति का समर्थन।
- शांतिपूर्ण सहअस्तित्व तथा अहस्तक्षेप।
- अलगाववाद की बजाय क्रियाशीलता की नीति।
- कूटनीतिक साधन या वैधानिक स्थिति नहीं।

PARAMOUNT IAS Mission SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
OFFER BOOK ESTD 2005

- गुटनिरपेक्ष देशों की गुटबंदी नहीं।
- विकास के लिए आपसी सहयोग की नीति।
- नवउपनिवेशवाद का विरोध।

जवाहरलाल नेहरू काल में गुटनिपेक्षता की नीति, वर्ष 1947-64

स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों (1947-50) में भारत की गुटनिरपेक्षता नीति अस्पष्ट रही क्योंकि इस समय भारत का झुकाव पश्चिमी गुट की ओर था पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का प्रभाव, ब्रिटिश बाजार की अर्थव्यवस्था को कायम रखने का निर्णय, देश की सेनाओं पर ब्रिटिश निरीक्षण तथा तकनीकी एवं आर्थिक सहायता की जरूरतों इत्यादि ने भारत की पश्चिमी देशों पर निर्भरता को बढ़ा दिया था। इसी निर्भरता के कारण भारत ने पश्चिमी जर्मनी को अपनी मान्यता प्रदान की लेकिन पूर्वी जर्मनी को नहीं। कोरिया युद्ध (1952-53) में भी भारत ने पश्चिमी देशों का समर्थन करते हुए उत्तर कोरिया को आक्रामक घोषित कर दिया।

- वर्ष 1953 में स्टालिन की मृत्यु के बाद भारत के प्रति सोवियत दृष्टिकोण काफी उदार हो गया था जिसके फलस्वरूप भारत की सोवियत संघ से निकटता में वृद्धि होने लगी। वर्ष 1954 की पाकिस्तान-अमरीका संधि के अनुसार अमरीका द्वारा पाकिस्तान को बड़े पैमाने पर हथियार उपलब्ध कराने तथा गोआ के प्रश्न पर पुर्तगाल का समर्थन करने के कारण भारत और अमरीका के सम्बंधों में कटुता पैदा होने लगी थी।
- उसी समय भारतीय प्रधानमंत्री ने रूस की सद्भावना यात्रा भी की। रूस से व्यापार एवं आर्थिक सम्बंधों में वृद्धि होने लगी। रूस ने भारत के भिलाई इस्पात कारखाने हेतु आर्थिक एवं तकनीकी सहायता प्रदान की।
- वर्ष 1956 में स्वेज नहर मामले में भारत ने रूस का समर्थन करते हुए फ्रांस और ब्रिटेन द्वारा मिस्र पर आक्रमण करने की निंदा की। वर्ष 1955 में हंगरी के मामले में भी भारत ने रूस का समर्थन किया। वर्ष 1957 के बाद आर्थिक संकट, विदेशी मुद्रा की कमी तथा खाद्यान्न के अभाव जैसे मुद्दों ने भारत के दृष्टिकोण को पुनः पश्चिमी देशों की तरफ झुका दिया। नेहरू द्वारा अमेरिका की सद्भावना यात्रा की गयी तथा भारत ने पश्चिमी साम्राज्यवाद विरोध के अपने स्वर को धीमा कर लिया।
- वर्ष 1962 में भारत पर चीन द्वारा आक्रमण कर दिया गया जिससे भारतीय गुटनिरपेक्षता नीति को कड़ी परीक्षा से गुजरना पड़ा। युद्ध में भारत को दोनों गुटों की सहायता प्राप्त हुई। वर्ष 1963 में भारत और अमरीका के मध्य अणुऊर्जा के असैन्य उपयोग के सम्बंध में एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए।
- नवंबर 1964 में मझगांव बंदरगाह के पुनर्निर्माण तथा लिएंडर वाढ के युद्धपोतों के निर्माण के विषय में भारत और ब्रिटेन के मध्य एक सुरक्षा संधि सम्पन्न की गई। जून 1964 में भारत के राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने अमरीका की यात्रा की तथा दोनों देशों के मध्य दक्षिण एशियाई क्षेत्र में चीनी आक्रामक गतिविधियों के निरोधक उपायों पर चर्चा की गई। मास्को के साथ बातचीत में भी भारत ने क्षेत्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान में अपनी प्रतिबद्धता दोहराई।
- इसके अतिरिक्त संपूर्ण नेहरू युग में निःशस्त्रीकरण के प्रश्न, फारमूसा जलडमरूमध्य का संघर्ष (1955), हिंद-चीन से संबंधित जेनेवा सम्मेलन (1954), बांडुग सम्मेलन (1955) तथा बेलग्रेड सम्मेलन जैसे महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भारत द्वारा सक्रिय भूमिका निभाई गयी। अणुपरीक्षणों पर प्रतिबंध लगाने का प्रश्न वर्ष 1959 में भारत द्वारा सामान्य सभा की विषय सूची में रखा गया।
- अपनी नीतियों और प्रयासों के फलस्वरूप भारत को एशिया एवं अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों को महाशक्तियों की शक्ति राजनीति से अलग रखने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। वर्ष 1950 में नेहरू द्वारा दावा किया गया कि 'दिल्ली पिछले वर्षों में विश्व मैत्री और शांति का केंद्र बन गया है।'

मूल्यांकन

भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति पूर्णतः नेहरू के दृष्टिकोण और अंतरण पर आधारित थी। इसी कारण गुटनिरपेक्षता को सुसंगत एवं बोधगम्य नीति का रूप देने में कठिनाई पैदा हुई। नेहरू द्वारा गुटनिरपेक्षता को विदेशनीति का साधन तथा लक्ष्य-दोनों, एक साथ मान लेना एक गंभीर भूल थी। गुटनिरपेक्षता भारतीय विदेश नीति की आधारशिला है तथा उसका किसी भी परिस्थिति में परित्याग नहीं किया जा सकता, यह मान लेना आत्मघाती था। भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर गुटनिरपेक्षता के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों को अपनाया जाना अधिक युक्तिसंगत साबित

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE

हो सकता था। इसी प्रकार गुटनिरपेक्षता की नैतिकता से सम्बद्ध मानना असंगत था। वास्तव में गुटनिरपेक्षता सिद्धांत नैतिक दृष्टि से निष्क्रिय था। आवश्यकता पड़ने पर उसके स्वरूप में परिवर्तन किया जा सकता था और राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के लिए उसका परित्याग भी किया जा सकता था। चीनी आक्रमण से पहले भारत द्वारा विदेशी सहायता अस्वीकार करने तथा बाद में उसे स्वीकार करने पर, भारत की गुटनिरपेक्षता सिद्धांत पर सदैव अटल रहने की घोषणा का उपहास हुआ।

- नेहरू द्वारा विवादों के शांतिपूर्ण निपटारे पर जोर देना तथा आण्विक शस्त्रों के निर्माण व परीक्षण की सदा के लिए निंदा करना भी दुर्भाग्यपूर्ण था। वर्ष 1962 के भारत-चीन युद्ध में पराजित होने के बाद गुटनिरपेक्षता की नीति की कड़ी आलोचना की गई। आलोचकों का मानना था कि गुटनिरपेक्षता की नीति के तहत राष्ट्रीय हितों की घोर अपेक्षा की गयी तथा देश की प्रतिरक्षा हेतु आवश्यक तैयारियों के महत्व को नजरंदाज किया गया। भारत यदि पश्चिमी गुट में शामिल होता तो चीन भारत पर आक्रमण करने का साहस भी नहीं जुटा सकता था। भारत-चीन युद्ध के समय उन एशियाई-अफ्रीकी देशों द्वारा भी भारत की सहायता नहीं की गई, जिनके हितों की सुरक्षा के लिए भारत गुटनिरपेक्षता सिद्धांत के माध्यम से निरंतर प्रयत्नशील रहा था। पश्चिमी देशों से सहायता स्वीकार करना भी भारत की निर्गुट नीति का उल्लंघन माना गया और इसे 'पथ विचलन' या भारत की सैद्धांतिक नारेबाजी का खोखलापन की संज्ञा दी गयी। इस प्रकार भारत की गुटनिरपेक्षता ने भारत के शत्रुओं और मित्रों-दोनों को ही भ्रमित किया। यह भारत के राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करने में भी असफल सिद्ध हुई।
- इन सब आलोचनाओं के बावजूद नेहरू काल में गुटनिरपेक्षता के सार व लक्ष्यों को सुरक्षित रखने में काफी सीमा तक सफलता प्राप्त हुई। गुटनिरपेक्ष नीति के अनुपालन द्वारा ही भारत को तृतीय विश्व के नेतृत्वकर्ता का प्रभावपूर्ण दर्जा हासिल हुआ जो आर्थिक एवं सैन्य रूप से कमजोर एक नवस्वतंत्र देश के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बात थी। निरस्त्रीकरण, गठबंधनहीनता, विकासशील देशों की आर्थिक जरूरतों को स्वीकार करने वाली विश्व प्रणाली की स्थापना तथा इन देशों में पूंजी तथा तकनीकी निवेश के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को व्यापक रूप में स्वीकार किया गया। वर्ष 1955 में 'मेनचेस्टर गार्जियन' ने भी यह लिखा था कि ''जब तटस्थ भाव से समय का इतिहास लिखा जायेगा, तब कदाचित यह देखकर आश्चर्य होगा कि अंतिम विनाश, जिसका सभी को भय है, के निवारण में भारत ने अक्सर कितनी उपयोगी भूमिका निभाई है।''
- भारत-चीन युद्ध में विदेशी सहायता के औचित्य को सिद्ध करते हुए नेहरू ने कहा था कि ''चीन का मुकाबला करने के लिए भारत ने जो भी शस्त्रास्त्र सहायता ली है, उसके साथ किसी प्रकार की शर्त नहीं जुड़ी है और बिना शर्त सहायता लेना गुटनिरपेक्षता नीति से अलग हटना नहीं कहा जा सकता।''

गुटनिरपेक्ष देशों का प्रथम सम्मेलन

- गुटनिरपेक्ष आंदोलन को सबसे पहले वर्ष 1955 में बांडुंग (इंडोनेशिया) में सम्पन्न 29 अफ्रीकी-एशियाई देशों के सम्मेलन में स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया गया। इस सम्मेलन में भारत के जवाहरलाल नेहरू, मिस्र के गामेल अब्दुल नासिर तथा यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो (ट्रायो) द्वारा उपनिवेशवाद की समाप्ति हेतु गुटनिरपेक्ष देशों के संयुक्त प्रयासों की जरूरत पर बल दिया गया।
- जून 1961 में 21 देशों की उपस्थिति में सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसमें प्रथम सम्मेलन की अस्थायी विषय-सूची तथा सदस्यता आमंत्रण से जुड़े कुछ मानदंड तय किये गये। सितंबर 1961 में गुटनिरपेक्ष देशों के प्रथम सम्मेलन का आयोजन बेलग्रेड (यूगोस्लाविया) में किया गया। इस सम्मेलन में 25 अफ्रीकी-एशियाई देशों तथा एक यूरोपीय देश ने भी भाग लिया। तीन लैटिन अमरीका के देशों ने पर्यवेक्षकों के रूप में भागीदारी की।
- इस सम्मेलन में एक 27 सूत्रीय घोषणापत्र को स्वीकार किया गया। सम्मेलन में विश्व के सभी भागों में हर प्रकार की उपनिवेशवादी, साम्राज्यवादी, नवउपनिवेशवादी तथा नस्लवादी प्रवृत्तियों की बड़ी निंदा की गई। इसमें अल्जीरिया, अंगोला, कांगो, ट्यूनीशिया आदि देशों में चल रहे स्वतंत्रता संघर्षों का पुरजोर समर्थन किया गया। सम्मेलन में विकासशील देशों के व्यापार विकास हेतु उचित दशाओं की जरूरत पर बल दिया गया।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission

एफ्रो-एशियाई एकता

भारत के आकार, अवस्थिति और शक्ति-संभावना को भांपकर नेहरु ने विश्व के मामलों, खासकर एशियाई मामलों में भारत के लिए बड़ी भूमिका निभाने का स्वप्न देखा था। नेहरु के दौर में भारत ने एशिया और अफ्रीका के नव-स्वतंत्रत देशों के साथ संपर्क बनाए। 1940 और 1950 के दशकों में नेहरु बड़े मुखर स्वर में एशियाई एकता की पैरोकारी करते रहे। नेहरु की अगुवाई में भारत ने 1947 के मार्च में ही एशियाई संबंध सम्मेलन (एशियन रिलेशंस कांफ्रेंस) का आयोजन कर डाला था जबकि अभी भारत को आजादी मिलने में पांच महीने शेष थे। भारत ने इण्डानेशिया की आजादी के लिए भरपूर प्रयास किए। भारत चाहता था कि इण्डोनेशिया डच औपनिवेशिक शासन से यथासंभव शीघ्र मुक्त हो जाए। इसके लिए भारत ने 1949 में इण्डोनेशिया के स्वतंत्रता-संग्राम के समर्थन में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन किया। भारत अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया का प्रबल समर्थक था और उसने पूरी दृढ़ता से नस्लवाद का, खासकर दक्षिण अफ्रीका में जारी रंगभेद का विरोध किया। इण्डोनेशिया के एक शहर बांडुंग में एफ्रो-एशियाई सम्मेलन 1955 में हुआ। आमतौर पर हम इसे बांडुंग-सम्मेलन के नाम से जानते हैं। अफ्रीका और एशिया के नव-स्वतंत्र देशों के साथ भारत के बढ़ते संपर्क का यह चरम बिन्दु था। बांडुंग-सम्मेलन में ही गुटनिरपेक्ष आंदोलन की नींव पड़ी। गुटनिरपेक्ष आंदोलन का पहला सम्मेलन 1961 के सितम्बर में बेलग्रेड में हुआ। गुटनिरपेक्ष आंदोलन की स्थापना में नेहरु की महती भूमिका रही।

- सम्मेलन द्वारा संपूर्ण नि:शस्त्रीकरण की अपील भी जारी की गयी। निष्कर्ष रूप में गुटनिरपेक्ष देशों ने सभी अल्पविकसित एवं विकासशील देशों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का आवाहन किया।
- इस प्रकार प्रथम सम्मेलन के घोषणापत्र ने नवस्वतंत्र राष्ट्रों के मध्य गुटनिरपेक्षता की अवधारणा को व्यापक लोकप्रिय बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप दूसरे गुटनिरपेक्ष सम्मेलन (1964, काहिरा) में सदस्यों की संख्या बढ़कर 47 (11 पर्यवेक्षकों के अलावा) हो गयी।
- भारत की गुटनिरपेक्षता नीति के प्रति प्रतिबद्धता के कारण ही उसे भारत-चीन युद्ध में अमेरिका और सोवियत संघ दोनों की सहायता प्राप्त हो सकी। भारत द्वारा गुटनिरपेक्षता का परित्याग कर अमरीकी गुट में शामिल हो जाने पर भारत-चीन सीमा संघर्ष भी शीत युद्ध का एक अंग बन जाता। इसीलिए नेहरू ने स्पष्ट किया था कि भारत अपनी राष्ट्रीय अखंडता की रक्षा के लिए विदेशी मदद लेने के बावजूद गुटनिरपेक्षता की नीति का त्याग नहीं करेगा।
- भारत ने चीन के साथ उन विषयों पर सहानुभूति दर्शायी जिनका सम्बंध सीमा विवादों से नहीं था। भारत की इस नीति की कोलम्बो सम्मेलन के देशों तथा अमरीका व अन्य देशों द्वारा भी सराहना की गई। भारत में वामपंथियों तथा स्वतंत्र पार्टी दोनों ने भारत की चीन सम्बन्धी नीति का विरोध किया, जो गुटनिरपेक्षता नीति की सफलता का द्योतक था। इस प्रकार नेहरू युग में भारत की गुटनिरपेक्षता नीति सफलता एवं असफलता के विभिन्न चरणों से होकर गुजरी।

अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका

कोरियाई युद्ध

भारतीय गुटनिरपेक्षता के लिए प्रथम मौका और परीक्षा की घड़ी कोरियाई युद्ध थी। यह युद्ध जून 1950 में कम्युनिस्ट उत्तर कोरिया और पश्चिम-समर्थक दक्षिण कोरिया के बीच हुआ था। संघर्ष शुरू होने से पहले भी भारत ने इस परिस्थिति को युद्ध के कगार से पीछे खींचने की कोशिश की थी।

- के.पी.एस. मेनन कोरिया संबंधी संयुक्त राष्ट्र संघ के कमीशन के अध्यक्ष चुने गए थे। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ को अपनी रिपोर्ट में ''महाशक्तियों से कोरिया को एक रहने देने'' की अपील की थी। उन्होंने चेतावनी दी कि ''कोरिया में विस्फोट हो जाएगा''। लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकला।
- युद्ध छिड़ जाने पर भारत ने सुरक्षा परिषद में अमरीका का समर्थन किया, और उत्तर कोरिया को हमलावर बताते हुए युद्ध-बंदी की अपील की। लेकिन जल्द ही अमरीकी खुशी गुस्से में बदल गई। दक्षिण कोरिया को सहायता देने और इस उद्देश्य के लिए संयुक्त सैनिक कमान बनाने संबंधी एक प्रस्ताव पर भारत ने किसी भी पक्ष मे अपना मत नहीं दिया।
- भारत चाहता था कि बाहरी शक्तियां टकराव में शामिल न हों। नेहरू ने ट्रूमन और स्टालिन से अपील की, और स्टालिन से अनुकूल प्रतिक्रिया प्राप्त हुई।

कोरियाई युद्ध का प्रसार

संयुक्त राष्ट्र संघ की कमान के तहत अमरीकी फौजों का नेतृत्व करते हुए जनरल मैकऑर्थर दक्षिणी कोरिया से उत्तरी कोरियाई फौजों को बाहर करते हुए बिना संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुमोदन के 38वें अक्षांश पार कर गए और उत्तर कोरिया में प्रवेश कर गए।

- अमरीकी फौजें कोरिया को चीन से अलग करने वाली यालू नदी की ओर बढ़ने लगीं। चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एन-लाई ने चीन में भारतीय राजदूत के के॰एम॰ पणिक्कर के जरिए पश्चिमी देशों को जवाबी कार्रवाई को चेतावनी दी। लेकिन इसका कोई असर नहीं हुआ (उस समय पेकिंग में पश्चिम और पूर्व के बीच भारत एकमात्र कड़ी था)। तब चीन ने अपने हथियारबंद 'स्वयंसेवकों' के दल के दल कोरिया में भेजे।
- वे अमरीकी फौजियों को 38° अक्षांश तक धकेलने में सफल हो गए। चीन और अमरीकी, दोनों की पक्षों को भारी नुकसान हुआ। नेहरू ने युद्ध समाप्त करवाने का फिर से प्रयत्न किया। उन्होंने एक सम्मेलन बुलाने की कोशिश की। लेकिन अमरीका ने सयुक्त राष्ट्र संघ पर दबाव डालकर एक कुसमय प्रस्ताव पास करवाया जिसमें चीन को हमलावर घोषित किया गया।
- भारत ने इसके खिलाफ मत दिया क्योंकि उत्तर कोरिया में स्पष्टत: मेकऑर्थर, हमलावर थे, न कि चीन। सैनिक गतिरोध की स्थिति पैदा हो गई थी। भारत की अथक कोशिशों के बावजूद दोनों पक्षों को जून 1953 में ही साथ लाना संभव हो पाया। युद्धबंदी पर सहमति हुई और लड़ाई में बंदी बनाए गए सैनिकों की अदला-बदली का फार्मूला तैयार हो पाया।
- कृष्ण मेनन, जिन्होंने ऐसा फार्मूला तैयार किया जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ, और स्टालिन की मृत्यु के बाद सोवियत गुट ने स्वीकार किया। निष्पक्ष देशों का ''रिहाई कमीशन'' बनाया गया जिसके अध्यक्ष एक भारतीय जनरल थिमैय्या थे। उनकी देखरेख में एक भारतीय ''देखरेख दल'' तैयार किया गया। जिसने सैनिकों की रिहाई का कठिन कार्य अपने हाथों में लिया।
- कोरियाई युद्ध गुटनिरपेक्षता में भारत की आस्था की कसौटी थी, और साथ ही शांति में उसके विश्वास की भी। इस परीक्षा में भारत खरा उतरा। उसने हिम्मत के साथ चीनी और सोवियत विरोध का सामना करना पड़ा क्योंकि उसने युद्ध में अमरीकी हस्तक्षेप का साथ देने से इनकार कर दिया था। साथ ही उसने चीन को हमलावर नहीं माना।
- इस बीच वर्ष 1950 में चीन ने तिब्बत पर हमला करके उसे बिना किसी विशेष प्रयत्न के अपने मे मिला लिया। फलस्वरूप भारत को चुप रहना पड़ा। हालांकि नेहरू काफी चिंतित हो गए, फिर भी उन्होंने इससे अपनी कोरिया संबंधी नीति को प्रभावित नहीं होने दिया।
- अमरीकी नीति के विरोध में सोवियत संघ सुरक्षा परिषद से बाहर निकल गया। ऐसी स्थिति में भारत ने चीन की सुरक्षा परिषद में सीट देने पर खास जोर दिया। भारत को अमरीका से अनाज मंगाने की बड़ी जरूरत थी क्योंकि देश में अकाल जैसी परिस्थितियां पैदा हो रही थीं, लेकिन इससे उसने कोरिया में अमरीकी भूमिका संबंधी अपनी दृष्टि प्रभावित नहीं होने दी।

निष्कर्ष: हमेशा सफलता नहीं मिलने पर भी भारत कोशिशें करता रहा। अंत में भारत की स्थिति सही साबित हुई : दोनों पक्षों ने उसी सीमा को स्वीकार किया जिसे वे बदलना चाह रहे थे। अब तक दुनिया ने गुटनिरपेक्षता का महत्व समझ में आ गया था। सोवियत संघ अब भारत को दूसरे प्रकार से देखने लगा था। सोवियत प्रधानमंत्री बुल्गानिन ने भारतीय राजदूत के.पी.एस. मेनन से कहा भी कि सोवियत संघ ''राष्ट्रकुल में भारत की स्थिति की प्रशंसा करता है और आशा करता है कि भारत इसमें बना रहेगा''। यह इस स्थिति के मुताबिक बहुत बड़ा परिवर्तन था जब राष्ट्रकुल की सदस्यता भारत द्वारा पश्चिमी साम्राज्यवाद के सामने आत्मसमर्पण या अकाट्य सबूत माना गया था।

इंडो-चाइना

कोरियाई युद्ध के अंत के बावजूद भी एशिया की शांति क्षणिक ही रही। वर्ष 1954 की शुरूआत में इंडो-चाइना कम्युनिज्म के खिलाफ युद्ध का नया क्षेत्र बनने लगा था। अमरीका भारी पैमाने पर सहायता भेजने लगा था ताकि थकी-हारी फ्रांसीसी औपनिवेशिक शक्ति को जिलाया जा सके।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- फ्रांस वर्ष 1945 से ही विएत-मिन्ह के साथ युद्धरत था। नेहरू ने फरवरी 1954 में युद्धबंदी की अपील की। इसके बाद उन्होंने अप्रैल 1954 में समझौते के लिए सात नेताओं का समर्थन कोलंबो सम्मेलन मे हालिस किया।
- इसके लिए नेहरू ने छह-सूत्री प्रस्ताव पेश किया। कृष्ण मेनन को इंडो-चाइना पर हुए जेनेवा सम्मेलन में एशियाई विचार पेश करने के लिए कहा गया। इस सम्मेलन में भारत को नहीं बुलाया गया। इन कदमों ने तथा दिल्ली में वर्ष 1954 मे नेहरू की चाऊ-एन-लाई से भेंट एवं अन्य अनौपचारिक बातें-मुलाकातों नें इंडो चाइना संघर्ष के अन्तर्राष्ट्रीयकरण को रोकने में मदद की।
- भारत ने चीन से लाओस तथा कंबोडिया की निष्पक्षता की गारंटी हासिल की। साथ ही भारत ने ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस से वादा करवाया कि वे अमरीका को लाओस तथा कंबोडिया में अड्डा बनाने नहीं देंगे।
- भारत की भूमिका के महत्व की पुष्टि फ्रांसीसी प्रधानमंत्री 'पिएरे-मेंडिस-फ्रांस' के द्वारा जेनेवा सम्मेलन के चित्रण से होती है। उन्होंने इसे ''दस शक्तियों का सम्मेलन नौ टेबल पर और भारत'' बताया। चीन के अनुरोध पर भारत को अंतर्राष्ट्रीय कंट्रोल कमीशन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। लाओस, कंबोडिया तथा वियतनाम में विदेशी हथियारों के आयात पर नजर रखना इसके कार्यों में शामिल था।
- विएत-मिन्ह की ओर से चीनी हस्तक्षेप और अमरीकी द्वारा फ्रांस को दी जाने वाली सहायता में वृद्धि, इस हद तक कि क्षेत्र में न्यूक्लियर हथियार तक पहुंच जाएं, का खतरा टल गया। फ्रांस युद्ध से थक चुका था, ब्रिटेन शत्रुतापूर्ण अमरीकी रूख से चिंतित था, और खासकर स्टालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का रास्ता खोज रहा था।
- बाद में कंट्रोल कमीशनों का अमरीका ने भितरघात किया। इंडो-चाइना शीत-युद्ध का एक प्रमुख केंद्र बन गया। आगे चलकर सभी शांति प्रयत्नों ने नेहरू के सुझावों पर आधारित निदान अपनाए। कंबोडिया तथा संपूर्ण क्षेत्र को निष्पक्ष बनाना ऐसी ही एक कोशिश थी।

सुएज नहर का राष्ट्रीयकरण

वर्ष 1956 में अमरीका तथा ब्रिटेन ने संप्रभुत्व से मिस्र पर गुटनिरपेक्षता की नीति छोड़ देने के लिए भारी दबाव डाला। उन्होंने नील नदी पर अस्वान डैम बनाने के लिए किया गया वित्तीय सहायता का वादा वापस ले लिया। इस प्रतिक्रिया के कारण मिस्र ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया। इससे नहर का उपयोग करने वाले घबरा गए।

- ब्रिटेन और फ्रांस ने खासतौर पर नहर पर अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण की मांग की। भारत खुद नहर का एक प्रमुख उपयोगकर्ता था। लेकिन उसने स्वीकार किया कि वर्ष 1888 के कुस्तुतुनिया संधि के अनुसार नहर मिस्र का अभिन्न अंग थी।
- भारत ने काहिरा तथा लंदन, दोनों ही से संयम बरतने की अपील की। उसने अगस्त 1956 के लंदन सम्मेलन में ऐसे फार्मूले पर समझौते की कोशिश की। जिसके तहत मिस्री नियंत्रण, उपयोग करने वालों के लिए सलाहकर्ता की भूमिका और संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार विवादों का निपटारा शामिल हो। भारतीय प्रस्ताव को मिस्त्र समेत व्यापक समर्थन मिला। बाद में जब फ्रांस, ब्रिटेन और इस्रायल ने स्वेज क्षेत्र में अपनी फौजें उतारी, तो अमरीका तक ने इसकी आलोचना की।
- संयुक्त राष्ट्र संघ तथा नेहरू ने इसे 'खुला हमला' तथा 'भूतकाल के औपनिवेशिक तरीकों की ओर वापसी' बताया। संयुक्त राष्ट्र संघ की देख-रेख में उन फौजों की वापसी हुई।
- भारतीय फौजों ने बड़ी संख्या में शांति बनाए रखने वाली सेनाओं के रूप में काम किया। बाद की बातचीत में भारत मिस्र का समर्थन करता रहा, साथ ही उसने इस बात का भी ध्यान रखा कि ब्रिटिश तथा अन्य हितों की रक्षा की जा सके। समय के साथ, ब्रिटेन ने स्वीकार किया कि भारत की भूमिका उचित थी, और इस घटना में भारत-ब्रिटेन संबंधों पर कोई अस्थायी छाप नहीं छोड़ी।

हंगरी

सोवियत संघ द्वारा वर्ष 1956 मे हंगरी मे घुसपैठ की संयुक्त राष्ट्र संघ में तीखी आलोचना की गई, और इसे वापस करने की मांग की गई। इस औपचारिक आलोचना से भारत दूर रहा और पश्चिम से काफी आलोचना झेलनी पड़ी।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FORWARD ABOVE

- यूरोप में दो प्रभाव-क्षेत्रों, पश्चिम और पूर्व, का होना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की स्थिति की सच्चाई थी। इसमें किसी भी प्रकार की गड़बड़ी चारों ओर फैल सकती थी।
- औपचारिक आलोचना करके सोवियतों का अपमान करने से कोई फायदा नहीं था। भारत ने नीतिगत रूप से ऐसा करने से इनकार कर दिया क्योंकि इससे स्थितियाँ और भी कठोर हो जातीं और भविष्य मे कोई भी समझौता कठिन हो जाता।
- नेहरू ने स्वयं सोवियत कार्रवाई की आलोचना की। उन्होंने नाखुशी दर्शाने के लिए दो वर्षों तक बुडापेस्ट कोई राजदूत नहीं भेजा। जवाब में सोवियत तब निष्पक्ष रूख पर अड़ गए जब कश्मीर का मसला अगली बार संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में आया।
- उसके बाद वे पुरानी स्थिति पर वापस आ गए और जब भी भारतीय हितों के खिलाफ प्रस्ताव आते तो वे वीटों का प्रयोग कर देते। भारत की स्थिति आसान नहीं थी। उसने दोनों पक्षों से काफी दबाव का सामना किया और किसी भी दिशा में नहीं झुका।

कांगो की आजादी

भारत की विदेश नीति की एक बड़ी उपलब्धि कांगो की आजादी और एकता की रक्षा थी। कांगो ने बेल्जियम से 30 जून 1960 को आजादी हासिल की थी कि इसके बांता से समृद्ध प्रदेश कटांगा ने कांगो से भी आजादी की घोषणा कर दी। इसके नेता शोंबे को खुले रूप से बेल्जियम का समर्थन प्राप्त था बेल्जियम नागरिकों की रक्षा के नाम पर बेल्जियम फोजों को कांगो की राजधानी भेजा गया। कांगो के प्रधानमंत्री लुमुंबा ने संयुक्त राष्ट्र संघ, अमरिका तथा सोवियत संघ से सहायता की अपील की।

- संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने महामंत्री दाग हैमरशोल्ड को आवश्यक सहायता जुटाने को कहा। विदेशी शक्तियों ने सत्ता की पागलपन भरी दौड़ में अपने द्वारा समर्थित स्थानीय नेताओं को खड़ा किया। अमरीका ने राष्ट्रपति कासावुबु का समर्थन किया, सोवियतों ने पेट्रिस लुमुंबा, और बेल्जियनों ने फौजी नेता मोबुटू के सिर पर हाथ रखा।
- उनके कारनामों से अंततः लुमुंबा की हत्या हो गई। इस हत्या से सारी दुनिया स्तब्ध रह गई। नेहरू ने जोरदार तरीके से मांग की कि संयुक्त राष्ट्र संघ अधिक असरदार भूमिका अदा करे, भाड़े के सैनिकों एवं विदेशी फौजों को निकाल बाहर करे, गृह युद्ध रोके, पार्लियामेंट बुलाए और एक नई सरकार का गठन करवाए।
- उन्होंने यह भी कहा कि भारत इस काम के लिए फौजें भेजने को तैयार है। संयुक्त राष्ट्र संघ इससे सहमत हो गया। सुरक्षा परिषद ने 21 फरवरी 1961 को एक प्रस्ताव पास किया और भारतीय फौजों ने सफलतापूर्ण गृह युद्ध समाप्त करवाया। उन्होंने कटांगा प्रदेश तथा समूचे देश पर केंद्रीय सरकार को सत्ता मार्च 1963 तक फिर से स्थापित करवा दी।
- नेहरू ने फिर से एक बार साबित कर दिया कि इच्छा शक्ति रहने पर गुटनिरपेक्षता सफल हो सकती है। यह न सिफ गुटनिरपेक्षता क लिए जगह मात्र है, बल्कि नव-स्वतंत्र देशों की आवश्यकता थी। महाशक्तियां बड़ी तीव्रता से उन्हें अपने कार्य में शामिल करना चाहती थीं, ताकि पूरा उपभोग करने से पहले ही उनकी आजादी छीन ली जाए।

महाशक्तियों के साथ संबंध

अमरीका

भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का अर्थ अमरीका को अलग रखना नहीं बल्कि उसके साथ दोस्ताना संबंध कायम रखना था। अमरीका युद्धोतर विश्व की एक प्रमुख शक्ति था। भारत को टेक्नोलॉजी, मशीनों विकास के लिए सहायता, जनता के लिए भोजन, और राष्ट्र-निर्माण प्रथा जनतांत्रिक प्रयत्नों के लिए मदद की जरूरत थी और भारत को समझ थी कि यह अमरीका दे सकता था। लेकिन कश्मीर संबंधी अमरीकी नीति ने मित्रता की यह आशा सामाप्त कर दी। सुरक्षा परिषद पर अमरीका तथा उसके सहयोगियों का प्रभुत्व था। 40 के दशक के अंत और 50 के दशक की शुरूआत में उसने भारत द्वारा पाकिस्तानी हमले के आरोप की अनदेखी की। और यह तब जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ ने कश्मीर में पाकिस्तानी फौजों की उपस्थिति की रिपोर्ट दी थी। सयुंक्त राष्ट्र के मध्यस्थों की वे सारी रिपोर्टों जो भारत के अनुकूल थीं, उपेक्षित कर दीं गईं। शक्तिशाली पश्चिमी मीडिया ने यह झूठ फैलाया कि भारत संयुक्त राष्ट्र के निर्देशों का पालन नहीं कर रहा है। अनाज की सहायता का भारत का अनुरोध, अनिश्तिता की स्थिति में डाल दिया गया। यह कहा गया कि वर्ष 1949 में अपनी अमरीका यात्रा के दौरान नेहरू ने इसकी

PARAMOUNT IAS Mission SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABLE ESTD 2015

मांग ही नहीं की, हालांकि उन्होंने अकाल की स्थिति का विस्तृत वर्णन पेश किया था। लेकिन जैसे ही चीन एवं सोवियत संघ ने सहायता देना शुरू किया, अनाज से भरे जहाज आने लग गए।

- अमरीका ने भारत द्वारा कम्युनिस्ट चीन को मान्यता दिया जाना पसंद नहीं किया, और न ही भारत द्वारा चीन की संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता की मांग कों। कोरिया संबंधी भारत की आरंभिक स्थिति का स्वागत हुआ, लेकिन बाद की स्थिति में नाराजगी हुई।
- पाकिस्तान को वर्ष 1952 मे ही कुछ सैनिक सहायता दी गई, हालांकि यह वर्ष 1953 में प्रकाश मे आया। वैसे तो कहा गया कि वे हथियार सोवियत कम्यूनिस्ट खतरे के खिलाफ दिए जा रहे हैं, लेकिन दिए जाने वाले अस्त्र हिंदूकुश पार नहीं कर सकते थे और मात्र भारत के खिलाफ प्रयुक्त हो सकते थे।
- भारतीय आपत्तियों की अमरीका द्वारा यह अर्थहीन बात कहकर उपेक्षा की गई कि उनका प्रयोग भारत के खिलाफ नहीं होगा। पाकिस्तान को सेंटो, सिएटो, इत्यादि में शामिल कर शांतियुद्ध को हम उपमहादेश में लाने की कोशिशों पर नेहरू ने नाराजगी जाहिर की। अमरीका द्वारा गुटनिरपेक्षता को अनैतिक बताया जाना भी मामले को अधिक उलझाने में ही मददगार साबित हुआ। गोवा के प्रश्न पर भी अमरीका भारतीय हितों के प्रति असंवेदनशील साबित हुआ।
- अमरीका ने वर्ष 1955 में पुर्तगाल के इस दावे का समर्थन किया कि गोवा पुर्तगाल का ही एक प्रदेश है। उसने भारत की तब आलोचना की जब चौदह वर्षों तक धीरज रखने के बाद 1961 में उसने गोवा को फौज भेजकर मुक्त करा लिया।

शीतयुद्ध और भारत-अमेरिका संबंध

दुनिया के दो प्रमुख जनतंत्रों के बीच कठिन संबंधों का एक बड़ा कारण शीतयुद्ध के बारे में अलग-अलग दृष्टिकोण था। अमरीका के कम्युनिज्म के बारे में ग्रंथियों में उलझा हुआ था। वह यह मानने को तैयार नहीं था कि दूसरों के विचार अलग भी हो सकते हैं। वाशिंगटन से दुनिया काली या सफेद दीख पड़ती थी, लेकिन भारत की दृष्टि मे तो वह विभिन्न रंगों से बनी थी। नेहरू कम्युनिस्टों को आजादी के आंदोलन के दिनों से ही साथियों के रूप में जानते थे। वे मार्क्सवाद से गहरे रूप से प्रभावित थे। कम्युनिस्टों के साथ नेहरू के मतभेद भी थे, यहां तक कि सत्ता में आने के तुरंत बाद उन्हें एक कम्युनिस्ट विद्रोह कुचलना भी पड़ा। लेकिन फिर भी वे उन्हें नीची निगाह से नहीं देखते थे। भारत हथियार पाने के लिए शीतयुद्ध में पश्चिम का साथ देने को तैयार नहीं था, जैसा कि पाकिस्तान कर रहा था। भारत कम्युनिस्ट खतरे संबंधी अमरीकी विचार से सहमत नहीं था। भारत एशिया तथा अफ्रीका के अन्य देशों को गुटनिरपेक्ष रहने की प्रेरणा दे रहा था।

- यह सुझाव काफी विस्तृत ढंग से दिया गया है कि भारत और अमरीकी विरोध शीत युद्ध में उसका साथ देने में भारत के इनकार से पहले का है। यह भी कहा गया है कि अमरीकी प्रशासन ने कांग्रेस नेताओं के प्रति नापसंदगी ब्रिटेन से ली है। उसमें ब्रिटिश गुप्तचर अफसरों का भी हाथ है जिन्होंने सी.आई.ए. की स्थापना में मदद की। आखिर कांग्रेस नेताओं ने एक विशाल साम्राज्य गिरा दिया था।
- अमरीकियों ने ब्रिटेन के ही समान मुसलिम लीग/पाकिस्तान के प्रति सकारात्मक रूख अपनाया, क्योंकि वह भी ब्रिटिश समर्थक था और युद्ध-प्रयत्नों में मदद कर चुका था।
- ब्रिटेन के ही समान उन्होंने कल्पना की और इच्छा पाली कि भारत की एकता बची नहीं रहेगी। अमरीका ने सोचा कि भारत की इतनी अधिक विविधता उसे खंडित कर देगी। इसलिए उसे कम्युनिज्म के खिलाफ एक ठोस दीवार नहीं माना गया। इसलिए, यदि भारत चाहता तो भी एक सीमांत राज्य नहीं बन सकता था जिसका समर्थन पश्चिमी देश करते क्योंकि इसके स्थायित्व और भरोसेमंद होने के बारे में संदेह था।
- यह भी महसूस किया गया कि जहां अमरीकी नीति का मुख्य स्रोत शक्ति और इसके लिए स्वस्थ आदर था, वहीं ''भारत के पास शक्ति नहीं थी।'' समझा गया कि भारतीय नेतृत्व जानबूझकर शक्ति को नीचा दिखाना चाहता था और विश्व राजनीति मे इसका प्रयोग कम करना चाहता था।
- इसे अमरीकी नेतृत्व और प्रशासन कभी नहीं समझ सका। साथ ही, अमरीकी प्रशासन में एक शक्तिशाली उपनिवेशवाद समर्थक झुकाव था जो युद्ध के बाद फ्रांसीसियों और अंग्रेजों को अपने उपनिवेशों में वापसी चाहता था। वह अफ्रीका में पुर्तगाली उपनिवेशवाद का समर्थन कर रहा था।

साथ ही, अमरीकी प्रशासन में एक शक्तिशाली उपनिवेशवाद समर्थक झुकाव था जो युद्ध के बाद फ्रांसीसियों ओर अंग्रेजों को अपने उपनिवेशों में वापसी चाहता था।

- वह अफ्रीका में पुर्तगाली उपनिवेशवाद का समर्थन कर रहा था। साथ ही, वह दक्षिण अफ्रीका में वोर्स्टर और रोडेशिया में ईयन स्मिथ के आंतरिक उपनिवेशवाद का भी समर्थन कर रहा था। इस बात की बहुत कम संभावना है कि इन तबकों में भारत का प्रखर साम्राज्यवाद-विरोध प्रशंसा का विषय रहा हो।
- इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि भारत-अमरीकी संबंधों में निरंतर शत्रुता की थी। इसके विपरीत, दोनों देशों की जनता के संबंध दोस्ताना बने रहे। आर्थिक संबंधों में विकास हुआ क्योंकि अमरीका टेक्नोलॉजी और मशीनों का स्रोत था।
- भारत में प्रभावशाली तबके अमरीका-समर्थक थे। अमरीका में जानकार उदार विचारों वाला महत्वपूर्ण तबका भारत समर्थक था। वे वोर्स्टर और रोडेशिया में ईयन स्मिथ के आंतरिक उपनिवेशवाद का भी समर्थक था। वे वोर्स्टर और रोडेशिया में ईयन स्मिथ के आंतरिक उपनिवेशवाद का भी समर्थन कर रहा था। इसमें चेस्टर बाउल्स, जॉन शेर्मन कूपर और सीनेटर फुलब्राइट शामिल थे। इस बात की बहुत कम संभावना है कि इन तबकों में भारत का प्रखर साम्राज्यवाद-विरोध प्रशंसा का विषय रहा हो।
- पचास के दशक के अंत में संबंधों मे काफी सुधार आया। आंशिक रूप से इसका कारण अमरीका द्वारा भारत की बेहतर समझ थी। शायद सोवियत संघ के साथ नजदीकी संबंधों ने भारत का मूल्य बढ़ा दिया था। केनेडी प्रशासन ने अपने एक महत्वपुर्ण व्यक्ति को भारत भेजकर संबंध सुधारने की कोशिशें की। उसने वर्ष 1961 में जॉन के. गॉलब्रेथ को राजदूत बनाकर भारत भेजा, जिन्हें भारत से लगाव था और नेहरू से अच्छी बनती थी।
- वर्ष 1962 में भारत पर चीनी हमले ने परिस्थिति बिल्कुल ही बदल दी। नेहरू तो विश्वास ही नहीं कर पाए, चकित हो वे मदद के लिए केनेडी के पास गए। वे खुशकिस्मत रहे कि गॉलब्रेथ के समान व्यक्ति मध्यस्थता कर रहे थे, जिन्होंने इस अजीबो-गरीब मसले को थोड़ा संभाल लिया।

लेकिन यह कहानी चीन द्वारा एक महान और शुभाकांक्षी को धोखा देने के दुखभरे इतिहास के रूप में जानी चाहिए।

भारत एवं सोवियत संघ

सोवियत संघ के साथ भारत के संबंध आरंभ में सौहार्द्रपूर्ण नहीं थे, लेकिन धीरे-धीरे दोनों देश काफी नजदीक आने लगे। सोवियत संघ पहले यह समझता था कि भारत अभी भी साम्राज्यवादी प्रभाव में है। भारत की आजादी की लड़ाई कांग्रेस पार्टी के नेताओं की ओर दुविधापूर्ण कम्युनिस्ट रूख नेहरू की सरकार के प्रति भी बरकरार रहा। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तेलंगाना में हथियारबंद विद्रोह का नेतृत्व कर रही थी। राष्ट्रकुल में बने रहने का भारत का फैसला सोवियतों की दृष्टि में साम्राज्यवाद के सामने भारत के आत्मसमर्पण का सबूत था। सोवियत राजदूत नोवीकोव ने इसे ''भारत तथा दुनिया के लिए एक दुर्भाग्यपूर्ण दिन'' बताया।

- नेहरू वर्ष 1946 की अंतरिम सरकार के उपाध्यक्ष के रूप मे अपने भाषण के समय से ही सोवियत संघ की ओर दोस्ताना थे। वे सोवियत संघ के प्रशंसक थे और वहां वर्ष 1927 में गए थे। उन्होंने भारत में कम्युनिस्ट विद्रोह को सोवियत से मित्रता का अभाव मानने से इनकार कर दिया। मित्रता के विशेष संकेत के रूप में आजादी से पहले ही उन्होंने राजनयिक संबंध बनाने के लिए अपनी बहन विजयलक्ष्मी पंडित को राजदूत बनाकर भेजा। उल्लेखनीय है, कि स्टालिन ने उनसे कभी भेंट नहीं की। शायद कोरियाई युद्ध संकट के दौरान भारत के व्यवहार और साम्राज्यवादी प्रभाव से उसकी दूरी के कारण वर्ष 1951-52 से संबंधों में सौहार्द्रता आने लगी।
- चीन के साथ-साथ रूस ने भी भारत में अकाल के समय अनाज की सहायता भेजना शुरू की। उसी वक्त अमरीका इस संबंध में निर्णय नहीं ले रहा था। स्टालिन भारत के नए राजूदत एस. राधाकृष्णन से कई बार मिले, और मित्रता संधि का प्रस्ताव भी रखा। संयुक्त राष्ट्र संघ से कश्मीर के प्रश्न पर समर्थन भी मिलने लगा, और भा॰क॰पा॰ से नेहरू सरकार पर हमला कम करने को कहा गया। यह प्रक्रिया वर्ष 1954 में स्टालिन की मृत्यु के बाद तेज हो गई।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

- पाकिस्तान द्वारा सीटो और सीटों में शामिल होने के बाद सोवियत संघ ने वर्ष 1954 में भारत को सैनिक सहायता देने का प्रस्ताव रखा। लेकिन मुफ्त सैनिक सहायता न लेने की अपनी नीति के अनुरूप भारत ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। वर्ष 1955 मे नेहरू एक बड़ी ही सफल यात्रा पर सोवियत संघ गये और उसी वर्ष बाद में खुशचेव और बुल्गानिन उतनी ही सफल यात्रा पर भारत आए। वर्ष 1956 मे सोवितयत कम्युनिस्ट पार्टी की बीसवीं कांग्रेस ने स्टालिन की मृत्यु के बाद गैर-स्टालिनीकरण की प्रक्रिया तेज कर दी। साथ ही उसने विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देशों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति अपनाकर शीतयुद्ध का प्रभाव कम करने की कोशिश की। यह बाते दूसरी कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए विचारधारात्मक दिशा साबित हुईं। साथ ही, सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने समाजवाद की ओर शांतिपूर्ण रास्ते के रूप में मार्क्सवाद में बिल्कुल नया विचार जोड़ा। यह अलग बात है कि अमरीका की अपनी ही दृष्टि इतनी ओझल थी कि वह इन संभावनाओं के प्रति बिल्कुल ही संवेदनहीन बना रहा।
- भारत-सोवियत संबंधों के लिए यह बड़ा मददगार साबित हुआ, क्योंकि सहयोग के रास्ते से सारी बाधाएं हट गई। वर्ष 1955 से सोवियत संघ ने कश्मीर के प्रश्न पर भारत को पूरा समर्थन दिया और वर्ष 1956 से उसने सुरक्षा परिषद में इस प्रश्न पर भारत के पक्ष में ही वीटों का प्रयोग करना आरंभ किया। यह कम महत्व की बात नहीं थी क्योंकि सोवियत समर्थन के पहले तक सुरक्षा परिषद में भारत की स्थिति बड़ी कठिन थी। इन घटनाओं ने भारत-सोवियत मैत्री मजबूत की। दोनों देशों ने उपनिवेशवाद के खिलाफ एक ही स्थिति अपनाई। संयुक्त राष्ट्र संघ में सोवियत संघ ने गोवा के प्रश्न पर अमरीका के खिलाफ का समर्थन किया।

चीनी हमला, भारत और सोवियत संघ

भारत द्वारा चुने गए आर्थिक रास्ते ने इसे सोवियत संघ के नजदीक ला दिया। यह रास्ता औद्योगीकरण, खासतौर पर भारी उद्योगों में सार्वजनिक क्षेत्र की नेतृत्वकारी भूमिका और योजना पर आधारित था। पश्चिमी देश, विशेषकर अमरीका सहायता देने से हिचकिचा रहे थे। लेकिन सोवियत संघ तुरंत वर्ष 1956 में भिलाई इस्पात कारखाने मे मदद देने को तैयार हो गया। उसके बाद अंग्रेज दुर्गापुर मे आए और राउरकेला में जर्मन आए। बोकारो संयत्र के लिए अमरीकियों से फिर संपर्क स्थापित किया गया। लेकिन जब वे दिखावा करते रहे तो सोवियत फिर सामने आए। बाद के वर्षों में उन्होंने तेल की खोज के कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1973-74 में हिसाब लगाया गया कि ''भारत के इस्पात का 30 प्रतिशत, तेल का 35 प्रतिशत, बिजली ऊर्जा का 20 प्रतिशत, भारी बिजली यंत्रों का 65 प्रतिशत और भारी मशीनें बनाने की मशीनों का 85 प्रतिशत सोवियत सहायता-प्राप्त योजनाओं में उत्पादित होता है।''

- भारत और चीन के बीच वर्ष 1959 से ही संबंध बिगड़ने लगे। उस वक्त दलाई लामा भारत में शरण के लिए आए और भारत-चीन सीमा पर सैनिक झड़पें होने लगीं। ऐसी स्थिति मे सोवियत संघ ने एकाएक आने कम्युनिस्ट भाई का साथ नहीं दिया। वह निष्पक्ष रहा जो उस वक्त एक बड़ी उपलब्धि थी। नेहरू ने सोवियत स्थिति का महत्व पहचाना और वे उसके नजदीक पहुंचे। चीनी लोग सोवियत संघ के साथ अपने मतभेद इसी घटना से मानते हैं। उसी वर्ष भारत एवं सोवियत संघ ने सैनिक सप्लाई का प्रथम समझौता किया।
- वर्ष 1960 में भारत को सप्लाई पहुंचाने वाले हवाई जहाजों, हेलीकॉप्टरों और सीमा रोड विकास बोर्ड के लिए इंजीनियरिंग सामानों की सप्लाई होने लगी। यह बोर्ड चीन द्वारा विवादित क्षेत्रों में रोड बनाने के लिए जिम्मेदार था। वर्ष 1962 के मध्य में भारत के मिग हवाई जहाज के उत्पादन करने की इजाजत देने वाला समझौता किया गया। यह पहला मौका था जब सोवियतों ने एक गैर-कम्युनिस्ट देश को विकसित सैनिक साजो-सामान के उत्पादन की इजाजत दी थी जो चीनियों तक को नहीं मिली थी।
- अक्टूबर 1962 में भारत पर चीनी हमले के दौरान सोवियत संघ ने फिर निष्पक्ष रूख अपनाया। इसका आंशिक कारण क्यूबा के मिसाइल संकट का चरम सीमा पर होना था। बाद में, दिसंबर 1962 में महत्वपूर्ण सोवियत नेता सुस्लोव ने सुप्रीम सोवियत की एक बैठक में बिना दुविधा के चीन को युद्ध के लिए जिम्मेदार बताया।

भारत-चीन युद्ध और पश्चिमी देश

भारत-चीन युद्ध के समय पश्चिमी देशों ने सैनिक साजो-सामान देने का अपना वादा पूरा नहीं किया। उनके विपरित सोवियतों ने वर्ष 1963 मे निम्नलिखित सामान सप्लाई करने के और भी समझौते किए, जैसे-हथियारों की बिक्री, इंटरसेप्टर और हेलीकॉप्टर देने, टैंक, घूमने वाले राडार सेट, जमीन से हवा मे मार करने वाली मिसाइलें, पनडुब्बियों, मिसाइल वोट, पहरा देने वाले जहाज, इत्यादि। उन्होंने भारत में मिग विमान के उत्पादन संबंधी सुविधाएं विकसित करने में मदद की। साथ ही, नौसेना जहाजों के लिए डॉकयार्ड भी बनाया। इसी स्वतंत्र उत्पाद के आधार के कारण भारत वर्ष 1971 का युद्ध जीत पाया। महत्व की बात यह है कि अमरीका के विपरीत सोवियतों ने सैनिक कार्रवाईयों की देखरेख के लिए न ही अपने विशेषज्ञ नियुक्त किए और न ही साजो-सामान के उपयोग की कोई कठिन शर्तें रखीं। साथ ही साथ, इन संबंधों से सोवियत संघ को भी फायदा पहुंचा। भारत अफ्रीकी-एशियाई नव-स्वतंत्र देशों की दुनिया में प्रवेश का महत्वपूर्ण जरिया था। ये देश अमरीकी पिछल्लगू नहीं बनना चाहते थे, और सोवयित मैत्री चाहते थे। उससे सोवियत संघ को शीतयुद्ध में भी सहायता मिली।

भारत के समान सोवियत संघ की भी चीन के साथ लंबी सीमा थी। उसकी भी कई अनसुलझी सीमा समस्याएं थीं। भारत के साथ दोस्ती चीन पर अंकुश का काम कर रही थी, और इससे सोवियत संघ को फायदा था। भारतीय गुटनिरपेक्षता शक्ति-संतुलन को पश्चिम के प्रतिकूल कर दे रही थी। सोवियत संघ अमरीकी सैनिक अड्डों एवं संधियों से घिरा हुआ था। इसलिए उसे मित्रों की जरूरत थी और उसके फलस्वरूप संबंध बराबरी के बन रहे थे। इसके अलावा, अपनी सारी खामियों के बावजूद मार्क्सवाद रंगभेद-विरोधी, साम्राज्यवाद विरोधी एवं गरीबों के हक में है। इस कारण, सोवियत प्रभुत्व रूख नहीं अपना सकते थे, जो अमरीकी अकसर किया करते, और जिससे भारतीयों को नाराजगी होती। इस प्रकार, भारत-सोवियत मैत्री भारतीय विदेश नीति के सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में बनकर उभरा।

पड़ोसियों के साथ संबंध

चीन के साथ शांति और संघर्ष

पाकिस्तान के साथ अपने संबंधों के विपरीत आजाद भारत ने चीन के साथ अपने रिश्तों की शुरुआत बड़े दोस्ताना ढंग से की। चीनी क्रांति वर्ष 1949 में हुई थी। इस क्रांति के बाद भारत, चीन के कम्युनिस्ट सरकार को मान्यता देने वाले पहले देशों में एक था। पश्चिमी प्रभुत्व के चंगुल से निकलने वाले इस देश को लेकर नेहरु के हृदय में गहरे भाव थे और उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय फलक पर इस सरकार की मदद की। नेहरु के कुछ सहयोगियों-मसलन सरदार वल्लभ भाई पटेल को आशंका थी कि आगामी दिनों में चीन भारत पर चढ़ाई कर सकता है। लेकिन नेहरु सोच रहे थे कि भारत पर चीन के आक्रमण की संभावना दूर-दूर तक नहीं है। बहुत दिनों से भारत की चीन से लगती सीमा पर सेना के बजाय अर्द्ध-सैनिक बल रखवाली कर रहे थे।

शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के पांच सिद्धांतों यानी पंचशील की घोषणा भारत के प्रधानमंत्री नेहरु और चीन के प्रमुख चाऊ एन लाई ने संयुक्त रूप से 29 अप्रैल, 1954 में की। दोनों देशों के बीच मजबूत संबंध की दिशा में यह एक अगला कदम था। भारत और चीन के नेता एक-दूसरे के देश का दौरा करते थे और उनके स्वागत में बड़ी भीड़ जुटती थी।

चीन का आक्रमण, 1962

चीन के साथ भारत के इस दोस्ताना रिश्ते में दो कारणों से खटास आयी। चीन ने वर्ष 1950 में तिब्बत पर कब्जा कर लिया। इससे भारत और चीन के बीच ऐतिहासिक रूप से जो एक मध्यवर्ती राज्य बना चला आ रहा था, वह खत्म हो गया। शुरू-शरू में भारत सरकार ने चीन के इस कदम का खुले तौर पर विरोध नहीं किया। बहरहाल, तिब्बत की संस्कृति को कुचलने की खबरें जैसे-जैसे सामने आने लगी, वैसे-वैसे भारत की बेचैनी भी बढ़ी। तिब्बत के धार्मिक नेता दलाई लामा ने भारत से राजनीतिक शरण मांगी और वर्ष 1959 में भारत ने उन्हें शरण दे दी। चीन ने आरोप लगाया कि भारत सरकार अंदरूनी तौर पर चीन विरोधी गतिविधियों को हवा दे रही है।

इससे कुछ दिनों पहले भारत और चीन के बीच एक सीमा-विवाद भी उठ खड़ा हुआ था। भारत का दावा था कि चीन के साथ सीमा-रेखा का मामला अंग्रेजी-शासन के समय ही सुलझाया जा चुका है। लेकिन चीन की सरकार का कहना था कि अंग्रेजी शासन के समय का फैसला नहीं माना जा सकता। मुख्य विवाद चीन से लगी लंबी सीमा-रेखा के पश्चिमी और पूर्वी छोर के बारे में था। चीन ने भारतीय भू-क्षेत्र में पड़ने वाले दो इलाकों-जम्मू-कश्मीर के लद्दाख वाले हिस्से के अक्साई चीन और

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

अरूणाचल प्रदेश के अधिकांश हिस्सों पर अपना अधिकार जताया। अरूणाचल प्रदेश को उस समय नेफा या उत्तर-पूर्वी सीमांत कहा जाता था। वर्ष 1957 से 1959 के बीच चीन ने अक्साई चीन इलाके पर कब्जा कर लिया और इस इलाके में उसने रणनीतिक बढ़त हासिल करने के लिए एक सड़क बनाई। दोनों देशों के शीर्ष नेताओं के बीच लंबी-लंबी चर्चाएं और बातचीत चली लेकिन इसके बावजूद मतभेद को सुलझाया नहीं जा सकता। दोनों देशों की सेनाओं के बीच सीमा पर कई बार झड़प हुई।

जिस समय पूरे विश्व का ध्यान दो महाशक्तियों की तनातनी से पैदा क्यूबा के मिसाइल-संकट की तरफ लगा हुआ था, ठीक उसी समय चीन ने वर्ष 1962 के अक्टूबर में दोनों विवादित क्षेत्रों पर बड़ी तेजी तथा व्यापक स्तर पर हमला किया।

पहला हमला एक हफ्ते तक चला और इस दौरान चीनी सेना के अरूणाचल प्रदेश के कुछ महत्वपूर्ण इलाकों पर कब्जा कर लिया। हमले का अगला दौर नवम्बर महीने में शुरू हुआ। लद्दाख से लगे पश्चिमी मोर्चे पर भारतीय सेना ने चीन की बढ़त रोकी लेकिन पूर्व में चीनी सेना आगे बढ़ते हुए असम के मैदानी हिस्से के प्रवेशद्वार तक पहुंच गई। आखिरकार, चीन ने एकतरफा युद्धविराम घोषित किया और चीन की सेनाएं उस मुकाम पर लौट गई जहां वे हमले से पहले के वक्त तैनात थीं।

भारत-चीन संघर्ष का देश पर प्रभाव

चीन-युद्ध से भारत की छवि को देश और विदेश दोनों जगह धक्का लगा। इस संकट से उबरने के लिए भारत को अमेरिका और ब्रिटेन दोनों से सैन्य मदद की गुहार लगानी पड़ी। सोवियत संघ इस संकट की घड़ी में तटस्थ बना रहा। चीन-युद्ध से भारतीय राष्ट्रीय स्वाभिमान को चोट पहुंची लेकिन इसके साथ-साथ राष्ट्र भावना भी बलवती हुई। कुछ प्रमुख सैन्य-कमांडरों ने या तो इस्तीफा दे दिया या अवकाश ग्रहण कर लिया। नेहरु के नजदीकी सहयोगी और तत्कालीन रक्षामंत्री वी.के. कृष्णमेनन को भी मंत्रिमण्डल छोड़ना पड़ा। नेहरु की छवि भी थोड़ी धूमिल हुई। चीन के इरादों को समय रहते न भांप सकने और सैन्य तैयारी न कर पाने को लेकर नेहरु की बड़ी आलोचना हुई। पहली बार, उनकी सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाया गया और लोकसभा में इस पर बहस हुई। इसके तुरंत बाद, कांग्रेस ने कुछ महत्वपूर्ण उप-चुनावों में पटखनी खाई। देश का राजनीतिक मानस बदलने लगा था।

भारत-चीन संघर्ष का असर विपक्षी दलों पर भी हुआ। इस युद्ध और चीन-सोवियत संघ के बीच बढ़ते मतभेद से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) के अंदर बड़ी उठा-पटक मची। सोवियत संघ का पक्षधर खेमा भाकपा में ही रहा और उसने कांग्रेस के साथ नजदीकी बढ़ायी। दूसरा खेमा कुछ समय के लिए चीन का पक्षधर रहा और यह खेमा कांग्रेस के साथ किसी भी तरह की नजदीकी के खिलाफ था। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी वर्ष 1964 में टूट गई। इस पार्टी के भीतर जो खेमा चीन का पक्षधर था उसने मार्क्सवादी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी.सी. आई. एम.-माकपा) बनाई। चीन-युद्ध के क्रम में माकपा के कई नेताओं को चीन का पक्ष लेने के आरोप में गिरफ्तार किया गया।

चीन के साथ हुए युद्ध ने भारत के नेताओं को पूर्वोत्तर की डावांडोल स्थिति के प्रति सचेत किया। यह इलाका अत्यंत पिछड़ी दशा में था और अलग-थलग पड़ गया था। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिहाज से भी यह इलाका चुनौतीपूर्ण था। चीन-युद्ध के तुरंत बाद इस इलाके को नयी तरतीब में ढालने की कोशिशें शुरू की गई। नागालैण्ड को प्रांत का दर्जा दिया गया। मणिपुर और त्रिपुरा हालांकि केन्द्र-शासित प्रदेश थे लेकिन उन्हें अपनी विधानसभा के निर्वाचन का अधिकार मिला।

पाकिस्तान के साथ युद्ध और शांति

कश्मीर मसले को लेकर पाकिस्तान के साथ बंटवारे के तुरंत बाद ही संघर्ष छिड़ गया था। वर्ष 1947 में ही कश्मीर में भारत और पाकिस्तान की सेनाओं के बीच एक छाया-युद्ध छिड़ गया था। बहरहाल, यह संघर्ष पूर्णव्यापी युद्ध का रूप न ले सका। यह मसला फिर संयुक्त राष्ट्र संघ के हवाले कर दिया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के साथ भारत के संबंधों में लिहाज से पाकिस्तान एक महत्वपूर्ण घटक रहा।

कश्मीर के सवाल पर हुए संघर्ष के बावजूद भारत और पाकिस्तान की सरकारों के बीच सहयोग-संबंध कायम हुए। दोनों सरकारों ने मिल-जुल कर प्रयास किया कि बंटवारे के समय जो महिलाएं अपहृत हुई थीं उन्हें अपने परिवार के पास वापस लौटाया जा सके। विश्व बैंक की मध्यस्थता से नदी जल में हिस्सेदारी को लेकर चला आ रहा एक लंबा विवाद सुलझा लिया गया। नेहरु और जनरल अयूब खान ने सिंधु नदी जल संधि पर वर्ष 1960 में हस्ताक्षर किए। भारत-पाक संबंधों में नरमी-गरमी के बावजूद इस संधि पर ठीक-ठाक अमल होता रहा।

PARAMOUNT Mission IAS
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in

ताशकन्द समझौता

ताशकंद समझौता भारत और पाकिस्तान के बीच 11 जनवरी 1966 को हुआ एक शांति समझौता था। इस समझौते के अनुसार यह तय हुआ कि भारत और पाकिस्तान अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे और अपने झगड़ों को शान्तिपूर्ण ढंग से तय करेंगे। यह समझौता भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री तथा पाकिस्तान के प्रधानमंत्री अयूब खाँ की लम्बी वार्ता के उपरान्त 11 जनवरी 1966 ई. को ताशकंद,रूस में हुआ।

समझौते का प्रारूप

ताशकंद समझौता संयुक्त रूप से प्रकाशित हुआ था। 'ताशकंद सम्मेलन' सोवियत रूस के प्रधानमंत्री द्वारा आयोजित किया गया था। इसमें कहा गया था कि-

- ☞ भारत और पाकिस्तान शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे और अपने-अपने झगड़ों को शान्तिपूर्ण ढंग से तय करेंगे।
- ☞ दोनों देश 25 फरवरी 1966 तक अपनी सेनाएँ 5 अगस्त 1965 की सीमा रेखा पर पीछे हटा लेंगे।
- ☞ इन दोनों देशों के बीच आपसी हित के मामलों में शिखर वार्ताएँ तथा अन्य स्तरों पर वार्ताएँ जारी रहेंगी।
- ☞ भारत और पाकिस्तान के बीच सम्बन्ध एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने पर आधारित होंगे।
- ☞ दोनों देशों के बीच राजनयिक सम्बन्ध फिर से स्थापित कर दिये जाएँगे।
- ☞ एक-दूसरे के बीच में प्रचार के कार्य को फिर से सुचारू कर दिया जाएगा।
- ☞ आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों तथा संचार सम्बन्धों की फिर से स्थापना तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान फिर से शुरू करने पर विचार किया जाएगा।
- ☞ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाएँगी कि लोगों का निर्गमन बंद हो।
- ☞ शरणार्थियों की समस्याओं तथा अवैध प्रवासी प्रश्न पर विचार-विमर्श जारी रखा जाएगा तथा हाल के संघर्ष में जब्त की गई एक दूसरे की सम्पत्ति को लौटाने के प्रश्न पर विचार किया जाएगा।

प्रभाव

इस समझौते के क्रियान्वयन के फलस्वरूप दोनों पक्षों की सेनाएँ उस सीमा रेखा पर वापस लौट गईं, जहाँ पर वे युद्ध के पूर्व में तैनात थीं। परन्तु इस घोषणा से भारत-पाकिस्तान के दीर्घकालीन सम्बन्धों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। फिर भी ताशकंद घोषणा इस कारण से याद रखी जाएगी कि इस पर हस्ताक्षर करने के कुछ ही घंटों बाद भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की दु:खद मृत्यु हो गई थी।

दोनों देशों के बीच 1965 में कहीं ज्यादा गंभीर किस्म के सैन्य-संघर्ष की शुरुआत हुई। इस वक्त लालबहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री थे। 1965 के अप्रैल में पाकिस्तान ने गुजरात के कच्छ इलाके के रन में सैनिक हमला बोला। इसके बाद जम्मू-कश्मीर में उसने अगस्त-सितंबर के महीने में बड़े पैमाने पर हमला किया। पाकिस्तान के नेताओं को उम्मीद थी कि जम्मू-कश्मीर की जनता उनका समर्थन करेगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ। कश्मीर के मोर्चे पर पाकिस्तानी सेना की बढ़त को रोकने के लिए प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने पंजाब की सीमा की तरफ से जवाबी हमला करने के आदेश दिए। दोनों देशों की सेनाओं के बीच घनघोर लड़ाई हुई और भारत की सेना आगे बढ़ते हुए लाहौर के नजदीक तक पहुंच गई।

संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप से इस लड़ाई का अंत हुआ। बाद में, भारतीय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री और पाकिस्तान के जनरल अयूब खान के बीच वर्ष 1966 में ताशकंद-समझौता हुआ। सोवियत संघ ने इसमें मध्यस्थ की भूमिका निभाई। हालांकि वर्ष 1965 की लड़ाई में भारत ने पाकिस्तान को बहुत ज्यादा सैन्य क्षति पहुंचाई लेकिन इस युद्ध से भारत की कठिन आर्थिक स्थिति पर और ज्यादा बोझ पड़ा।

भारत-पाकिस्तान युद्ध 1971, बांग्लादेश का उदय

वर्ष 1970 में पाकिस्तान के सामने एक गहरा अंदरूनी संकट आ खड़ा हुआ। पाकिस्तान के पहले आम चुनाव में खंडित जनादेश आया। जुल्फिकार अली भुट्टो की पार्टी पश्चिमी पाकिस्तान में विजयी रही जबकि मुजीबुर्रहमान की पार्टी आवामी लीग ने पूर्वी पाकिस्तान में जोरदार कामयाबी हासिल की। पश्चिमी पाकिस्तान के नेताओं के हाथों अपने साथ हुए दोयम दर्जे के नागरिक के बरताव के विरोध में पूर्वी पाकिस्तान की बंगाली जनता ने इस पार्टी को वोट दिया था। पाकिस्तान के शासन इस जनादेश को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। आवामी लीग एक परिसंघ बनाने की मांग कर रही थी लेकिन वे इस मांग को भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।

- इसकी जगह पाकिस्तानी सेना ने वर्ष 1971 में शेख मुजीब बुर्रहमान को गिरफ्तार कर लिया और पूर्वी पाकिस्तान के लोगों पर जुल्म ढाने शुरु किये। जवाब में पूर्वी पाकिस्तान की जनता ने अपने इलाके यानी मौजूदा बांग्लादेश को पाकिस्तान से मुक्त कराने के लिए संघर्ष छेड़ दिया। वर्ष

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS
A SUBSIDIARY OF PARAMOUNT LEAGUE

1971 में पूरे साल भारत को 80 लाख शरणार्थियों का बोझ वहन करना पड़ा। ये शरणार्थी पूर्वी पाकिस्तान से भागकर भारत के नजदीकी इलाकों में शरण लिए हुए थे। भारत ने बांग्लादेश के 'मुक्त संग्राम' को नैतिक समर्थन और भौतिक सहायता दी पाकिस्तान ने आरोप लगाया कि भारत उसे तोड़ने की साजिश कर रहा है।

- पाकिस्तान को अमेरिका और चीन ने मदद की। वर्ष 1960 के दशक में अमेरिका और चीन के बीच संबंधों को सामान्य करने की कोशिश चल रही थी और इससे एशिया में सत्ता-समीकरण नया रूप ले रहा था। अमेरिकी राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन के सलाहकार हेनरी किसिंजर ने वर्ष 1971 के जुलाई में पाकिस्तान होते हुए गुपचुप चीन का दौरा किया। अमेरिका-पाकिस्तान-चीन की धुरी बनती देख भारत ने इसके जवाब में सोवियत संघ के साथ वर्ष 1971 में शांति और मित्रता की एक 20 वर्षीय संधि पर दस्तखत किए। संधि में भारत को इस बात का आश्वासन मिला कि हमला होने की सूरत में सोवियत संघ भारत की मदद करेगा।
- महीनों राजनयिक तनाव और सैन्य तैनाती के बाद वर्ष 1971 के दिसम्बर में भारत और पाकिस्तान के बीच एक पूर्णव्यापी युद्ध छिड़ गया। पाकिस्तान के लड़ाकू विमानों ने पंजाब और राजस्थान पर हमले किए जबकि उसकी सेना ने जम्मू-कश्मीर में अपना मोर्चा खोला। जवाब में भारत ने अपनी वायुसेना, नौसेना और थलसेना के बूते पश्चिमी और पूर्वी मोर्चे से कार्यवाई की। स्थानीय लोगों के समर्थन और स्वागत के बीच भारतीय सेना पूर्वी पाकिस्तान में तेजी से आगे बढ़ी। दस दिनों के अंदर भारतीय सेना ने ढाका को तीन तरफ से घेर लिया और अपने 90,000 सैनिकों के साथ पाकिस्तानी सेना को आत्म-समर्पण करना पड़ा। बांग्लादेश के रूप में एक स्वतंत्र राष्ट्र के उदय के साथ भारतीय सेना ने अपनी तरफ से एकतरफा युद्ध-विराम घोषित कर दिया। बाद में, 3 जुलाई, 1972 को इंदिरा गांधी और जुल्फिकार अली भुट्टो के बीच शिमला-समझौते पर दस्तखत हुए और इससे अमन की बहाली हुई।
- युद्ध में इस निर्णायक जीत से देश में उत्साह की लहर दौड़ गई थी। अधिकांश भारतीयों ने इसे गौरव की घड़ी के रूप में देखा और माना कि भारत का सैन्य-पराक्रम प्रबल हुआ

शिमला समझौता

प्रमुख प्रावधान

इनमें यह प्रावधान किया गया कि दोनों देश अपने संघर्ष और विवाद समाप्त करने का प्रयास करेंगे और यह वचन दिया गया कि उप-महाद्वीप में स्थाई मित्रता के लिए कार्य किया जाएगा। इन उद्देश्यों के लिए इंदिरा गांधी और भुटो ने यह तय किया कि दोनों देश सभी विवादों और समस्याओं के शांतिपूर्ण समाधान के लिए सीधी बातचीत करेंगे और किसी भी स्थिति में एकतरफा कार्यवाही करके कोई परिवर्तन नहीं करेंगे। वे एक दूसरे के विरूद्घ न तो बल प्रयोग करेंगे, न प्रादेशिक अखण्डता की अवेहलना करेंगे और न ही एक दूसरे की राजनीतिक स्वतंत्रता में कोई हस्तक्षेप करेंगे। दोनों ही सरकारें एक दूसरे देश के विरूद्ध प्रचार को रोकेंगी और समाचारों को प्रोत्साहन देंगी जिनसे संबंधों में मित्रता का विकास हो। दोनों देशों के संबंधों को सामान्य बनाने के लिए रू सभी संचार संबंध फिर से स्थापित किए जाएंगे 2 आवागमन की सुविधाएं दी जाएंगी ताकि दोनों देशों के लोग असानी से आ-जा सकें और घनिष्ठ संबंध स्थापित कर सकें 3 जहां तक संभव होगा व्यापार और आर्थिक सहयोग शीघ्र ही फिर से स्थापित किए जाएंगे 4 विज्ञान और संस्कृति के क्षेत्र में आपसी आदान-प्रदान को प्रोत्साहन दिया जाएगा। स्थाई शांतिं के हित में दोनों सरकारें इस बात के लिए सहमत हुई कि 1 भारत और पाकिस्तान दोनों की सेनाएं अपने-अपने प्रदेशों में वापस चली जाएंगी। 2 दोनों देशों ने 17 सितम्बर 1971 की युद्ध विराम रेखा को नियंत्रण रेखा के रूप में मान्यता दी और 3 यह तय हुआ कि इस समझौते के बीस दिन के अंदर सेनाएं अपनी-अपनी सीमा से पीछे चली जाएंगी। यह तय किया गया कि भविष्य में दोनों सरकारों के अध्यक्ष मिलते रहेंगे और इस बीच अपने संबंध सामान्य बनाने के लिए दोनों देशों के अधिकारी बातचीत करते रहेंगे।

आलोचना

भारत में शिमला समझौते के आलोचकों ने कहा कि यह समझौता तो एक प्रकार से पाकिस्तान के सामने भारत का समर्पण था क्योंकि भारत की सेनाओं ने पाकिस्तान के जिन प्रदेशों पर अधिकार किया था अब उन्हें छोड़ना पड़ा। परंतु शिमला समझौते का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि दोनों देशों ने अपने विवादों को आपसी बातचीत से निपटाने का निर्णय किया। इसका यह अर्थ हुआ कि कश्मीर विवाद को अंतर्राष्ट्रीय रूप न देकर, अन्य विवादों की तरह आपसी बातचीत से सुलझाया जाएगा।

PARAMOUNT

है। इंदिरा गांधी इस वक्त भारत की प्रधानमंत्री थीं। वर्ष 1971 के लोकसभा चुनावों में उन्हें विजय मिली थी। वर्ष 1971 की जंग के बाद इंदिरा गांधी की लोकप्रियता को चार चांद लग गए। इस युद्ध के बाद अधिकतर राज्यों में विधानसभा के चुनाव हुए और अनेक राज्यों में कांग्रेस पार्टी बड़े बहुमत से जीती।

- भारत ने अपने सीमित संसाधनों के साथ नियोजित विकास की शुरूआत की थी। पड़ोसी देशों के साथ संघर्ष के कारण पंचवर्षीय योजना पटरी से उत्तर गई। वर्ष 1962 के बाद भारत को अपने सीमित संसाधन खासतौर से रक्षा क्षेत्र में लगाने पड़े। भारत को अपने सैन्य ढांचे का आधुनिकीकरण करना पड़ा। वर्ष 1962 में रक्षा-उत्पाद विभाग और वर्ष 1965 में रक्षा आपूर्ति विभाग की स्थापना हुई। तीसरी पंचवर्षीय योजना (वर्ष 1961-66) पर असर पड़ा और इसके बाद लगातार तीन वर्षों तक एक-एक वर्षीय योजना पर अमल हुआ। चौथी पंचवर्षीय योजना वर्ष 1969 में ही शुरू हो सकी। युद्ध के बाद भारत का रक्षा-व्यय बहुत ज्यादा बढ़ गया।

भारतीय विदेश नीतिः राजीव गांधी युग

(अक्टूबर 1984 से नवम्बर 1989 तक)

श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद श्री राजीव गांधी नये प्रधानमंत्री निर्वाचित हुए। राजीव गांधी का 21वीं सदी का आह्वान तथा आधुनिकता की ओर रूझान में परंपरागत भारतीय विदेश नीति में परिवर्तन के बीच दिखाई दे रहे थे। मोटे रूप से राजीव गांधी की विदेश नीति में चार बातों पर विशेष जोर दिया जा रहा था-निःशस्त्रीकरण (Disarmament), उपनिवेशवाद उन्मूलन (Decolonisation) विकास (Development), तथा शान्ति की कूटनीति (Diplomacy of Peace)। ये चारों ही शब्द अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षर 'डी' से शुरू होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि राजीव गांधी की विदेश नीति की नवीन दिशाएँ मुख्यतः '4-डी' के समन्वित कार्यक्रम पर आधारित थे।

श्री राजीव गांधी के नेतृत्व में भारतीय विदेश नीति को निम्नलिखित बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य मे समझा जा सकता है:

निःशस्त्रीकरण और परमाणु बम

राजीव गांधी ने राष्ट्र के नाम पहले प्रसारण में परमाणु युद्ध के खतरे को वर्तमान समय की 'सबसे बड़ी चुनौती' बताया। जनवरी 1985 में निःशस्त्रीकरण की समस्याओं पर विचार करने के लिए छः राज्यों (भारत, अर्जेण्टाइना, स्वीडन, यूनान, मैक्सिको और तंजानिया) का शिखर सम्मेलन नयी दिल्ली में संयोजित किया गया जिसमें परमाणु अस्त्रों को सदा के लिए खत्म कर देने की सिफारिश की गयी। अमरीकी कांग्रेस में भाषण करते हुए उन्होंने युद्ध मुक्त अन्तरिक्ष की बात कही। पाकिस्तान द्वारा निर्मित परमाणु योजना के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने कहा कि ''भारत के पास पिछले 10 वर्षों में परमाणु बन बनाने की क्षमता है, लेकिन हमने अपने सिद्धान्तों के कारण ही परमाणु बम के विकास की दिशा मे कोई काम नहीं किया है।''

राष्ट्रमण्डल

16 से 21 अक्टूबर, 1985 तक बहामा मे राष्ट्रकुल देशों के राष्ट्राध्यक्षों के सम्मेलन में श्री गांधी ने भाग लिया। सम्मेलन में बोलते हुए श्री गांधी ने राष्ट्रकुल के अपने सहयोगियों से अपील की कि वे द० अफ्रीका से रंगभेद प्रणली उखाड़ फेंकने का जोरदार अभियान चलायें।

संयुक्त राष्ट्र संघ

संयुक्त राष्ट्र की 40वीं वर्षगांठ पर भाषण करते हुए राजीव गांधी ने मुख्यतः तीन मुद्दों की चर्चा की-सैन्य प्रतिस्पर्द्धा, विकासशील देशों में बढ़ता आर्थिक संकट, दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद व नामीबिया की स्वतंत्रता।

भारत-जापान सम्बन्ध

28 नवम्बर, 1985 को श्री राजीव गांधी जापान पहुंचे जहां प्रधानमंत्री नाकासोने से भेंट की। जापान 30 अरब येन अर्थात् लगभग 160 करोड़ रूपये का ऋण भारत को देने पर सहमत हुआ। इस राशि का उपयोग असम में टर्बाइन टेक्नोलॉजी के द्वारा गैस से विद्युत पैदा करने मे किया गया। भारत और जापान ने विज्ञान प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में व्यापक सहयोग पर समझौता किया जिससे प्रौद्योगिकी के हस्तान्तरण का मार्ग प्रशस्त हुआ। अप्रैल 1988 में भी भारत के प्रधानमंत्री ने जापान की यात्रा की और आर्थिक क्षेत्र में भारत-जापान सहयोग बढ़ाने की इच्छा प्रकट की।

पड़ोसी देश

श्री राजीव गांधी ने एक वर्ष की अल्पावधि में चीन के प्रधानमंत्री झियो झियांग, पाक राष्ट्रपति जनरल जिया और बांग्लादेश

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

के राष्ट्रपति जनरल इरशाद से मुलाकात की। बांग्लादेश मे आये भीषण तूफान के दौरान वे मई 1985 में स्वयं ढाका पहुंचे। अक्टूबर 1985 में भारत और बांग्लादेश के बीच गंगा नदी के पानी के बंटवारे को लेकर नसाऊ में एक समझौता हुआ। 16 दिसम्बर, 1985 को पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जिया भारत आये और दोनों के मध्य एक छः सूत्री समझौता हुआ जिसमें तय किया गया कि वे एक-दूसरे के परमाणु ठिकानों पर हमला नहीं करेंगे। राजीव गांधी की 19 से 23 दिसम्बर, 1988 तक चीन की यात्रा को प्रमुख और ऐतिहासिक महत्व की घटना माना गया। इस यात्रा से भारत-चीन सम्बन्धों में एक नई शुरूआत हुई। श्रीलंका को तमिल समस्या के समाधान में थिम्पू वार्ता के माध्यम से भारत ने राजनयिक सहयोग प्रदान किया। 29 जुलाई, 1987 को कोलम्बो में राजीव-जयवर्द्धने समझौता हुआ। यह समझौता श्रीलंका में वर्षों से चली आ रही तमिल समस्या का समाधान करता है। समझौते के तहत् श्रीलंका में भारतीय शान्ति सेना भेजी गयी। नेपाल के साथ इस समय हमारे सम्बन्ध मधुर रहे।

निर्गुट आन्दोलन

श्रीमती गांधी की मृत्यु के बाद राजीव गांधी गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के अध्यक्ष बने और अगसत 1986 तक वे निर्गुट आन्दोलन का नेतृत्व करते रहे। उन्हीं की प्रेरणा से नवम्बर 1985 में नई दिल्ली में गुटनिरपेक्ष युवा सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

सार्क

अपने प्रथम प्रसारण में भारतीय विदेश नीति पर इंगित करते हुए राजीव गांधी ने दक्षिण एशिया का अगल से उल्लेख किया। 'सार्क' के बनने में उनकी भूमिका प्रशंसनीय है। राजीव गांधी ने उपमहाद्वीप के दूसरे देशों में भारत के रवैये को लेकर विश्वास पैदा किया। उनके अनुसार सहयोग के इस नये मंच से दक्षिण एशिया को शान्ति और विकास का क्षेत्र बनाने में मदद मिलेगी।

राजीव गांधी के राजनय की विशेषता थी- ''अधिक-से-अधिक टकराव के बिन्दुओं को टालने का प्रयत्न।'' इसी प्रकार दक्षिणी अफ्रीका के मामले मे यद्यपि भारत ने अपनी चिरपरिचित विरोधी नीति को ही दोहराया फिर भी इसमें व्यावहारिकता के अनेक बिन्दु दिखायी देते हैं। उदाहरण के लिए, बहामा में राष्ट्रकुल सम्मेलन में दक्षिण अफ्रीका के सिलसिले में जो प्रस्ताव पारित हुए उनमें उग्रवादी अफ्रीकी देशों और नरम नीति वाले देशों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का काम प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने किया।

राजीव की नीति में स्पष्टवादिता का पुट अधिक रहा अफगानिस्तान के बारे में उन्होंने कहा कि भारत 'हस्तक्षेप' और 'अड़ंगेबाजी' दोनों के खिलाफ है। वांशिगटन को भी संकेत किया गया कि वह परमाणु बम के बारे में पाकिस्तान के साथ कड़ाई से पेश आये।

भारतीय विदेश नीतिः वी.पी.सिंह-चन्द्रशेखर युगः (दिसंबर 1989 से जून 1991)

दिसम्बर 1989 में वी.पी.सिंह के नेतृत्व में और नवम्बर 1990 में चन्द्रशेखर के नेतृत्व में अल्पतीय सरकार केंद्र में सत्तारूढ़ हुई। जहां वी.पी. सिंह सरकार भाजपा व साम्यवादी दलों के समर्थन पर टिकी हुई थी वहां चन्द्रशेखर सरकार कांग्रेस (इ) के समर्थन से सत्तारूढ़ हुई। दोनों ही सरकारों के पास राजनीतिक शक्ति की मजबूती नहीं थी अतः विदेश नीति के क्षेत्र में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं किया गया।

वी.पी. सिंह के 11 महीने के कार्यकाल में श्रीलंका के साथ सम्बन्धों को सुधारने के लिए मुद्दों को अलग-अलग करके देखा गया। भारतीय शान्ति सेनाओं की वापसी और तमिल सुरक्षा के मुद्दे को एक-दूसरे से अलग कर दिया गया। परिणामस्वरूप शान्ति सेनाएं 24 मार्च, 1990 तक वापस लौट आयी और तमिल सुरक्षा की जिम्मेदारी श्रीलंका पर डाल दी गयी। कुवैत से भारतीय नागरिकों को लाने का सफल प्रयत्न किया गया।

चन्द्रशेखर के 8 माह के शासनकाल में खाड़ी संकट के समय कांग्रेस (इ) के दबाव में आकर अमरीकी विमानों को दी जाने वाली ईंधन भरने की सुविधा बन्द करनी पड़ी। खाड़ी संकट के समाधान में भारत निर्गुट आन्दोलन की तरफ से कोई पहल नहीं कर पाया। नेपाल से मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रधानमंत्री ने काठमाण्डू की यात्रा की।

भारतीय विदेश नीतिः वी.पी.नरसिंह राव युगः (जून 1991 से मई 1996 तक)

वर्ष 1991 में अन्तर्राष्ट्रीय हालत और कूटनीतिक सीमकरणों में आमूलचूल परिवर्तन आया। शीत-युद्ध का अन्त हुआ, सोवियत संघ का विघटन हुआ, साम्यवादी पार्टी पर वहाँ प्रतिबन्ध लगा

दिया गया और खाड़ी युद्ध में विजय के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका की विश्व राजनीतिक मे सर्वोपरिता कायम हुई। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन नेतृत्वविहीन दिखायी देने लगा और भारत आर्थिक संकट के कगार पर आ खड़ा हुआ। ऐसे माहौल में 20 मार्च 1991 को पी.वी. नरसिंह राव अल्पमतीय सरकार का नेतृत्व करने के लिए चयन किये गये। अल्पमतीय समर्थन वाली सरकार विदेश नीति के संचालन की दृष्टि में कमजोर तो होती है और फिर माधव सिंह सोलंकी के रूप में एक अदूरदर्शी और अप्रभावी विदेश मंत्री ने विदेश मंत्रालय की चमक को और धुंधला कर दिया। राजनीति स्तर पर स्पष्ट दिशा बोध के अभाव में बदलते परिवेश मे विदेश नीति का संचालन होने लगा।

मास्को मे बगावत के बाद प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव ने उस पर जो टिप्पणी की थी कि 'अति उत्साही सुधारकों को इससे सबक लेना चाहिए, उसके बाद भारतीय विदेश नीति वे हिसाब भटकाव ही उजागर करती रही है। कोलम्बो में आयोजित होने वाले दक्षेस शिखर सम्मेलन को जिस तरह शिष्टाचार, आदि के बहाने स्थगित करवाया गया उससे भारतीय विदेश नीति को बचनकानापन ही सामने आया। फिर सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत को धक्का पहुंचाया। उसने दक्षिण एशिया को परमाणु हथियार मुक्त क्षेत्र घोषित करने के पाकिस्तानी प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया तो घबराहट में भारतीय विदेश मंत्रालय ने अपने क्षोभ का ढिंढोरा पीटकर विश्व समुदाय के सामने खुद को हास्यास्पद बना डाला।

प्रारंभ में कुछ महीनों के भटकाव के बाद विदेश नीति की दृष्टि से स्वयं प्रधानमंत्री राव सक्रिय हुए। भारत ने अपूर्व सक्रियता और व्यावहारिकता से काम लेते हुए बदलते हुए विश्व परिदृश्य के अनुरूप अपने आपको ढालने का प्रयास प्रारंभ किया। शीतयुद्ध के बाद के दिनों में ऐसा लगने लगा था कि संसार एकध्रुवीय हो गया है जिसमें अमरीका राजनीतिक और सैनिक दृष्टि से सर्वाधिक प्रभावशाली शक्ति के रूप में उभरा है, यद्यपि से परिभाषित नहीं किया जा सकता। अन्य प्रभाव केन्द्र भी उभर रहे थे और उभर रहे हैं जिनका अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं दीर्घकालिक प्रभाव पड़ेग और जिनके दूरगामी नतीजे होंगे। आर्थिक रूप से पुनरूत्थानशील चीन, प्रौद्योगिकी और आर्थिक दृष्टि से प्रभुतावान जापान और जर्मनी, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में अपने आपको एकीकृत करने वाला और राजनीतिक क्षेत्र में अपने महत्व का दावेदार यूरोप वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्र में ऐसी शक्तियों हैं जिनके प्रभाव सामर्थ्य को स्वीकार किया जाना था, और किया जाना है। आसियान तथा एशिया प्रशांत क्षेत्र तथा दक्षिणी ओर उत्तरी अमरीका में क्षेत्रीय सहयोग के प्रबन्धों का अंकुरण अन्य ऐसे तत्व थे जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती थी। इस तरह हम देख सकते हैं कि उदायीमान विश्व का तेवर बहु-ध्रुवीय है और ऐसी परिस्थितियों में भारत की विदेश नीति का लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उभरते हुए इन प्रभाव केन्द्रों के साथ अपना समीकरण स्थापित करना था।

श्री पी.वी.नरसिंह राव के कार्यकाल में भारतीय विदेश नीति के प्रमुख लक्षण अथवा आयाम निम्न हैं:

भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ

संयुक्त राष्ट्र संघ में विचार विमर्श के दौरान भारत ने संयुक्त राष्ट्र के लोकतांत्रिकीकरण और सुरक्षा परिषद् एवं संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों को संयुक्त राष्ट्र की बढ़ी हुई सदस्य संख्या के अनुरूप अधिक प्रतिनिधिक बनाने का दृढ़ता के साथ समर्थन किया। भारत ने अपने प्रस्ताव में संयुक्त राष्ट्र के भीतर ही लोकतंत्र के सिद्धान्त को लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया और वर्ष 1994 में महासभा के 49वें सत्र में आम बहस के दौरान सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्य के लिए अपना दावा भी किया। महासभा में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता ने कहा कि जनसंख्या, अर्थव्यवस्था का आकार, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा कायम रखने में तथा शान्ति स्थापना में योगदान अथवा भावी क्षमताएं कोई भी मानदण्ड क्यों न हों- भारत सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बनने का पात्र है। अक्टूबर 1995 में श्री राव ने न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र संघ की 50वीं वर्षगांठ के अवसर पर आयोजित विशेष समारोह में भाग लिया।

भारत और सार्क

भारत सार्क के चार्टर के आदर्शों ओर उद्देश्यों के प्रति पूर्ण रूप से वचनबद्ध रहा। सार्क द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों, परियोजनाओं और कार्यशालाओं में भारत की सतत् एवं प्रक्रिया भागीदारी रही। कोलम्बों शिखर सम्मेलन के निर्देशों के अनुपालन में भारत मे पर्यावरण के मसले पर सार्क मन्त्रिमण्डलीय बैठक का नई दिल्ली में वर्ष 1992 में आयोजन किया। सार्क के तत्वाधान में वर्ष 1993 में अब तक लगभग 66 क्रियाकलाप सम्पन्न हुए,

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS
A SUBSIDIARY OF PARAMOUNT LEAGUE

जिनमें से 15 कार्यक्रम भारत में सम्पन्न हुए। अप्रैल, 1993 मे प्रधानमंत्री श्री राव ने सार्क देशों के ढाका शिखर सम्मेलन में भाग लिया। उन्हीं की पहल से पहली बार सार्क ने दक्षिण एशियाई तरजीह व्यापार समझौता किया। इसके अन्तर्गत सार्क के सात सदस्य देशों के बीच व्यापार में आपसी रियायतें देने और उदार व्यापार क्षेत्र की स्थापना की प्रावधान है। सार्क का आठवां शिखर सम्मेलन मई 1995 में नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ और भारत की पहल से सार्क देशों में एक वरीयता व्यापार व्यवस्था (SAPTA) को 8 दिसम्बर, 1995 में प्रारंभ करने का निर्णय दिया गया।

इजरायल के साथ राजनयिक सम्बन्धों की स्थापना

इजरायल के प्रति भारत के रूख में परिवर्तन के संकेत 16 दिसम्बर, 1991 को उस समय परिलक्षित हुए जब संयुक्त राष्ट्र संघ में 'जियोनिज्म' (Zionism) को 'रेसिज्म' (Racism) मानने वाले 1975 के संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव को समाप्त करने के लिए भारत ने इजरायल के पक्ष में मतदान किया। भारत-इजरायल सम्बन्धों के सामान्यीकरण की प्रक्रिया की चरम स्थिति परिणति 29 जनवरी, 1992 को उस समय हुई जब भारत के विदेश सचिव ने इजरायल के साथ पूर्ण, राजनयिक सम्बन्ध स्थापित करने के भारत सरकार के निर्णय की घोषणा की।

अणु-प्रसार संधि

पश्चिमी देशों का भारत पर निरन्तर दबाव है कि वह अणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर करे। भारत निरन्तर इस बात की मांग करता रहा है कि अणु-अप्रसार सन्धि के सम्बन्ध मे तर्कपूर्ण संवाद प्रारंभ किया जाए तथा इस बात पर बल देता है कि इसका क्षेत्र विस्तार वर्ष 1963 की आंशिक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि की भूमिका के अनुरूप होना चाहिए जिसमें नाभिकीय अस्त्रों के हर तरह के परीक्षण पर हर परिस्थिति और हर काल मे पूर्ण प्रतिबन्ध होना चाहिए। प्रधानमंत्री नरसिंह राव का स्पष्ट मत था कि अणु-अप्रसार सन्धि के प्रावधानों पर पुनर्विचार और इनमें संशोधन किया जाना चाहिए ताकि अप्रसार के सम्बन्ध में एक सार्वभौम और भेदभाव से मुक्त व्यवस्था बन सके।

जी-15 के क्रियाकलापों में भारत की प्रभावी भूमिका

जी 15 विकासशील देशो का समूह है और जी-15 के क्रियाकलाप भारत का लगातार ध्यान आकर्षित करते रहे हैं। भारत ने कराकास, न्यूयॉर्क, जेनेवा और डकार में जी-15 की तैयारी बैठकों में भाग लिया और प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव ने नवम्बर 1991 मे कराकास तथा नवम्बर 1992 में डकार में आयोजित जी-15 शिखर सम्मेलन में भाग लिया। डकार शिखर बैठक को सम्बोधित करते हुए प्रधानमंत्री राव ने विकसित देशों से मार्ग की कि वे प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों (आर्थिक मुद्दों) का समाधान विकासशील देशो के साथ बातचीत के माध्यम से निकाले। उन्होंने 'परस्पर निर्भरता' और 'सहभागीदारी' के दायरे को सुदृढ़ करने की आवश्यकता पर बल दिया। जी-15 का चतुर्थ शिखर सम्मेलन अप्रैल 1994 में आयोजित कर भारत ने यह कोशिश की कि उत्तर-दक्षिण बातचीत पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया जाये। नवम्बर 1995 मे ब्यूनस आयर्स (अर्जेण्टीना) मे सम्पन्नी जी-15 शिखर सम्मेलन में भी प्रधानमंत्री ने भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व किया।

आर्थिक एवं व्यापारिक हितों के संरक्षण पर विशेष बल

अपनी उदार आर्थिक नीतियों तथा व्यापार, पूंजी निवेश और प्रौद्योगिकी प्रवाह को तेज करने के लिए विदेश मंत्रालय ने विदेश स्थित अपने मिशनों/केन्द्रों के द्वारा भारत के आर्थिक हितों का संवर्द्धन और संरक्षण करने के लिए विशिष्ट अभियान छेड़ा। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समुदाय के समक्ष भारत के आर्थिक समुदाय के कार्यक्रमों को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करने की आवश्यकता के सन्दर्भ में विदेश मंत्रालय ने विदेशों मे आर्थिक प्रचार की आवश्यकता पर विशेष रूप से ध्यान दिया। उच्च स्तर के उद्योगपतियों के अतिथि प्रतिनिधि मण्डलों के लिए जैसा कि जनवरी 1993 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री जॉन मेजर के साथ और फरवरी 1993 में जर्मन के चांसलर हेल्मुट कॉल के साथ आए थे, विदेश मंत्रालय ने अतिथि उद्योगपतियों और सरकार के मुख्य मंत्रालयों के कई सचिवों के बीच उच्चस्तरीय विचार-विमर्श की व्यवस्था की।

- 31 जनवरी, 1994 को प्रधानमंत्री नरसिंह राव पश्चिमी यूरोप के देशों की यात्रा पर गए। 1 फरवरी, 1994 को उन्होंने डावोस में विश्व आर्थिक मंच की कार्यवाही में भाग लिया। राव ने इस प्रकार दूसरी बार विश्व आर्थिक मंच में भाग लिया जिसमें विश्व के अग्रणी राजनेता, अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारी, अर्थशास्त्री, उद्योगपति तथा बुद्धजीवी सम्मिलित थे।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

- राव ने एकत्रित प्रतिनिधियों को आश्वासन दिया कि भारत आर्थिक सुधार के मार्ग पर पहले ही चल रहा है। उन्होंने कहा कि आर्थिक सुधारों और उदारीकरण की दिशा में वह और आगे जा सकता है, परन्तु ऐसा वह सम्मानजनक रूप से ही करेगा।
- जून 1995 मे प्रधानमंत्री श्री राव फ्रांस की यात्रा पर रहे। इस दौरान दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार एवं विदेशी सुरक्षा समझौते पर हस्ताक्षर हुए।

भारत एवं अमरीका

शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद विश्व वातावरण में आये परिवर्तनों ने दोनों देशों को अपने द्विपक्षीय सम्बन्धों का पुनः मूल्यांकन करने का अवसर दिया। अमरीका ने भारत द्वारा किगए गए आर्थिक उदारीकरण उपायों का स्वागत किया, इस प्रक्रिया को उत्साहित किया और बहुपक्षीय संस्थाओं से ऋण के लिए भारत के अनुरोध का समर्थन किया। भारत में संयुक्त उद्यमी के रूप में कार्य कर रही समस्त विदेशी कम्पनियों मे करीब 30 प्रतिशत अमरीकी कम्पनियां हैं। भारत-अमरीकी सम्बन्धों की उल्लेखनीय विशेषता व्यापार और पूंजी निवेश है। वर्ष 1994-95 के दौरान वाणिज्यिक तथा आर्थिक क्रियाकलाप भारत-अमरिका सहयोग के प्रमुख क्षेत्र थे। वर्ष 1993 में द्विपक्षीय व्यापार 7.3 बिलियन अमरीकी डॉलर का व्यापार अधिशेष भारत के पक्ष में था।

- मई 1994 में प्रधानमंत्री राव ने अमरीका की यात्रा की। भारत तथा अमरीका ने दोनों देशो के बीच सम्बन्धों का नया आयाम खोलने के उद्देश्य से 8 वर्षो के अन्तराल के बाद भारत-अमरीका संयुक्त आयोग को पुनर्जीवित करने और दोनों देशों के बीच सैनिक-असैनिक एवं सेवा स्तर का सहयोग बढ़ाने का फैसला किया।
- इधर भारत पर अमरीकी दवाब भी बढ़ता जा रहा था। अमरीका भारत पर अणु-अप्रसार संधि पर हस्तारक्षर करने के लिए निरंतर दबाव डाल रहा था। अमरीकी विदेश विभाग ने भारत के 'इसरो' तथा रूस के 'ग्लावकोसमोस' के खिलाफ प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा की। राष्ट्रपति क्लिंटन ने ऐसी संस्थाओं को पत्र लिखे जो अमरीका में बैठकर भारत विरोधी षड्यंत्र रचती हैं। इस आशय का पहला पत्र राष्ट्रपति ने वांशिगठन स्थित कश्मीरी-अमरीकन कौंसिल के सर्वेसर्वा गुलाम नबी 'फाई' को लिखा। राष्ट्रपति ने इस संस्था के साथ मिलकर कश्मीर में शान्ति व्यवस्था बहाल करने का प्रस्ताव रखा। दूसरा पत्र क्लिंटन ने डेमोक्रेटिक पार्टी के संसद गैरी कॉर्नडिट के पत्र के उत्तर में लिखा। इसमें उन्होंने पंजाब में सिखों के मानवाधिकारों की सुरक्षा की बता की। इस पृष्ठभूमि में भारत अमरीकी सम्बन्धों में तनाव की स्थिति उत्पन्न हुई।

संक्षेप में, दोनों देशों के बीच परमाणु अप्रसार, मानवाधिकार और कश्मीर मसलों पर मतभेद कायम रहे।

भारत और जापान

जून, 1992 में प्रधानमंत्री नरसिंह राव की जापान यात्रा और जापान के राजकुमार एवं राजकुमारी अकिशिनों की भारत यात्रा 1992-93 के दौरान भारत-जापान के बीच सम्बन्धों में उल्लेखनी घटना रही।

- भारत और जापान के बीच राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और प्रौद्योगिकीय सहयोग बढ़ा। भारत द्वारा लागू नई आर्थिक नीतियों को देखते हुए जापान ने भारत में और अधिक रूचि लेनी शुरू कर दी।

भारत और जर्मनी

जर्मनी में आयोजित भारत महोत्सव को जो जुलाई 1992 मे सम्पन्न हुआ, व्यापक पैमाने पर सफल माना गया और इससे भारत एवं जर्मनी के लोगों और अधिक निकट लाने मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- जर्मन चासंलन हेल्मुट कॉल ने वर्ष 1993 में भारत की यात्रा की। भारत और जर्मनी के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण ही नरसिंह राव को दो बार जर्मनी आने के लिए निमन्त्रित किया गया। उदारीकण के पश्चात् भारत मे जर्मनी का आर्थिक सहयोग अमेरिका के बाद सबसे अधिक है।
- जर्मनी ने भारत में लगभग 1.5 अरब जर्मन मार्क का निवेश किया और जर्मनी की सहायता मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने जर्मनी की यात्रा की तथा जर्मनी के भारत के लिए 450 मि. डॉलर की ऋण स्वीकृत किया।
- सितम्बर 1992 में भारत और ब्रिटेन के बीच प्रत्यर्पण सन्धि, जनवरी 1993 मे ब्रिटिश प्रधानमंत्री जॉन मेजर तथा रूसी राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन की भारत यात्रा भारतीय विदेश नीति के बहुआयामी स्वरूप को उजागर करती हैं।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER IN BOOKS ESTD 2005

- येल्तसिन ने कहा कि रूस अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर कश्मीर के प्रश्न पर भारत का समर्थन करता रहेगा। द. अफ्रीका के राष्ट्रपति डॉ. नेल्सन मण्डेला जनवरी 1995 मे भारत की यात्रा पर आए। 26 जनवरी, 1995 को गणतंत्र दिवस के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में वह उपस्थित रहे।
- संक्षेप में, प्रधानमंत्री नरसिंहराव ने अपने पांच वर्ष के कार्यकाल में अनेक शिखर सम्मेलनों, हरारे में राष्ट्रमण्डल शिखर सम्मेलन, कराकास, डकार तथा ब्यूनस आयर्स में जी-15 देशों के शिखर सम्मेलन, कोलम्बों तथा ढाका में सार्क शिखर सम्मेलन, न्यूयार्क में संयुक्त सुरक्षा परिषद् की शिखर बैठक, रियो मे पृथ्वी शिखर सम्मेलन और जकार्ता में 10वें एवं कार्टागेना में 11वें निर्गुट सम्मेलन, में भारत की नयी छवि और शान्तिपूर्ण नीतियों को प्रदर्शित किया।

भारतीय विदेश नीतिः एच.डी. देवेगौड़ा कालांश (1 जून, 1996 से अप्रैल 1997)

वाजपेयी सरकार के त्यागपत्र के पश्चात् संयुक्त मोर्चे के नेता श्री एच.डी.देवेगौड़ा ने 1 जून, 1996 को प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। 5 जून, 1996 को घोषित न्यूनतम साझा कार्यक्रम में विदेशी नीति के सन्दर्भ मे देवेगौड़ा सरकार ने कोई नई व्याख्या नहीं दी। गुटनिरपेक्ष मार्ग पर चलते हुए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को पुख्ता, करने चीन से सम्बन्ध सुधारने, परमाणु अप्रसार के लक्ष्य को बढ़ावा देने और सार्क साप्टा के अन्तर्राष्ट्रीय मंचो से पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ट सहयोग बढ़ाने पर देवेगौड़ा सरकार ने जोर दिया।

वर्ष 1996-97 (एच.डी. देवेगौड़ा इन्द्रकुमार गुजराल) की कालाविध भारतीय विदेश नीति के दस्तावेजों मे एक ऐसे कालांश के रूप में दर्ज की जाएगी जिसमें भारत ने विश्व के शक्तिशाली देशों के दबाव तथा अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी में अलग-थलग पड़ जाने के जोखिम के बावजूद अपने राष्ट्रीय हितों के संवर्द्धन हेतु व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (सी.टी.बी.टी.) के वर्तमान स्वरूप पर हस्ताक्षर कर दिया।

वर्ष 1996-97 में भारतीय विदेश नीति की उतार-चढ़ाव आये जिनमें से कतिपय इस प्रकार हैं।

व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (सी.टी.बी.टी.)

सी.टी.बी.टी. अर्थात् व्यापक परमाणु परीक्षण सन्धि विश्व भर में किए जाने वाले परमाणु परीक्षणों पर के उद्देश्य से लायी गयी सन्धि या समझौता है, जिसमें भारत, अन्य देशों अलावा अमेरिका के साथ सहप्रस्तावक था, लेकिन वर्ष 1995 मे उसने यह कहते हुए कि सार्वभौमिक परमाणु निरस्त्रीकरण के समयबद्ध कार्यक्रम हुई नहीं है, सह-प्रस्तावक बनने से ही इन्कार कर अगस्त, 1996 को भारत ने जेनेवा में इस विवादस्पद मसौदे को औपचारिक रूप से वीटो भी कर दिया। सी.टी.बी.टी. पर भारत ने अपना विरोध दर्ज करते हुए स्पष्ट कहा कि यह सन्धि परमाणु हथियारों को पूरी तरह सम्बन्ध के लक्ष्य को पूरा नहीं कर रही, इसलिए सन्धि के स्वरूप पर वह हस्ताक्षर नहीं करेगा, फलतः सन्धि करवाने हेतु संयक्त राष्ट्र महासभा में ले जाना पड़ा। 1 जून, 1996 तक 129 देशों ने सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये थे पाकिस्तान और उत्तरी कोरिया ने सन्धि पर हस्ताक्षर अमरीका सहित विश्व समुदाय के कुछ शक्तिशाली देश भारत पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव डाले जाने के भारत अपने दृष्टिकोण पर अडिग रहा।

जहां जेनेवा में सी.टी.बी.टी. का विरोध करने भारत अकेला देश था वहीं न्यूयार्क में सी.टी.बी.टी. के समर्थन मे न खड़े होने वाले देशों की संख्या दो दर्जन से भी थी। भारत सहित भूटान और लीबिया ने इसका स्पष्टतः विरोध किया, जबकि पांच अन्य देशों- क्यूबा, लेबनान, सीरिया और तन्जानिया ने उपस्थित रहकर भी मतदान में नहीं लिया। इसके अतिरिक्त 19 और देश मतदान के महासभा में अनुपस्थित थे। महासभा में बहस के दौरान देशों ने भारत द्वारा उठायी गयी आपत्तियों को सही बताया। विशेषकर ईरान, और जिम्बाब्वे ने तो खुलकर भारतीय रूख का समर्थन किया।

सुरक्षा परिषद् की अस्थायी सदस्यता के लिए निर्वाचन

अक्टूबर, 1996 में संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद अस्थायी सदस्यता का चुनाव भारत हार गया। दिसम्बर में इंडोनेशिया द्वारा रिक्त की जाने वाली इस सीट को भरने के लिए जापान एवं भारत ने अपना दावा पेश किया था। जापान को 142 देशों का समर्थन प्राप्त हुआ तथा भारत को केवल 40 देशों ने अपना वोट दिया। भारत सुरक्षा परिषद स्थायी सदस्यता की हैसियत पाना चाहता था, अब सुरक्षा परिषद की अस्थायी

सदस्यता की हैसियत को भी उसने अपने अपमानजनक तरीके से खो दिया है। सी.टी.बी.टी. पर भारत का मुख्य विरोध संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के अस्थायी सदस्य के चुनाव में उसकी हार की प्रमुख वजह रही।

भारत और पड़ोसी

पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने की दिशा मे देवेगौड़ा सरकार ने एक तरफा तौर पर अनेक कदम उठाये। प्रधानमंत्री देवेगौड़ा ने सत्ता संभालने के तुरंत बाद पाकिस्तान की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती बेनजीर भुट्टों को भेजे गए शुभकामना संदेश में दोनों देश के बीच बातचीत शुरू करने की पेशकश की। पाकिस्तान ने सम्बन्ध को सामान्य बनाने के भारत के कदमों का कोई जवाब नहीं दिया। 20 फरवरी, 1997 को संसद के संयुक्त अधिवेश को सम्बोधित करते हुए राष्ट्रपति ने पाकिस्तान की नई सरकार के साथ बातचीत शुरू करने की पेशकश भी की। इसी परिप्रेक्ष्य में 31 मार्च, 1997 में भारत-पाक विदेश सचिव वार्ता प्रारंभ हुई। 8 अप्रैल, 1997 को भारत के विदेश मंत्री इन्द्रकुमार गुजराल और पाकिस्तान के विदेश मंत्री गोहर अयूब खान ने दोनों देशों सम्बन्धों को सामान्य बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए आठ वर्ष बाद आपसी बातचीत का सिलसिला फिर से शुरू किया।

नवंबर 1996 में चीन के राष्ट्रपति जियांग झेमिन की भारत यात्रा से दोनों के देशों के सम्बन्धों में एक नये अध्याय की शुरूआत की। चीन के किसी राष्ट्रपति की यह पहली भारत यात्रा थी। सीमा पर तनाव कम करने सम्बन्धी समझौतों के अलावा दोनों देशों के बीच व्यापार बढ़ाने के बारे में भी एक महत्वपूर्ण समझौता हुआ।

दिसम्बर 1996 में गंगा पानी के बंटवारे के बारे में प्रधानमंत्री देवेगौड़ा और बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने एक ऐतिहासिक सन्धि पर हस्ताक्षर किए। इसके साथ ही इस मसले को लेकर दोनों देशों के बीच दो दशक से चल रहे प्रमुख विवाद का समाधान हो गया।

जी-15 शिखर सम्मेलन

पन्द्रह विकासशील राष्ट्रों के संगठन समूह (G-15) का छठा शिखर सम्मेलन 3-5 नम्बर, 1996 को जिम्बाब्वे की राजधानी हरारे में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में इस बार व्यापारिक मुद्दे ही हावी रहे। विकसित देशों द्वारा एकपक्षीय तरीके से श्रम मानकों को विदेशी व्यापार के साथ जोड़ने के प्रयासों को संयुक्त रूप से विरोध करने के प्रति सम्मेलन में आम सहमति थी। भारत के प्रधानमंत्री श्री देवेगौड़ा ने स्पष्ट कहा कि श्रम मुद्दे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बद्ध नहीं हैं, अत: इन्हें विश्व व्यापार संगठन से बाहर ही रखा जाना चाहिए।

भारत आसियान (ASEAN) का सहभागी सदस्य

दक्षिणी पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के संगठन 'आसियान' के विदेश मंत्रियों की वार्षिक बैठक 20 जुलाई, 1996 को जकार्ता में आयोजित हुई। 24 जुलाई, 1996 को भारत को आसियान का पूर्ण संवाद सहभागी बना दिया गया। भारत को इससे आसियान से सम्बन्धित अन्य मंचों जैसे कि एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग (एपेक) और एशिया यूरोपीय (एसेम) में भाग लेने का अवसर मिलेगा।

विश्व व्यापार संगठन और भारत

आलोचकों का मत हैं कि दिसम्बर 1996 में सिंगापुर में हुए विश्व व्यापार संगठन के पहले मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन में भारत ने बड़े देशों के दबाव के आगे समर्पण कर दिया और अब तक जिन मुद्दों पर भारत जोर देता रहा है उनसे पीछे हट गया। भारत ने सदा व्यापार के साथ श्रम प्रतिमानों जैसे सामाजिक सवालों को जोड़ने का विरोध किया है, लेकिन सिंगापुर सम्मेलन में वह श्रम प्रतिमानों के उल्लेख पर सहमत हो गया।

गुजराल सिद्धान्त

भारत के विदेश मंत्री इन्द्र कुमार गुजराल ने एक राष्ट्रीय दैनिक समाचार-पत्र को दी गई भेंटवार्ता में 'गुजराल सिद्धान्त' की स्वघोषणा को स्वीकृति देकर इसकी तर्कसंगतता को सिद्ध करने का अति उत्साही प्रयास किया। गुजराल सिद्धान्त पड़ोसी देशों, खासतौर से दक्षिण एशियाई देशों के साथ मधुर सम्बन्धों को बनाए रखने पर जोर देता है। वस्तुत: गुजराल सिद्धान्त में कोई नवीनता नहीं है। पड़ोसियों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने का सिद्धान्त हमारी विदेश नीति का पहले से ही अभिन्न अंग है।

श्री देवेगौड़ा के कार्यकाल में अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत की भूमिका और प्रभाव में गिरावट चिन्ता का विषय रहा। सुरक्षा परिषद की अस्थायी सीट के लिए हुई पराजय हमारे विदेश

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

मंत्रालय एवं विश्व भर में फैले दूतावासों में काम करने वाले नौकरशाहों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारे स्थायी विशेषज्ञों की कर्मशक्ति एवं आकंलन शक्ति की भी कलई खोलती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का हाशिए पर पहुंच जाना और भारत की आवाज की बेमानी हो जाना चिन्ता का विषय है।

भारतीय विदेश नीतिः इन्द्रकुमार गुजराल (21 अप्रैल, 1997 से 18 मार्च 1998 तक)

सौम्य राजनयिक माने जाने वाले देश के 12वें प्रधानमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल 50 वर्षों का सार्वजनिक जीवन बिताने के बाद प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुए। वर्ष 1976 में सोवियत संघ में भारतीय राजदूत के रूप में उन्हें महत्वपूर्ण राजनयिक दायित्व सौंपा गया। वी.वी.सिंह और एच.डी.देवेगौड़ा की सरकारों में एक कुशल विदेश मंत्री के रूप में अपनी भूमिका का उन्होंने निर्वाह किया। 21 अप्रैल, 1997 को प्रधानमंत्री पद संभालने के बाद विदेश नीति की दृष्टि से श्री गुजराल का योगदान निम्नांकित हैः

भारत-पाक शिखर वार्ता

चार वर्ष के अन्तराल के बाद भारत व पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों की वार्ता 12 मई, 1997 को दक्षेस शिखर सम्मेलन के उद्घाटन सूत्र के बाद माले के कुरूम्बा द्वीप में सम्पन्न हुई, इस बातचीत में दोनों ही देशों के प्रधानमंत्रियों ने आपसी विवाद के सभी मुद्दों को हल करने के लिए संयुक्त कार्यदल गठिन करने का निर्णय किया। दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों के बीच आपसी सम्पर्क बनाए रखने के लिए एक हॉट लाइन स्थापित करने का निर्णय बातचीत के दौरान किया गया।

सार्क शिखर सम्मेलन

प्रधानमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल ने 12-14 मई 1997 को माले में सम्पन्न नौवें सार्क शिखर सम्मेलन में अपने भाषण में दक्षिण एशिया की विशिष्ट पहचान बनाने का आह्वान किया। दक्षिण एशियाई देशों के इस संगठन को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने व सदस्य राष्ट्रों के बीच आर्थिक सम्पर्क बढ़ाने के लिए उन्होंने 'दक्षिण एशियाई आर्थिक समुदाय' (South Asian Economic Community) के गठन का प्रस्ताव किया।

भारत-अमेरिका के बीच प्रत्यर्पण संधि

जनू 1997 में भारत और अमेरिका के बीच एक महत्वपूर्ण प्रत्यर्पण संधि पर हस्ताक्षर किए गए। इस संधि के अन्तर्गत दोनों ही देश एक-दूसरे द्वारा वांछित ऐसे भगोड़े अभियुक्तों व अपराधियों का प्रत्यर्पण करेंगो जो एक वर्ष से अधिक की सजा के पात्र हों, चाहे उनकी नागरिकता कोई भी हो। संधि में एक देश के अनुरोध पर दूसरे देश द्वारा किसी अपराधी को तुरंत गिरफ्तार करने की प्रक्रिया भी शामिल है ताकि अपराधी फरार न हो सके।

प्रधानमंत्री गुजराल की नेपाल यात्रा

प्रधानमंत्री गुजराल एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधिमंडल के साथ 5-7 जून, 1997 को नेपाल यात्रा पर रहे। नेपाल यात्रा के पहले ही दिन दोनों देशों के बीच एक विद्युत व्यापार समझौते तथा नागरिक उड्डयन के क्षेत्र में एक सहमतिपत्र पर हस्ताक्षर हुए। इसके साथ ही जल संसाधन के दोहन से सम्बन्धित 'महाकाली संधि' के अनुमोदित दस्तावेजों का आदान-प्रदान हुआ।

भारतीय विदेश नीतिः अटल बिहारी वाजपेयी (19 मार्च, 1998 से मई 2004)

19 मार्च, 1998 को श्री अटल बिहारी वाजपयी के नेतृत्व में भाजपा गठबन्धन की सरकार सत्तारूढ़ हुई। श्री वाजपेयी की विदेश नीति के उल्लेखनीय पहलू निम्नांकित हैं:

भूमिगत पोखरण नाभिकीय परीक्षण

11 और 13 मई 1998 को वापपेयी सरकार ने पोखरण में पांच परमाणु परीक्षणों को अंजाम देकर भारतीय विदेश नीति में आमूलचूल परिवर्तन का संकेत दिया। इन परीक्षणों से किसी विधिक दायित्व का उल्लंघन नहीं हुआ तथा ये परीक्षण गंभीर सुरक्षा आवश्यकताओं तथा एक तकनीकी अनिवार्यता के कारण किये गये। भारत ने अपने आपको परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र घोषित कर दिया तथा अपनी परमाणु नीति के प्रमुख तत्वों की घोषणा उत्तरवर्ती महीनों में की गई।

भारत द्वारा परीक्षण किये जाने के दो सप्ताह के अन्दर ही पाकिस्तानी द्वारा परीक्षण किये जाने के निर्णय से इस बात की पुष्टि हो गई, जिसका व्यापक स्तर पर विश्वास किया जाता था कि पाकिस्तान एक प्रच्छन्न नाभिकीय हथियार कार्यक्रम चला रहा है।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ASSOCIATED WITH RESULTS

24 वर्षों के उल्लेखनीय स्वैच्छिक नियंत्रण के पश्चात् किए गए नाभिकीय परीक्षण भारतीय विदेश नीति में 'नैतिकवाद से यथार्थवाद' में रूपान्तरण को इंगित करते हैं। इनके मूल में एक न्यूनतम विश्वसनीय नाभिकीय निवारक बनाये रखने की भारत की व्यापक सुरक्षात्मक आवश्यकता है।

इन परीक्षणों से भारत ने कम्प्यूटर डिजाइनों के माध्यम से ही नए आणविक अस्त्रों का डिजाइन तैयार करने की क्षमता का विकास कर लिया है। पांचो परमाणु परीक्षणों में प्रयुक्त की गई प्रक्रियात्मक सामग्री भी पूरी तरह स्वदेशी थी। प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ॰ अब्दुल कलाम के अनुसार भारत के 'अग्नि' और 'पृथ्वी' जैसे प्रक्षेपास्त्र आणविक अस्त्रों को असानी से अपने साथ ले जा सकते हैं।

नि:शस्त्रीकरण

भारत ने 12 अक्टूबर से 13 नवम्बर, 1998 तक न्यूयार्क में आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा के 53वें सत्र में नि:शस्त्रीकरण और सम्बद्ध मामलों पर प्रथम समिति में भाग लिया तथा नाभिकीय निरस्त्रीकरण पर सक्रिय रूप से अपनी राष्ट्रीय नीति का खुलासा किया। 'नाभिकीय हथियारों के प्रयोग पर रोक से सम्बन्धित अभिसमय' पर भारत का पारम्परिक प्रस्ताव महासभा द्वारा 39 के विरूद्ध 111 मतों से स्वीकार कर लिया गया।

शान्ति स्थापना

नवम्बर, 1998 में दक्षिणी लेबनान में भारतीय इन्फेन्ट्री बटालियन के शामिल होन जाने से भारत संयुक्त राष्ट्र शान्ति स्थापना में दूसरा सबसे बड़ा सैनिक सहायता देने वाला देश बन गया है। मार्च 2000 में उपद्रवग्रस्त पश्चिमी अफ्रीकी राष्ट्र सिएरा लियोन में शान्ति स्थापना के लिए तैनात संयुक्त राष्ट्र शान्ति सेना के कार्य में सहयोग के लिए भारतीय वायुसेना की एक टुकड़ी को ग्रुप कैप्टन बी.एस.सिवाच के नेतृत्व में शामिल किया गया। सिएरा लियोन में भारतीय सेना की भागीदारी के साथ ही ऐसे संयुक्त राष्ट्र शान्ति अभियानों की संख्या 29 हो गई है, जिनमें भारतीय सैनिकों की भागीदारी रही है।

गुटनिरेपक्ष आन्दोलन

गुटनिरपेक्ष देशों का 12वां शिखर सम्मेलन 2-3 सितम्बर, 1998 को डरबन, दक्षिण अफ्रीका में हुआ। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व प्रधानमंत्री वाजपेयी ने किया। डरबन घोषणा-पत्र में शीतयुद्ध के बाद विश्व में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सतत प्रासंगिकता और महत्व पर बल दिया और अधिक एकजुटता के तरीके से विकासशील देशों की चिन्ताओं पर ध्यान केंद्रित किया।

कार्टागेना में सम्पन्न (10 अप्रैल, 2000) गुटनिरपेक्ष देशों के विदेश मंत्रियों में सम्मेलन में भारत को एक बड़ी राजयनिक सफलता तब मिली जब इस बात पर सहमति हो गई कि पाकिस्तान व अन्य फौजी शासन वाले देशों की सदस्यता खत्म कर दी जाए।

24-25 फरवरी, 2003 को कुआलालम्पुर (मलेशिया) में सम्पन्न 116 सदस्यीय गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व प्रधानमंत्री वाजपेयी ने किया। वाजपेयी ने निर्गुट आन्दोलन को वैश्विक चुनौतियों के आधार पर पुनर्जीवित करने के लिए पांच सूत्रीय राजनीतिक एवं आर्थिक रणनीति का प्रस्ताव रखा। वाजपयी ने 23 फरवरी, 2003 को बिजनेस फोरम की बैठक में 300 अरब डॉलर का विश्व गरीबी उन्मूलन कोष गठित करने का प्रस्ताव किया।

राष्ट्रमण्डल

12-15 नवम्बर, 1999 तक आयोजित राष्ट्रमण्डल के डरबन सम्मेलन में भारत ने जिस कूटनीतिक चातुर्य से पाकिस्तान को अलग-थलग कर दिया उसका श्रेय प्रधानमंत्री वाजपेयी को जाता है। पाकिस्तान में सैन्य शासन को अवैध बताते हुए राष्ट्रमण्डल से उनके निलम्बन के फैसले का अनुमोदन राष्ट्राध्यक्षों ने कर दिया। डरबन घोषणा में पाकिस्तान को चेतावनी दी गई कि यदि वहां लोकतंत्र की बहाली की प्रक्रिया तेज नहीं की गई तो उसके विरूद्ध और भी कार्यवाही की जाएगी।

सार्क

भारत ने अगस्त 1998 में सार्क देशों के लिए मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लेने के साथ ही क्षेत्र भर में व्यापार उदारीकरण तेज करने के लिए महत्वपूर्ण पहल की।

29-31 जुलाई, 1998 को कोलम्बो में 10वां सार्क शिखर सम्मेलन हुआ जिसमें भारतीय शिष्टमण्डनल की अध्यक्षता प्रधानमंत्री वाजपेयी ने की। अपने बाजार में प्रवेश बढ़ाने के लिए प्रधानमंत्री ने घोषणा कि भारत 1 अगस्त, 1998 से सार्क देशों के लिए मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लेगा। इसमें सार्क देशों के लिए 2,000 से अधिक उत्पादों को मुफ्त सामान्य लाइसेन्स के अन्तर्गत रखना शामिल है और इसका व्यापक स्वागत हुआ।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ASPIRE

5-6 जनवरी, 2002 को काठमांडू मे सम्पन्न 11वें सार्क शिखर सम्मेलन मे प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा कि यह आवश्यक है कि आर्थिक एजेंडे को सार्क मे सर्वोपरि माना जाए। क्षेत्र के देशों के बीच व्यापार संवर्द्धन तथा सार्क द्वारा गठित गरीबी उन्मूलन आयोग को पुनः सक्रिय करने के लिए भारत की ओर से हर सम्भव सहायता की पेशकश भी उन्होंने की।

सार्क से इस्लामाबाद मे आयोजित 12वें शिखर सम्मेलन (4 जनवरी, 2004) में भारत के प्रधानमंत्री ने सहयोग का छः सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

शिखर बैठक के उद्घाटन सत्र में वाजपेयी द्वारा की गई पेशकश इस प्रकार है:

- **गरीबी उन्मूलन के लिए 10 करोड़ डॉलर:** सार्क देशों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम आगे बढ़ाने के लिए गरीबी उन्मूलन कोष बनाया जाए। भारत इसके लिए 10 करोड़ डॉलर देगा और यह राशि भारत को छोड़कर सार्क के अन्य देशों में खर्च की जाएगी।
- **कार्यदल का गठन:** सार्क के स्वायत्त गरीबी उन्मूलन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के लिए कार्यदल का गठन किया जाए। भारत इसका खर्च उठाएगा।
- **2010 तक का लक्ष्य:** संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2015 तक विकास लक्ष्य प्राप्त करने का कार्यक्रम रखा है। दक्षेस का उद्देश्य इन्हें 2010 तक पूरा करने को होना चाहिए। भारत इसके लिए विशेष सार्क दल को सहायता देगा।
- **रेल-सड़क, वायुमार्ग मजबूत करें:** सार्क देशों के बीच रेल, सड़क, वायु एवं जलमार्ग परिवहन व्यवस्था मजबूत करने के लिए सार्क कार्यदल का गठन किया जाए। भारत इसके लिए पूरा योगदान देगा और कार्यदल द्वारा की गई सिफारिशों लागू करेगा।
- **स्वतंत्रता संग्राम पर साझा समारोह:** प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के 150 वर्ष पूरे होने के अवसर पर 2007 में भारत, पाक और बांग्लादेश ने साझा समारोह मनाया।
- **तकनीक बांटेंगे:** सूचना प्रौद्योगिकी विज्ञान के क्षेत्र में भारत अनुभव बांटेगा।

संयुक्त राज्य अमरीका

भारत के नाभिकीय परीक्षणों के बाद अमरीका की प्रतिक्रिया नितांत आलोचनात्मक और नकारात्मक रही। अमरीका ने पी-5 तथा जी-8 की बैठकों में नाभिकीय परीक्षणों की आलोचना करने के लिए पहल की। अमरीका ने भारत के विरूद्ध दण्डात्मक आर्थिक कार्यवाहिया जिसे 'प्रतिबन्ध' कहा जाता है, लगाने में पहल की। उसने भारतीय सरकारी संगठनों, अनुसंधान संस्थानों, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों तथा निजी कंपनियों की एक सूची जारी की जिन पर प्रतिबन्ध लगाया गया। बाद में अमरीका ने भारत के विरूद्ध लगाये गये प्रतिबन्धों को आंशिक रूप से उठाने की घोषणा की। ये एक्सिम ओपक, टी.डी.ए. वित्त पोषण तथा सैन्य प्रशिक्षण से सम्बन्धित है।

कारगिल में पाकिस्तान की घुसपैठ के मुद्दे पर राष्ट्रपति क्लिंटन ने पाक प्रधानमंत्री नवाज शरीफ से कहा कि वह वास्तविक नियंत्रण रेखा से अपनी सेना हटा ले और तनाव समाप्त करने के लिए भारत के साथ सीधी बातचीत करे। अमरीका ने भारत के उस दृष्टिकोण का एक बार फिर कड़ाई से अनुमोदन किया कि वास्तविक नियंत्रण रेखा उल्लंघनीय नहीं है।

22 वर्षों बाद किसी अमरीकी राष्ट्रपति की भारत यात्रा दोनों देशों के रिश्तों में बदलाव लाने की दिशा में प्रधानमंत्री वाजपेयी की महत्वपूर्ण राजनयिक उपलब्धि है। 21, 2000 को राष्ट्रपति क्लिंटन की भारत यात्रा के अवसर पर दोनों देशों ने अपने सम्बन्धों की भविष्य की दशा को लेकर एक दृष्टिकोण पत्र जारी किया। इसमें दोनों देशों के शासनाध्यक्षों के बीच नियमित रूप से शिखर बैठक, सुरक्षा तथा परमाणु अप्रसार पर चल रही बातचीत को गति प्रदान करने, आपसी सम्बन्धों तथा अन्य मुद्दों की समीक्षा करने और आतंवाद से और अधिक कारगर ढंग से मिलकर निपटने पर सहमति व्यक्त की गई। दस्तावेज जिसे 'दृष्टिकोण पत्र 2000' नाम दिया गया है। भारत-अमरीका के आपसी सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने के लिए आठ सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की गई है।

प्रधानमंत्री वाजपेयी की अमरीका यात्रा

भारत के प्रधानमंत्री सितम्बर 2000 में 11 दिन की अमरीका यात्रा पर रहे। अमरीका प्रवास के दौरान 13-17 सितम्बर तक वह अमरीकी सरकार के मेहमान थे। 14 सितम्बर को उन्होंने अमरीकी कांग्रेस के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को सम्बोधित किया। विकास के मामले में बेहतर भारत-अमरीकी सम्बन्धों का आह्वान करते हुए इस मामले में एक व्यापक वैश्विक वार्ता (Global Dialogue on Development) का आयोजन नई दिल्ली में करने की भी उन्होंने पेशकश की। अमरीकी सांसदों को

उन्होंने बताया कि विश्व का कोई अन्य देश आतंकवादी हिंसा का उतना शिकार नहीं है जितना भारत को गत दो दशकों में होना पड़ा है। आतंकवाद से लड़ने के लिए उन्होंने भारत व अमरीका के बीच नजदीकी सहयोग का आह्वान किया।

परमाणु अप्रसार पर बोलते हुए वाजपेयी ने सीटीबीटी पर भारत के हस्ताक्षर का कोइ आश्वासन दिए बिना कहा कि अप्रसार के अमरीकी प्रयासों में भारत को कोई बाधक बनना नहीं चाहता। उन्होंने स्पष्ट किया कि भारत इस मामले में अमरीका की चिन्ता समझता है तथा यह चाहता है कि अमरीका भी भारत की सुरक्षा चिन्ताओं को समझे।

अफगानिस्तान के तालिबान प्रशासन द्वारा आतंकवादियों को दी जा रही शरण व सहायता के मुद्दें पर भारत-अमरीकी संवाद को जारी रखने को दोनों देशों में सहमति हुई। अमरीका ने संकल्प जताया कि वह कश्मीर विवाद में हस्तक्षेप नहीं करेगा और भारत ने इस बात के लिए सहमति दी कि सीटीबीटी पर हस्ताक्षर करने तक परमाणु परीक्षणों पर स्वघोषित रोक को वह जारी रखेगा। पारस्परिक आर्थिक सहयोग बढ़ाने के उद्देश्य से दोनों देशों के बीच ऊर्जा, ई-कामर्स व बैंकिंग क्षेत्र की परियोजनाओं के लिए 6 अरब डॉलर के पांच व्यावसायिक समझौतों पर हस्ताक्षर भी इस यात्रा के दौरान सम्पन्न हुए।

- **ओवल कार्यालय में जसवन्त सिंह की राष्ट्रपति जार्ज बुश से भेंट:** अप्रैल 2001 में भारत के विदेश मंत्री जसवंत सिंह ने वांशिगठन में राष्ट्रपति जार्ज बुश से भेंट की। राष्ट्रपति ने प्रोटोकॉल को दरकिनार करते हुए भारतीय मेहमान को अपने ओवल कार्यालय में मुलाकात के लिए आमन्त्रित किया। राष्ट्रपति बुश को भारत यात्रा का निमन्त्रण दिया गया जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। जसवन्त सिंह और अमरीकी रक्षा मंत्री डोनाल्ड रम्सफील्ड के बीच बातचीत के दौरान भारत और अमरीका ने रक्षा सहयोग पर समझौता किया।
- **आतंकवाद उन्मूलन के लिए अमरीका को सहयोग:** प्रधानमंत्री वाजपेयी ने राष्ट्रपति बुश को भरोसा दिलाया कि 11 सितम्बर, 2001 को अमरीका पर जो आतंकवादी हमले हुए हैं। उनकी जांच में तथा आतंकवाद के खात्मे के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों में भारत अपना पूरा योगदान देगा। 9 नवम्बर, 2001 को अमरीकी राष्ट्रपति बुश के साथ प्रधानमंत्री वाजपेयी की वार्ता ह्वाइट हाउस में हुई। बातचीत में जार्ज बुश ने स्पष्ट किया कि आतंकवाद के विरूद्ध अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन की लड़ाई का प्रमुख उद्देश्य 'अल-कायदा' के नेटवर्क को ध्वस्त करना है। जून, 2003 में जी-8 शिखर सम्मेलन में वाजपेयी की भेंट राष्ट्रपति बुश से हुई और बुश ने भरोसा दिलाया कि आतंकवाद के खात्मे के लिए वे जनरल मुशर्रफ को समझाएंगे।
- **प्रोटोकॉल तोड़ राष्ट्रपति बुश आडवाणी से मिले+** 10 जून, 2003 को अमरीकी राष्ट्रपति प्रोटोकॉल को दरकिनार करते हुए भारत के उपप्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी से बातचीत करने पहुंचे। बुश की आडवाणी से हुई इस अप्रत्याशित मुलाकात को अमरीका की नजर में भारत के बढ़ते राजनीतिक एवं कूटनीतिक महत्व के रूप में देखा जा सकता है। बुश आडवाणी से मिलने उस समय पहुंचे जब ह्वाइट हाउस में उनकी अमरीका की राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार कोंडालीया राइस से बातचीत चल रही थी।
- **दक्षिण-पूर्व एशिया में बढ़ती रूचि:** अटल बिहारी वाजपेयी ने दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ सम्बन्धों को मजबूत करने का विशेष प्रयास किया। नवम्बर 2000 में म्यांमार के बाइस चेयरमैन जनरल आई की भारत यात्रा से म्यांमार के साथ सम्बन्धों में एक नई शुरूआत हुई।
  - म्यांमार ने भारत को आश्वस्त करने का प्रयास किया है कि वह भारत के विरूद्ध आन्दोलनकारियों को शह नहीं देगा। यह बात उल्लेखनीय है कि म्यांमार भारत के लिए सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है; यह भारत को दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भौगोलिक रूप से जोड़ता है
  - इससे पूर्व 9 नवम्बर को भारत के राष्ट्रपति के.आर. नारायणन की सिंगापुर यात्रा के दौरान दोनों देशों ने पारस्परिक सम्बन्धों को मजबूत बनाने का प्रयास किया। सिंगापुर ने आसियान देशों के उपक्षेत्रीय संगठनों में भारत के प्रवेश के प्रयास किए हैं।
  - सिंगापुर को दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय सहयोग में वृद्धि के लिए प्रवेश द्वारा माना जाता है। भारत की पूर्वोन्मुखी नीति (Look East Policy) को बढ़ावा देने के प्रयासों के तहत दोनों देशों के बीच तीन समझौतों पर हस्ताक्षर हुए।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE

- इनमें पारस्परिक व्यापार एवं निवेश प्रवाह को बढ़ावा देने व स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र की स्थापना की सम्भावनाएं तलाशने के लिए कार्यदल के गठन हेतु सहमति पत्र पर किए गए हस्ताक्षर शामिल है।
- सिंगापुर के प्रधानमंत्री गोह चोक तांग ने कहा कि आसियान देशों के अनौपचारिक वार्षिक शिखर सम्मेलनों में भारत को भी आमन्त्रित करने के लिए वह आसियान के अन्य नेताओं से बात करेंगे।

- **संयुक्त राष्ट सहस्राब्दि शिख सम्मेलन में वाजपेयी का सम्बोधन:** 6-8 सितम्बर, 2000 को न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र प्रांगण में सम्पन्न तीन दिवसीय संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दि सम्मेलन में अपने सम्बोधन में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने भारत के विरूद्ध शत्रुतापूर्ण आतंकवादी अभियान चलाने एवं दोमुंहेपन के लिए पाकिस्तान को (बिना उसका नाए लिए) आड़े हाथों लिया तथा भारत के साथ बातचीत के उसके ताजा प्रस्ताव को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि आतंकवाद और संवाद साथ-साथ नहीं चल सकते। आतंकवाद के विरूद्ध संयुक्त कार्यवाही करने संयुक्त राष्ट्र संघ की संरचना में सुधार करने तथा निर्धनता निवारण के लिए नई वैश्विक पहल करने का उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से आह्वान किया। सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के लिए भारत का पक्ष प्रस्तुत करते हुए वाजपेयी ने भेदभाव रहित विश्वव्यापी परमाणु नि:शस्त्रीकरण पर बल दिया।
- **रूस:** रूस के राष्ट्रपति ब्लादिमिर पुतिन ने अक्टूबर 2000 मे चार दिन के लिए भारत की यात्रा की। भारत और रूस के बीच सैन्य सहयोग बढ़ाने की दृष्टि से चार महत्वपूर्ण समझौतों पर इस यात्रा के दौरान हस्ताक्षर किए गए। भारतीय संसद की संयुक्त बैठक को सम्बोधित करते हुए पुतिन ने कहा कि जम्मू और कश्मीर में विदेशी हस्तक्षेप बन्द होना चाहिए।
  - उन्होंने आतंकवाद से संघर्ष करने के लिए संयुक्त मोर्चा तैयार करने के भारत के प्रस्ताव का समर्थन किया। पाकिस्तान और अफगानिस्तान से उत्पन्न होने वाले आतंकवादी खतरे को रोकने के लिए भारत-रूस संयुक्त कार्य दल के गठन पर सहमति हुई।
  - 4-6 नवम्बर, 2001 को प्रधानमंत्री वाजपेयी ने अपनी रूस यात्रा के दौरान छ: समझौतों पर हस्ताक्षर किये। 6 नवम्बर को राष्ट्रपति पुतिन के साथ सम्पन्न शिखर वार्ता के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर मास्को घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए। यह घोषणा पत्र वस्तुत: कश्मीर व चेचन्या के मामले में क्रमश: भारत व रूस की चिन्ताओं पर केन्द्रित दस्तावेज है।
  - दिसम्बर 2002 में रूसी राष्ट्रपति पुतिन की यात्रा के दौरान भारत एवं रूस के मध्य दिल्ली घोषणा पत्र व 8 अन्य समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों पर एक महत्वपूर्ण सन्धि इनमें शामिल हैं, जिससे दोनों देशों के बीच वैज्ञानिक सहयोग का काम तेज करने में मदद मिलेगी।
- **चीन:** प्रधानमंत्री वाजपेयी ने 22 से 27 जून, 2003 तक चीन की छ: दिवसीय यात्रा की। चीन के साथ 1950 मे राजनयिक सम्बन्ध कायम किए जाने के बाद वाजपेयी इस देश की यात्रा करने वाले चौथे प्रधानमंत्री हैं।
  - 24 जून को भारत और चीन ने ऐतिहासिक घोषणा पत्र, व्यापार सम्बन्धी सहमति पत्र और नौ समझौतों पर भी हस्ताक्षर किए। चीन ने सिक्किम के रास्ते व्यापार करने पर सहमति जताकर इस पूर्वोत्तर राज्य को भारत का हिस्सा मान लिया जबकि भारत ने तिब्बत को चीन के स्वायत्त प्रदेश के रूप में मान्यता देने का फैसला किया।
  - दोनों देश सीमा विवाद के हल मे तेजी लाने हेतु सहमत हुए। दोनों पक्ष इसके लिए विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करने पर भी सहमत हो गए। भारत ने राष्ट्रीय सलाहकार ब्रजेश मिश्र व चीन ने विदेश मंत्रालय में वरिष्ठ उपमंत्री दाई सिंग्गुओं की विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किया। इससे सीमा मसले के हल के दोनों देशों की प्रबल इच्छा का संकेत मिलता है।
- **इराक में भारतीय सेना भेजने का फैसला:** अमरीकी अनुरोध पर इराक में भारतीय सेना भेजने का फैसला राष्ट्रीय आम सहमति के बाद ही करने का निर्णय तर्कसंगत है। इराक मे सेना भेजे जाने के मामले पर संयुक्त राष्ट्र मे जो प्रस्ताव पास किया गया।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FORWARD ABOVE

- वाजपेयी सरकार के लिए यह नैतिक या राजनयिक दुविधा का क्षण नहीं था; यह इराक में युद्ध के बाद निर्माण की सम्भावना में हिस्सा बंटाने या अमरीकी दबाव में झुकने की बात नहीं थी; बल्कि यह दुनिया में अपनी अहमियत, भू-राजनीतिक शक्ति ..जिम्मेदारियों का अहसास करने वाले भारत के एक राष्ट्र के रूप में पेश आने का मौका था।
- इराक की अराजकता सिर्फ अमेरिका और ब्रिटेन की चिंता का विषय नहीं थी। दुनिया का भी इराक में दांव लगा है, चूंकि भारत इस नई दुनिया में क्षेत्रीय ताकत की तरह उभर रहा है, इसलिए वह इस जिम्मेदारी से मुक्त नहीं रह सकता।

संक्षेप में, श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में विदेश नीति के प्रमुख सीमा चिन्ह हैं:

1. नाभिकीय विकल्प का उपयोग करके अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के सम्बन्ध में प्रमुख निर्णय लेना।
2. लाहौर की ऐतिहासिक बस यात्रा।
3. भारत में सार्क देशों से आयात पर 1 अगस्त, 1998 से मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाने का निर्णय।
4. कारगिल संकट के समय देश के लिए अधिकतम राष्ट्रों का राजनयिक समर्थन हासिल करना तथा पाकिस्तान को राजनयिक दृष्टि से अलग-थलग कर देना।
5. राष्ट्रमण्डल से पाकिस्तान को निलम्बित करवाना।
6. राष्ट्रपति क्लिंटन की भारत यात्रा दोनों देशों के बीच मधुर सम्बन्धों की दिशा में महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक घटना माना जाएगा। अमेरिकी राष्ट्रपति की यह यात्रा (मार्च 2000) भारत के समुचित महत्व को स्थापित करती है।
7. भारत-यूक्रेन प्रत्यर्पण सन्धि (अक्टूबर 2002) भारत फ्रांस प्रर्त्यपण सन्धि (24 जनवरी, 2003), भारत पोलैण्ड प्रत्यर्पण सन्धि (फरवरी, 2003), भारत-यूरोपीय संघ सम्मेलन तथा भारत-आसियान कार्यसमूह का गठन।
8. दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत की बढ़ती हुई रूचि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण मेकांग-गंगा परियोजना है। प्रधानमंत्री वाजपेयी की वियतनाम एवं इण्डोनेशिया की यात्रा, भारत के राष्ट्रपति की सिंगापुर यात्रा इस क्षेत्र के देशों के साथ भारत के सम्बन्धों में एक नई शुरूआत है। भारत ने मलेशिया के साथ सैन्य क्षेत्र में सहयोग का प्रयास किया है।
9. जून, 2003 में वाजपेयी ने जर्मनी, फ्रांस और रूस की यात्रा की। एवियाँ (फ्रांस) में जी-8 की बैठ में भाग लिया। वजपेयी इस बैठक में विकासशील देशों की ओर से विशेष आमंत्रित थे। वाजपेयी ने यहां विश्व के नेताओं के सम्मुख आतंकवाद पर भारत की चिन्ताओं को दर्ज कराया। साथ ही इस बात पर जोर दिया कि अधिक सम्पन्न देशों को अपनी खुशहाली में पिछड़े और विकासशील देशों को साझीदार बनाना होगा।
10. वाजपेयी ने पाकिस्तान को एक फिर वार्ता की राह पर उतारा। सार्क का 12वां शिखर सम्मेलन (जनवरी, 2004) खत्म होने के तुरंत बाद भारत ने पाकिस्तान से बातचीत की प्रक्रिया दोबार शुरू करने की घोषणा की। इससे दोनों देशों के बीच राजनयिक सम्बन्धों में दो वर्ष से चली आ रही कटुता खत्म हुई जिसके चलते दोनों देश युद्ध के करीब पहुंच गए थे।

इन सब बातों ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत का कद बढ़ाया। आई.एम.एफ. और वर्ल्ड बैंक का दबाव भी भारत पर काम नहीं करता। भारत ने न केवल अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों की अदायगी प्रारंभ कर दी वरन् भारत भी अब ऋणदाताओं की श्रेणी में आ रहा है।

भारतीय विदेश नीतिः डॉ मनमोहन सिंह

मई 2004 में 14वीं लोकसभा चुनावों के बाद कांग्रेस के नेतृतव में डॉ. मनमोहन ने 'संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन' (UPA) की मिली-जुली सरकार का गठन किया। यह सरकार 61 सदस्यीय वामपन्थी दलों के बाहरी समर्थन पर टिकी रही। 15वीं लोकसभा चुनावों के बाद डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यूपीए गठबन्धन (मई के 2009) पुनः सत्तारूढ़ हुआ। गठबन्धन में कांग्रेस की स्थिति मजबूत होने के कारण विदेश नीति के संचालन में बिना किसी दबाव के निर्णय लिए जाने लगे।

संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार ने 'सांझा न्यूनतम कार्यक्रम' में विदेश नीति के बारे में कहा है:

पड़ोसी देशों से सम्बन्ध और सुधारने को प्राथमिकता खासतौर पर पाकिस्तान के साथ सभी मुद्दों पर सार्थक बातचीत के साथ-साथ चीन के साथ सीमा विवाद पर और कारगर बातचीत के प्रयास और व्यापार व निवेश पर भी वार्ता के प्रयास। इनके अलावा अन्य सभी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध और प्रगाढ़ करने के प्रयास होंगे।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission

भारत की परमाणु नीति

इस दौर की एक खास बात थी भारत का परमाणु विस्फोट। भारत ने 1974 के मई में परमाणु परीक्षण किया। तेज गति से आधुनिक भारत के निर्माण के लिए नेहरु ने हमेशा विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर अपना विश्वास जताया था। नेहरु की औद्योगीकरण की नीति का एक महत्वपूर्ण घटक परमाणु कार्यक्रम था। इसकी शुरुआत 1940 के दशक के अंतिम सालों में होमी जहांगीर भाभा के निर्देशन में हो चुकी थी। भारत शांतिपूर्ण उद्देश्यों में इस्तेमाल के लिए अणु ऊर्जा बनाना चाहता था। नेहरु परमाणु हथियारों के खिलाफ थे। उन्होंने महाशक्तियों पर व्यापक परमाणु निशस्त्रीकरण के लिए जोर दिया। बहरहाल, परमाणु आयुधों में बढ़ोत्तरी होती रही। साम्यवादी शासन वाले चीन ने 1964 के अक्टूबर में परमाणु परीक्षण किया। अणु शक्ति संपन्न बिरादरी यानी संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन ने, जो संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य भी थे, दुनिया के अन्य देशों पर 1968 की परमाणु अप्रसार संधि को थोपना चाहा। भारत हमेशा से इस संधि को भेदभावपूर्ण मानता आया था। भारत ने इस पर दस्तखत करने से इनकार कर दिया था। भारत ने जब अपना पहला परमाणु परीक्षण किया तो इसे उसने शांतिपूर्ण परीक्षण करार दिया। भारत का कहना था कि वह अणु शक्ति को सिर्फ शांतिपूर्ण उद्देश्यों में इस्तेमाल करने की अपनी नीति के प्रति दृढ़ संकल्प है।

जिस वक्त परमाणु परीक्षण किया गया था वह दौर घरेलू राजनीति के लिहाज से बड़ा कठिन था। 1973 में अरब-इजराइल युद्ध हुआ था। इसके बाद पूरे विश्व में तेल के लिए हाहाकार मचा हुआ था। अरब राष्ट्रों ने तेल के दामों में भारी वृद्धि कर दी थी। भारत इस वजह से आर्थिक समस्याओं से घिर गया। भारत में मुद्रास्फीति बहुत ज्यादा बढ़ गई। इस वक्त देश में कई आंदोलन चल रहे थे और इसी समय देशव्यापी रेल-हड़ताल भी हुई थी।

हालांकि राजनीतिक दलों के बीच विदेश नीति के बारे में छोटे-मोटे मतभेद जरूर हैं लेकिन भारतीय राजनीति में विभिन्न दलों के बीच राष्ट्रीय अखंडता, अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा की सुरक्षा तथा राष्ट्रीय हित के मसलों पर व्यापक सहमति है। इस कारण, वर्ष 1962-1972 के बीच जब भारत ने तीन युद्धों का सामना किया और इसके बाद के समय में भी जब समय-समय पर कई पार्टियों ने सरकार बनाई- विदेश नीति की भूमिका पार्टी की राजनीति में बड़ी सीमित रही।

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर विशेष ध्यान दिया। 22 सदस्यीय 'एशियाई सहयोग संवाद' की तीसरी बैठक (21-22 जून, 2004) में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व विदेश मंत्री नटवर सिंह ने किया। सात देशों के संगठन बिम्स्टेक (BIMST-EC) के बैंकाक मे सम्पन्न पहले शिखर सम्मेलन (30-31 जुलाई, 2004) में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने किया।

डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में भारतीय विदेश नीति के प्रमुख चिन्ह हैं: भारत की पड़ोस नीति की घोषणा, भारत-आसियान तथा भारत-यूरोपीय संघ में उभरते घनिष्ठ सम्बन्ध, चीन के प्रधानमंत्री वेन जियाबाओ और पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुर्शरफ की भारत यात्राएं, सुरक्षा परिषद् की स्थाई सदस्यता के लिए सक्रिय प्रयास एवं अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन हासिल करना आदि।

वर्तमान भारत की विदेश नीति

एक तरह से देखा जाए तो दुनिया के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश भारत की विदेश नीति के संदर्भ मे ऐसा कहा जाता है कि यहां सामान्यत: प्रति 5 साल मे सत्ता का स्थानांतरण तो होता है, परंतु विदेश नीति के स्वरूप और आधारभूत ढांचे मे कोई खासा परिवर्तन नहीं होता। भारतीय विदेश नीति की संरचना और रूपरेखा का रेखांकन प्रधानमंत्री द्वारा ही होता है। अगर बात की जाए पूर्व प्रधानमंत्रियों की तो देश की विदेश नीति की नींव रखने वाले सर्वप्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से लेकर डॉ. मनमोहन सिंह की विदेश-नीति प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तौर पर बड़ी नपी-तुली और लचीली दिखाई देती है।

दरअसल, देश मे राजीव गांधी सरकार के बाद से ही केंद्र मे लगभग सभी गठबंधन वाली 'मजबूर' सरकारें काबिज रहीं हैं, और ऐसा माना जाता है कि ऐसी 'लाचार-सरकारों' की अपनी ही कुछ मजबूरियां एवं कटिबद्धता होती हैं, जिसने सही मायने में भारतीय विदेश-नीति को सालों-साल कमजोर बनाए रखा है। कांग्रेस के नेत्रत्व वाली यूपीए-1 सरकार के मुख्य-घटक दल डीएमके का बार-बार (सरकार गिराने की धमकी के साथ) 'तमिल-मुद्दे' पर श्रीलंका के लिए निर्धारित होने वाली विदेश-नीति को प्रभावित करना इसका उपयुक्त उदाहरण है।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

भारतीय विदेश नीतिः
हमारे प्रधानमंत्रियों के दृष्टि क्षेत्र में

- **जवाहरलाल नेहरूः** गुटबंदी का विरोध, विश्व-शांति की स्थापना, शीतयुद्ध को फीका करना, साम्राज्यवाद का विरोध, पंचशील, निःशस्त्रीकरण, गुट-निरपेक्षता, आदि-आदि का प्रचार।
- **लालबहादुर शास्त्रीः** पड़ोसी राज्यों में मेल-जोल, वैश्विक शांति स्थापना हेतु सभा राज्यों से मैत्रीपुर्ण संबंध, आदि-आदि।
- **इन्दिरा गांधीः** सैनिक प्रतिरक्षा पर बल, गुट-निरपेक्ष आंदोलन को सशक्त करना, विकासशील देशों के लिए संयुक्त राष्ट्र को वैश्विक मंच बनाना, 77 देशों के गुट का प्रोत्साहन, नव-उपनिवेशवाद का उन्मूलन, एशियाई-अफ्रीका एकता पर जोर, सोवियत संघ से निकटतम संबंध, आदि-आदि।
- **मोरारजी देसाईः** पश्चिमी देशों की ओर झुकाव, स्वस्थ रूप की गुट-निरपेखता पर बल, विदेश नीति में 'एशिया पर फोकस', पड़ोस राज्यों, विशेष रूप से पाकिस्तान से संबंधों बल आदि-आदि।
- **राजीव गांधीः** गुट-निरपेक्षता पर बल तथा संयुक्त राष्ट्र में आस्था; 1962 से बिगड़े चीन से संबंधों में सुधार, पड़ोसी व बड़े-बड़े राज्यों से संबंधों में सुधार, अफ्रीका देशों के प्रति सहानुभूति एवं उनके लिए कल्याण हेतु सुझाव, सोवियत-संघ-अमेरिका में संबंध सुधरे, आदि-आदि।
- **अटल बिहारी वाजपेयीः** पाकिस्तान व श्रीलंका के अतिरिक्त पड़ोसी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध सुदृढ़ हुए; 1962 से बिगड़े चीन से संबंधों में सुधार, पड़ोसी व बड़े-बड़े राज्यों से संबंधों में सुधार, अफ्रीका देशों के प्रति सहानुभूति एवं उनके लिए कल्याण हेतु सुझाव, सोवियत-संघ-अमेरिका से संबंध सुधरे आदि-आदि।
- **राजीव गांधीः** गुट-निरपेक्षता पर बल तथा संयुक्त राष्ट्र में आस्था; 1962 से बिगड़े चीन से संबंधों में सुधार, पड़ोसी व बड़े-बड़े राज्यों से संबंधों में सुधार, अफ्रीका देशों के प्रति सहानुभूति एंव उनके लिए कल्याण हेतु सुझाव, सोवियत-संघ-अमेरिका से संबंध सुधरे, आदि-आदि।
- **अटल बिहार वाजपेयीः** पाकिस्तान व श्रीलंका के अतिरिक्त पड़ोसी राज्यों के साथ मैत्रीपुर्ण संबंध सुदृढ़ हुए; अमेरिका के साथ संबंधों में सुधार; खाड़ी देशों में शांति स्थापित करने के प्रयास, चीन से संबंध सुधरे, आदि-आदि।
- **मनमोहन सिंहः** उदारीकरण व निजीकरण के फलस्वरूप वैश्वीकरण से भारत का आर्थिक स्थिति के सुधारने के पश्चात् संगठनों व संयुक्त राष्ट्र एवं वैश्विक संगठनों में भारत की स्थिति सुधरी, अमेरिका, रूस, चीन व यूरोपीय संघ एवं जापान के साथ सामरिक संबंधों में सुदृढ़ता, बड़े-बड़े देशों के साथ व्यापार बढ़ा, वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकी सहयोग में वृद्धि आदि-आदि।

पूर्व प्रधानमंत्रियो की विदेश-नीतियों का लेखा-जोखा

मनमोहन सिंह देश के 10 साल (2004-2014) तक प्रधानमंत्री रहे। उनकी विदेश नीति मे दूरदर्शिता और योजना का अभाव था। इसका एक कारण सत्ता के दो केन्द्रों का होना भी हो सकता है। डॉ. मनमोहन सिंह की विदेश नीति का अहम और प्रमुख आकर्षण 2006 मे विपक्ष के भारी दबाव के बाद भी अमेरिका के साथ परमाणु समझौता करना था। मसलन ऐसे कई मौके आए जब डॉ. मनमोहन सिंह की विदेश नीति गठबंधन की मर्यादाओं और मजबूरियों के चलते बेहद कमजोर दिखी। पाकिस्तान को लेकर डॉ. सिंह की विदेश नीति रक्षात्मक मुद्रा मे रहते हुए भी असफल ही रही, यहा तक कि भारत 2008 के मुंबई हमले के मुद्दे पर पाकिस्तान को अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर घेरने मे भी नाकामयाब रहा।

अटल ने दिशाहीन हो चुकी विदेश नीति को दिशा के साथ एक नई 'शक्ल' और 'पहचान' देने का काम किया। शीतयुद्ध के दौरान बदले समीकरणों को भुला अमेरिका, इजराइल और पूर्वी एशियाई देशों के साथ मधुर संबंध बनाने की कवायद के साथ पुराने सहयोगी रूस के साथ रणनीतिक साझेदारी की नींव रखने वाले अटल ही थे, जिससे देश की विदेश नीति को एक नयी ऊर्जा और रफ्तार मिली।

1998 के पोखरण परमाणु परीक्षण हो, पाकिस्तान को लेकर सुनियोजित और सटीक नीति, अटल बिहारी नेहरू के बाद भारतीय विदेशनीति के 'आधुनिक जनक' के रूप मे उभर कर आए। पाकिस्तान को लेकर अटल ने अपनी विदेश नीति मे विविधता दिखाई। 1999 मे 'लाहौर बस सेवा' और 2001 मे 'आगरा सेवा सम्मिट' अटल की विदेश नीति का 'मैत्रीपूर्ण' रंग ही था, वहीं जरूरत पड़ने पर उन्होने आक्रामक होते हुए 1999 मे कारगिल मे पाकिस्तान को नाको चने चबवा दिये थे।

JUNTAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

भारतीय राजनीति का एक ऐसा भी दौर आया, जब देश की विदेश नीति गठबंधन की मजबूरियों की 'बलि का बकरा' बनने लगी। राजनीतिक अस्थिरता और असमंजस्ता का अंदाजा आप इससे भी लगा सकते हैं कि दो वर्ष के भीतर ही (1996 से 1998 के बीच) ही देश को एच. डी. देवगौड़ा, अटल बिहारी वाजपेयी और इंद्र कुमार गुजराल के रूप मे 3 प्रधानमंत्री मिल चुके थे। गुजराल को उनके 'गुजराल सिद्धांत' के रूप में विदेश नीति को नए आयाम देने के लिए जाना जाता है।

भारतीय विदेश नीति के निष्कर्ष

जब इंदिरा गांधी 1966 में प्रधानमंत्री बनी तो उन्होंने महसूस किया कि अमरीका और पश्चिम के साथ संबंधों को मूल रूप से सुधारने की जरूरत है। यह इसलिए कि एक ओर तो अमेरिका के पास चीनी सैधवाद की बेहतर दृष्टि थी और उसे फिर से हमले की स्थिति में सहायता का वादा किया था। दूसरी ओर आकाल के फलस्वरूप भोजन को भारी कमी और वर्ष 1962 और वर्ष 1965 के युद्धों के कुप्रभाव से जनित गंभीर आर्थिक स्थिति में मदद की जरूरत थी इसी कारण अमरीकी सलाह पर श्रीमती गांधी ने रूपये का अवमूल्यन किया।

यह अलग बात है कि इससे भारत को कोई विशेष फायदा हुआ था नहीं। इन्होंने आर्थिक सहायता पाने की आशा में अमरीका का दौरा किया। उन्होंने अनाज के आपात तथा एक नई मित्रता की कोशिका की। वे अधिक निराश होकर वापस लौटी। उन्होंने पाया की प्रेसिंडेट लिंडन जॉन्सन अपनी घोषणाओं के विपरीत भारत को अनाज की पूर्ति में जानबूझकर देरी कर रहे थे और दूसरे प्रकार के सहायता में भी।

उन्होंने भारत के कृषि विकास को हरित क्रांति के जरिए आत्मनिर्भरता के रास्ते पर चलाया। उन्होंने गुटनिरपेक्ष आंदोलन को मजबूत किया और विश्व मामलों में भारतीय स्वपापत्ता मजबूत की। उन्होंने धीरे-धीरे सोवियत संघ के साथ अपने संबंध मजबूत किए। वर्ष 1966-67 में उन्होंने सक्रिय राजनयिक प्रयत्नों के जरिए सोवियत संघ को मनाया की वह भारत और पाकिस्तान से एक सरीखा व्यवहार न करे और पाकिस्तान को सैनिक सहायता न दें।

वर्ष 1977 में सत्ता में आने के बाद जनता सरकार ने बड़े जोरों-जोरों से सच्ची गुटनिरपेक्षता की बात की। उन्होंने सोवियत संघ के साथ बड़े पैमाने पर हथियारों के संबंध में बातचीत शुरू की, जिसे वर्ष 1980 में श्रीमती गांधी ने सत्ता में लौटने पर पूरा किया।

राजीव गांधी ने पाया की अमरीका के नजदीक जाने की उनकी कोशिश फलदायी नहीं रही। वे वापस गुटनिरपेक्षता, परमाणु नि:शस्त्रीकरण, दक्षिण को समर्थन इत्यादि नीतियों पर लौट आए।

विश्व संबंधों के प्रति नेहरू की दूरदृष्टि इस सच्चाई से साबित होती है कि दुनिया ने जो कुछ पहले बचकाना और अव्यवहारिक समझा उसे धीरे-धीरे स्वीकार कर लिया। परमाणु नि:शस्त्रीकरण विश्व पैमाने पर व्यापक रूप से स्वीकृत और इच्छित देश बन गया। फरवरी 1972 में अमरीका और चीन ने शंघाई सहमति पर हस्ताक्षर किए। यह कोई साधारण बात नहीं है कि चीनीयों को मजबूर होकर उन्हीं सिद्धांतों को अपनाना पड़ा जो उसी व्यक्ति ने प्रतिपादित किए थे जिसे वर्ष 1962 में भारत पर हमला करे भारत को धोखा दिया था। ये सिद्धांत पहली बार वर्ष 1954 में तिब्बत संबंधी भारत-चीन समझौते में पेश किए गए थे। यह समझौता नेहरू की पेशकस पर हुआ था। नेहरू और गांधी की आगे की पुष्टि के रूप में सोवियत नेता मिखाइल गोर्वाचेव ने प्रधानमंत्री राजीव गांधी के साथ नवंबर 1996 में नई दिल्ली घोषणा पर हस्ताक्षर किए। इसमें विश्व संबंधों में अहिंसा तथा राष्ट्रों के सामुदायिक संबंधों पर जोर दिया गया। यह अधिकाधिक माना जा रहा है कि परंपररागत युद्ध भी बड़े निराशकारी होते है। अलावा, वे सीमाएं बदलने में या तो पूरी तरह विफल रहे है (जैसा की इरान-इराक युद्ध में) था जनता को अपने कब्जे में रखने में (जैसा की वियतनाम, अफगानिस्तान, पश्चिमी तट इत्यादि।) इसलिए एक मात्र व्यवहारिक विचार न्यूक्लियर हथियार मुक्त एवं अहिंसक विश्व का है।

❑❑❑

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

1. समाजवाद में मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल की मुख्य विशेषताओं पर चर्चा करें। इसकी कमियों पर प्रकाश डालें।

(200 शब्द)

2. आधुनिकीकरण की पूंजीवादी व्यवस्था क्या है? भारत ने इस व्यवस्था का परित्याग क्यों किया, कारण बतायें?

(200 शब्द)

3. भारत में योजना के पहलुओं और इसके प्रभाव पर चर्चा करें।

(200 शब्द)

4. वर्ष 1951-56 और 1956-61 के योजना के पहलुओं में अंतर बतायें।

(200 शब्द)

5. ''तेजी से औद्योगिकीकरण'' को परिभाषित करें। हरित क्रांति को इसने किस प्रकार प्रभावित किया।

(200 शब्द)

6. हरित क्रांति क्या है? इसके सक्रारात्मक एवं नकारात्मक परिणामों पर चर्चा करें।

(200 शब्द)

7. ''ऑपरेशन फ्लड'' क्या है? इसके मुख्य उद्देश्यों पर चर्चा करें। इस कार्यक्रम से सबसे अधिक लाभान्वित कौन हुआ? स्पष्ट करें।

(200 शब्द)

8. औपनिवेशिक व्यवस्था की जमींनदारी प्रथा को किस प्रकार भूमि सुधार से प्रतिस्थापित किया गया?

(200 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

अध्याय

4

भारत में नियोजित विकास का आरंभ

परिचय

भारत को आजादी के समय विरासत में अत्यंत दयनीय परिस्थिति हाथ लगी। उपनिवेशवाद ने अर्थतंत्र और समाज को बर्बाद कर दिया था और इस प्रकार उसे विश्व के अन्य भागों में हो रहे आधुनिक परिवर्तनों से दूर रखा। अत्यंत गरीबी, निरक्षरता, बर्बाद खेती और उद्योगों के अलावा उपनिवेशवाद द्वारा भारतीय अर्थतंत्र और समाज में लाई गई ढांचागत विकृतियों के आत्मनिर्भर विकास का काम अत्यंत कठिन बना दिया। ढांचागत विकृतियों के उदहारण के रूप में भारतीय अर्थतंत्र के विभिन्न हिस्सों के बीच संबंधों का भिन्न-भिन्न होना और उसे ब्रिटेन और विकसित अर्थतंत्र पर निर्भर बनाया जाना है।

भारत में नियोजित विकास

स्वतंत्र भारत के सामने आगे तीव्र औद्योगिक विकास के लिए इसी औपनिवेशिक विरासत को तोड़ना जरूरी है। पृथक औद्योगिक क्रांति के दो सौ वर्षों बाद भारत का आधुनिक औद्योगीकरण करना एक विशाल कार्य था। उपनिवेशवाद द्वारा निर्मित इन समस्याओं के अलावा भारत के सामने पूरी तरह बदलती हुई रणनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ खड़ी थी। ऐसी स्थिति में नई और अविष्कृत राजनीतियों की आवश्यकता थी।

इस कार्य के दौरान, उपनिवेशवाद से मुक्ति पाए अन्य देशों के मुकाबले भारत कई मानों में अनुकूल स्थिति में था। पहला वर्ष 1914 और वर्ष 1947 के बीच भारतीयों के स्वामित्व में और उनके द्वारा नियंत्रित एक छोटा किंतु स्वतंत्र औद्योगिक आधार देश में तैयार हो चुका था। दो विश्व युद्धों एवं तीस के दशक के महाविश्व आर्थिक मंदी के फलस्वरूप सम्राज्यवाद के कमजोर पड़े शिकजें का फायदा उठाकर यह कार्य संभव हुआ। भारत की आजादी आते-आते भारतीय उद्यमी भारत में यूरोपिय उद्यम से सफलतापूर्वक मुकाबला कर पा रहे थे एवं साथ ही विदेशी आयात से भी। इस प्रकार वे भारत के औद्योगिक उत्पादन के 75 फीसदी पर अपना अधिकार कर सके। भारतीय पूंजीपतियों का वित्तीय क्षेत्र पर भी जैसे बैन्डिंग, जीवन बीमा, इत्यादि पर भी प्रभुत्व संभव हो गया।

इसलिए आजादी के समय उपनिवेशवादी इतिहास के बावजूद और उसके विरोध में भारत ने एक ऐसा स्वतंत्र आर्थिक आधार तैयार कर लिया था, जिसके सहारे आगे बढ़ा जा सकता था और स्वतंत्र तथा तेज औद्योगिकरण का काम लिया जा सकता था। यह स्थिति उन कई उत्तर औपनिवेशिक देशों से अलग थी जो नव उपनिवेशवाद का शिकार बने उनकी राजनीतिक आजादी मात्र औपचारिकता थी, जबकि उनके आर्थिक हित अपने पूर्व उपनिवेशवादी शासक देश के साथ जुड़े हुए थे।

देश में काफी संख्या में भारतीय उद्यमी वर्ग मौजूद था जो आगे नियोजित विकास में सहायक हो सकता था। अंग्रेजों के समय में ही अर्थतंत्र में काफी हद तक संकेद्रण और स्थापित्व पैदा हो चुका था जिसके फलस्वरूप उस समय बिरला, टाटा, सिंघानिया, डालमिया, जैन जैसे बड़े कारोबारी घराने पैदा हो चुके थे। वे व्यापार, बैकिंग, यातायात, उद्योग इत्यादि में विकसित हो चुके थे। ऐसे बड़े घराने जापान में जाइबात्सु या दक्षिण कोरियामें चाईबोल के समान, विश्व पूँजीवाद में देर से प्रवेश करने वाले के लिए महत्व के थे। उनके सहारे वे विदेश पूँजी और खासकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ सफल मुकाबला कर सकते थे।

जनतांत्रिक एवं सामाजिक उदारवादी औद्योगिकरण

सबसे महत्व की बात थी जनतांत्रिक एवं सामाजिक उदारवादी ढांचे के तहत इस योजनाबद्ध तीव्र औद्योगिकरण की असाधारण कोशिश। औद्योगीकरण में प्रवेश करने या 'अंतिम संचय' के शुरूवाती दौर में सभी औद्योगिक देशों में जनतंत्र नहीं था और ना ही सामाजिक आजादियाँ। नेहरू तथा कई दूसरे लोग तथा स्वयं पूंजीपति इस बात से अवगत नहीं थे कि वे एक अनजारी राह पर चल पड़े है। फिर भी वे इसके प्रति समर्पित बने रहे है। भारत में किसी ने भी दक्षिणी अमरीका या पूर्वी एशिया या अन्य जगतों के पूंजीवादी मॉडल को देश में लागू करने का सवाल तक नहीं उठाया।

उन देशों में प्रभुत्ववादी सरकारें पूंजीपतियों के साथ मिलकर कृत्रिम तरीके से तेज विकास समाज पर लाद रही थी। भारत में विकास पथ के बारे में आम सहमति राष्ट्रीय आंदोलन के विशेष स्वरूप की देन थी। इसलिए भारत पूर्व औपनिवेशिक देशों में लगभग एकमात्र ऐसा देश था जिसने वास्तविक जनतंत्र और विकसित किया।

योजना तथा सार्वजनिक क्षेत्र

उन्नीसवीं सदी के अंतिम भाग में ही एम.जी. रानाडे और दादाभाई नौरोजी जैसे शुरूआती राष्ट्रवादियों के आर्थिक चिंतन ने आर्थिक विकास में राज्य को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई थी। राज्य द्वारा हस्तक्षेप की अपेक्षा करने तथा अर्थतंत्र को पूरी तरह बाजार की ताकतों के हाथों नहीं छोड़ने के ये विचार दोनों महायुद्धों की बीच की अवधि में और भी स्पष्ट और व्यापक हुए। इसका एक कारण कींस का आर्थिक विचार, अमरीका में 'न्यू डील' (नए आर्थिक सहयोग) के अनुभव और सोवियत प्रयोग था। वर्ष 1934 में भारतीय चेंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (फिक्की) के अध्यक्ष एन.आर. सरकार ने घोषणा की: ''असीमित मुक्त व्यापार के दिन हमेशा के लिए लद चुके हैं।'' वे पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व के विचार प्रकट कर रहे थे। उन्होंने कहा कि भारत जैसे पिछड़े देश में आर्थिक विकास की एक व्यापक योजना होनी चाहिए, जिसमें अर्थतंत्र कृषि, उद्योग, ऊर्जा, बैकिंग, वित्त इत्यादि के सभी पहलू शामिल किए जाने चाहिए। इनमें संबंधित योजनाओं की रूपरेखा तैयार करके उन्हें लागू करने का काम उच्च-स्तरीय 'राष्ट्रीय योजना कमिशन' करे। यह भूतकाल के साथ संबंध विच्छेद करने तथा विकास की संभावनाएं पूरी तरह खोलने के लिए जरूरी था। वर्ष 1938 में नियोजित आर्थिक विकास के सबसे बड़े पहलकर्ता जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में राष्ट्रीय योजना कमिशन (एन.पी.सी.) गठित की गई। इसने बाद के दशक में विकास की एक व्यापक योजना तैयार की, और इनकी विभिन्न उप-समितियों ने सुझावों के उनतीस खंड तैयार किए।

- अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी द्वारा संशोधित वर्ष 1931 के कांग्रेस के कराची प्रस्ताव में कहा गया कि 'राज्य प्रमुख उद्योगों, सेवाओं, खनिज स्त्रोतों, रेलवे, जल-परिवहन, जहाजरानी और दूसरे यातायात साधनों से नियंत्रण रखेगा।' नेहरू और एन.पी.सी. के अलावा भारतीय उद्यमों के नेता भी सार्वजनिक क्षेत्र तथा आंशिक राष्ट्रीकरण के पक्षधर थे।
- सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमियों के महत्वपूर्ण समर्थन का कारण प्लैन फॉर इकोनॉमिक डेवलपमेंट ऑफ इंडिया (भारत के आर्थिक विकास की योजना) में वर्ष 1945 में पेश किया गया था। इसे कारोबार के नेताओं ने तैयार किया था, और यह 'बांबे प्लान' (बांबे योजना) के नाम से भी प्रसिद्ध है। बांबे प्लान के अनुसार विकसित देशों पर भारत की निर्भरता का मुख्य कारण स्थानीय मूल उद्योगों का न होना था। दूसरी पंचवर्षीय योजना के काफी पहले ही इसके एक मूल मुद्दे को प्लान बनाकर पेश किया गया।

भारी उद्योगों का विकास

मूल वस्तुओं और भारी तथा मूल उद्योगों के विकास के लिए बड़े वित्त की जरूरत थी। यह महसूस किया गया कि इस काम में सार्वजनिक क्षेत्र को प्रमुख भूमिका अदा करनी होगी। नहेरू तथा वामपंथी राष्ट्रवादी, एवं पूंजीपति सार्वजनिक क्षेत्र की इस भूमिका पर एकमत रखते थे। उनमें इसकी व्यापकता और अधिकार-रोज के बारे में मतभेद था। नेहरू एवं वाम राष्ट्रवादी सार्वजनिक क्षेत्र को समाजवादी दिशा में एक कदम मानते थे। दूसरी ओर पूंजीपति इसे स्वतंत्र पूंजीवाद विकसित करने का एक जरिया तथा विकास को बराबरी के साथ मिलाकर समाजवाद रोकने का एक उपाय समझते थे। खासकर शुरूआती वर्षों में इन दो रूझानों के बीच तनाव स्पष्ट था।

PARAMOUNT IAS Mission
A SUBSIDIARY OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE 2003

उदाहरण के लिए, 1947 में, नेहरू के नेतृत्व में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने एक आर्थिक कार्यक्रम समिति गठित की। उसने सार्वजनिक क्षेत्र के लिए प्रतिरक्षा, प्रमुख उद्योग और जन सेवाएं तय कीं। इतना ही नहीं; समिति ने आगे कहा कि 'वर्तमान उद्यमों के मामले में निजी से सार्वजनिक स्वामित्व में हस्तांतरण पांच वर्षों के बाद शुरू होगा।'

- वर्ष 1948 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में समझौते के चिह्न दिखाई देते हैं। इसमें निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के अधिकार-क्षेत्र निर्धारित किए गए। इसमें कहा गया कि किसी भी वर्तमान उद्योग के राष्ट्रीकरण के संबंध में दस वर्षों बाद समीक्षा की जाएगी। और परिस्थिति के मुताबिक निर्णय लिया जाएगा। दिसंबर 1954 में भारतीय संसद ने 'समाज की समाजवादी प्रणाली' को अपना सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्य माना। कांग्रेस के अवाड़ी अधिवेशन (1955) ने इन्हीं लाइनों पर तीव्र वामपंथी मोड़ लिया। इन बातों के बावजूद 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव तथा दूसरी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के प्रसार की बात करने के बावजूद वर्तमान उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का कोई उल्लेख नहीं किया।
- वास्तव में, 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' का माडल पेश किया गया इसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र न सिर्फ सहअस्तित्व में रहते हैं बल्कि एक-दूसरे के पूरक भी होते हैं। राष्ट्रीय योजना की सीमाओं में निजी क्षेत्र को विकसित होने के लिए अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया गया। यह अलग बात है कि दूसरी योजना में भारी और मूल वस्तुओं के उद्योगों पर जोर देने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र की ओर झुकाव बढ़ गया क्योंकि सभी मानते थे कि इसी क्षेत्र में इन उद्योगों का विकास हो सकता है।

याद रहे कि नेहरू ने अपनी विचाराधारात्मक स्थितियों पर बहुत जोर देने या उन्हें थोपने से इन्कार कर दिया। इससे स्तालिनवादी मार्क्सवाद पर चलने वाले वामपंथियों को बड़ी निराशा हुई। तीस के दशक के अंत में विकसित होते नेहरू के समाजवादी विचार जनतंत्र से अविभाज्य थे। इसीलिए, उन्होंने योजना तथा सार्वजनिक क्षेत्र संबंधी कदम समाज की सहमति से जनतांत्रिक तरीकों से ही लागू किए। नेहरू की दृष्टि में योजना पर अमल सहमति में न कि आदेश से होना चाहिए था।

योजना आयोग एवं भारत की स्थिति

योजना कमिशन ने इसी परिप्रेक्ष्य के साथ काम शुरू किया। इसकी स्थापना 15 मार्च 1950 को हुई थी। इसके पास बड़े अधिकार थे, इसमें शक नहीं: और स्वयं नेहरू इसके अध्यक्ष बने।

- प्रथम योजना (1951-56) में मुख्यत: अधूरे काम पूरे करने का प्रयत्न किया गया। साथ ही, युद्ध के बाद की स्थिति से जनित संकट का सामना करने का भी प्रयत्न किया गया। आजादी देश-विभाजन के साथ मिली, और इसीलिए सारे देश में भारी अपरा-तफरी मच गई। इतिहास का सबसे बड़ा जनसंख्या-हस्तांतरण हुआ और बड़े पैमाने पर शरणर्थियों के आने से समस्या और भी गंभीर हो गई।
- दूसरी योजना (1956-61) में प्रसिद्ध नेहरू-महालनोबिस विकास रणनीति लागू की गई।
- तीसरी योजना (1961-66) में भी जारी रही। प्रो. पी.सी. महालनोबिस ने द्वितीय योजना तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस रणनीति का एक मूल तत्व भारी तथा मूल वस्तुओं के उद्योगों का विकास था, जो मुख्यत: सार्वजनिक क्षेत्र में होना था। दूसरी योजना के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र में तीन इस्तपात संयंत्र लगाए गए। आयात के बदले इस उद्योग का विकास आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक था।

साथ ही, विदेशों पर निर्भरता कम होती थी। साथ ही, यह भी समझा गया कि मूल वस्तुओं और मशीनरी के आयात के अनुपात में निर्यात का विकास नहीं हो सकता था। निर्यात के संबंध में ऐसी निराशावाद उस वक्त आम बात थी, हालांकि बाद में इसकी कड़ी आलोचना की गई। इस मॉडल के तहत शुरू में कुछ विदेशी सहायता और निवेश आवश्यक था, ताकि बड़े पैमाने पर लागत की व्यवस्था हो सके। लेकिन आंतरिक बचत तेजी से बढ़ाकर यह निर्भरता समाप्त करने का उद्देश्य भी रखा गया। और सच बात यह है कि आजादी के बाद शुरू के वर्षों में नेहरू ने भारत में विदेशी पूंजी निवेश आकर्षित करने का प्रयत्न किया था। उसे भारतीय पूंजीपतियों ने पसंद नहीं किया क्योंकि उनमें अभी आत्मविश्वास की कमी थी।

भारी उद्योगों के विकास के साथ-साथ श्रम-गहन छोटे और गृह उद्योगों का विकास करना भी तय पाया गया ताकि उपभोक्ता

वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके। यह समझा गया कि सामुदायिक विकास योजनाओं के तहत कृषि में सामुदायिक कार्यक्रम के जरिए रम का अधिकाधिक उपयोग करेंगे औरपूंजी का उत्पादन करेंगे। इनमें कृषि सहकारिताओं की अपनी भूमिका होगी। जैसा कि बाद की घटनाओं ने दर्शाया, बेकारी की समस्या हल करने में बिना राज्य द्वारा बड़े पैमाने पर निवेश के इन कदमों की भूमिका आवश्यक से अधिक आंकी गई।

नेहरू-महालनोबिस रणनीतिः यह का एक और महत्वपूर्ण अंग विकास और समानता पर जोर था। इसलिए उद्योग और खेती में संकेंद्रण और वितरण के प्रश्न पर काफी ध्यान दिया गया, हालांकि इसमें अपेक्षित सफलता नहीं मिली। रणनीति में विकास तथा समानता को एक-दूसरे का विरोधी नहीं समझा गया, यह माना गया उच्चतर विकास से समानता के उच्चतर स्तरों तक पहुंचा जा सकता है। साथ ही इसे गरीबी से निबटने के लिए आवश्यक माना गया। इसलिए तेज विकास पर ज्यादा ध्यान दिया गया।

वर्ष 1956-57 में विदेशी मुद्रा की भारी कमी और भुगतान-संतुलन का संकट पैदा हो गया। फलस्वरूप आयात और विदेशी मुद्रा संबंधी व्यापक नियंत्रण लगाए गए। इस प्रकार लाइसेंस-कोटा नियमों के काफ्का-स्वरूपी जाल बुन दिए गए। इस बात के वर्षों में ही पाया गया कि इस प्रणाली ने भारतीय अर्थतंत्र पर अपनी पकड़ कितनी मजबूत कर रखी थी और इसे तोड़ना कितना कठिन काम था। इसे तोड़ने का विरोध नौकरशाही-राजनीतिज्ञ गठबंधन और कारोबारियों के कुछ हिस्सों ने किया, जिन्हें इस प्रणाली से फायदा पहुंच रहा था।

स्वतंत्रता पश्चात् भारत में योजना व्यवस्था

दीर्घकालीन औपनिवेशिक शासन के फलस्वरूप भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक ऐसी अर्थव्यवस्था विरासत में मिली, जिसमें सीमित उद्योगीकरण, निम्न कृषि उत्पादन, अल्प प्रति व्यक्ति आय तथा मंद आर्थिक विकास गति जैसी नकारात्मक विशेषताएं मौजूद थी। अशिक्षा, संकीर्णता तथा सामाजिक असमानता इसके अन्य प्रमुख तत्व थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीतिक नेतृत्व द्वारा परिस्थितियों एवं जनाकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए विकास के चार लक्ष्य घोषित किये गये, ये थे-

1. आयात और विदेशी सहायता पर भारत की निर्भरता को कम करना।
2. पूंजी निर्माण एवं संसाधनों का प्रसार करना।
3. सामाजिक एवं क्षेत्रीय असमानताओं का उन्मूलन करना, तथा
4. जनसामान्य हेतु पर्याप्त एवं न्यूनतम जीवन स्तर की उपलब्धि करना।

उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु राजनीतिक नेतृत्व के पास दो विचारधाराओं- पूंजीवादी और साम्यवादी पर आधारित शासन प्रणालियों को अपनाने के विकल्प मौजूद थे, किंतु पूंजीवादी व्यवस्था में व्याप्त असमानता तथा साम्यवादी शासन की निरंकुशता ने भारतीय नेतृत्व को तीसरे रास्ते का चुनाव करने को प्रेरित किया। जवाहरलाल नेहरू के प्रभाव के अंतर्गत लोकतांत्रिक व्यवस्था में आर्थिक नियोजन को लागू करने के नये प्रयोग को अपनाने का निर्णय किया गया, जिसमें विकास और समता के उद्देश्यों को शांतिपूर्ण तरीके से प्राप्त किया जाना था।

नियोजन सम्बंधी प्रारंभिक प्रयास

कांग्रेस ने वर्ष 1938 में राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया, जिसके अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू थे। समिति द्वारा तैयार कई रिपोर्टों में मूलभूत उद्योगों के सार्वजानिक स्वामित्व, बड़े और लघु उद्योगों के मध्य समन्वय, क्षतिपूर्ति देकर जमीदारी प्रथा के उन्मूलन, नियोजन में कृषि क्षेत्र को आवश्यक रूप से शामिल करने तथा सहकारी खेती के विस्तार आदि की सिफारिशें कीं गयीं।

- वर्ष 1944 में भारत के आठ बड़े उद्योगपतियों ने आर्थिक विकास का एक दस्तावेज तैयार किया जिसे बंबई योजना कहा जाता है।
- आचार्य श्री मन्नारायण द्वारा 'गांधीवादी योजना' के माध्यम से दस वर्ष में लोगों को जीवन की मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने का दावा किया गया। एम.एन. राय ने भी 'जनता योजना' का प्रस्ताव रखा, जिसमें सरकारी खेती और भूमि के राष्ट्रीयकरण पर बल दिया गया। जयप्रकाश नारायण की 'सर्वोदय योजना' भी विकास के गांधीवादी मॉडल पर आधारित थी।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission

- इस प्रकार विकास की इन विभिन्न योजनाओं के द्वारा भारत में नियोजन के कई प्रारूप उभर कर आये, जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीतिक नेतृत्व को नियोजन सम्बंधी नीतिनिर्माण हेतु प्रचुर आधार-सामग्री उपलब्ध करायी।
- केंद्रीय मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव द्वारा वर्ष 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गई। आयोग को परामर्शदात्री संस्था का दर्जा दिया गया। आयोग को सात दायित्व निभाने थे-
  1. भारत के भौतिक, पूंजीगत तथा मानवीय संसाधनों का आंकलन करना।
  2. इन संसाधनों के प्रभावी एवं संतुलित उपयोग के लिए योजना तैयार करना।
  3. विकास की राष्ट्रीय प्राथमिकताएं निर्धारित करना, विकास की स्थितियों को परिभाषित करना तथा संसाधनों के वितरण हेतु सुझाव देना।
  4. योजना के सफल क्रियान्वयन हेतु आवश्यक शर्तों का निर्धारण करना।
  5. योजना के प्रत्येक चरण के कार्यान्वयन हेतु अपेक्षित प्रशासतंत्र सुनिश्चित करना।
  6. योजना क्रियान्वयन द्वारा हासिल प्रगति का समय-समय पर मूल्यांकन करना तथा नीतियों और मापदंडों में अपेक्षित सुधारों की सिफारिश करना।
  7. स्वयं की प्रभावी कार्यशीलता, बदलती आर्थिक परिस्थितियों, चालू समस्या आदि विषयों के सम्बंध में अपनी सिफारिशें देना।

योजना आयोग की सिफारिशों तथा तैयार नीतियों व योजनाओं पर अंतिम निर्णय राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा किया जाता है, जिसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करता है और सभी राज्यों के मुख्यमंत्री इसके सदस्य होते हैं।

नियोजन के सामाजिक-आर्थिक उद्देश्य

नियोजन के विभिन्न सामाजिक आर्थिक उद्देश्य हैं, जिन्हें विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूपों में वर्णित किया जाता रहा है। एक मोटे अनुमान के आधार पर नियोजन के उद्देश्य निम्न हैं-

- आधारभूत औद्योगिक संरचना का निर्माण।
- कृषि उत्पादन में वृद्धि एवं सुधार।
- राष्ट्रीय संपदा की वृद्धि और वितरण।
- आत्म निर्भर और स्वस्फूर्त राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना।
- गरीबी व बेरोजगारी का उन्मूल।
- सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन।
- बीमारियों और निरक्षरता की समाप्ति।
- व्यापार और वाणिज्य का विस्तार।
- आयात प्रतिस्थापन एवं निर्यातोन्मुख उत्पादन हेतु उद्यमियों को आर्थिक प्रोत्साहन।
- भारतीय अर्थव्यवस्था का आधुनिक, प्रभावशील व प्रतिस्पद्धत्मिक रूप में कायांतरण।

पहली तीन पंचवर्षीय योजनाएं

- **प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56):** प्रथम योजना में सर्वांगीण राष्ट्रीय विकास के साथ-साथ शरणार्थी पुनर्वास, खाद्य आत्मनिर्भरता, मुद्रास्फीति नियंत्रण जैसे तात्कालिक लक्ष्यों का चुनाव किया गया। इस योजना को लक्ष्यों की प्राप्ति में सफलता प्राप्त हुई।
- **द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61):** इस योजना में भारी एवं मूलभूत उद्योगों के विकास एवं विस्तार को प्राथमिकता दी गयी जो समाजवादी अर्थव्यवस्था स्थापित करने की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम था। दूसरी योजना के अनेक लक्ष्यों को पूंजी अभाव के कारण प्राप्त नहीं किया जा सका, फिर भी इसे सीमित सफलता प्राप्त हुई।
- **तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66):** तीसरी योजना में कृषि को पुनः सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए स्वस्फूर्त एवं निर्भर अर्थव्यवस्था का लक्ष्य तय किया गया। किंतु भारत-चीन युद्ध (1962) तथा भारत-पाकिस्तान युद्ध (1965) के कारण योजना की प्राथमिकताओं को रक्षा जरूरतों तक सीमित होना पड़ा। वर्ष 1965-66 में पड़े भयंकर अकाल ने पूरी तरह इस योजना को विफल बना दिया। अतः तीसरी योजना के दौरान भारतीय नियोजन प्रणाली को गंभीर संकटों व अवरोधों का सामना करना पड़ा।

इस प्रकार जवाहर लाल नेहरू के कार्यकाल में ही नियोजन व्यवस्था के सकारात्मक एवं नकारात्क पहलू पूर्णतः स्पष्ट हो

गये। जहां एक ओर उत्पादन वृद्धि औद्योगीकरण विस्तार, आधार संरचना विकास, विज्ञान एवं तकनीकी विकास, तथा शिक्षा के प्रसार आदि क्षेत्रों में नियोजन प्रणाली को सफलता प्राप्त हुई, वहीं दूसरी ओर गरीबी व बेरोजगारी उन्मूलन, आय असमानताओं में कमी, भूमिसुधारों के पूर्ण क्रियान्वयन आदि क्षेत्रों में यह असफल साबित हुई।

राज्य नियंत्रित औद्योगीकरण

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत के औद्योगीकरण क्षेत्र में आधारभूत संरचना का आभाव, तकनीकी विकास की निम्न स्थिति, विदेशी पूंजी पर निर्भरता, घरेलू बाजार की अनुपस्थिति, पूंजीगत उद्योगों का आभाव तथा पूंजी निर्माण की कमी जैसी विशेषताएं विद्यमान थीं। इस परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय नेतृत्व तथा उद्यमियों द्वारा औद्योगीकरण के विकास व विस्तार के लिए आधारभूत संरचना, घरेलू मांग तथा विशेष योग्य संसाधनों की उपलब्धता को अनिवार्य शतों के रूप में स्वीकार किया गया और इन शर्तों को राजकीय सहयोग के बिना पूरा करना असंभव समझा गया।

वर्ष1938 की 'राष्ट्रीय योजना समिति' तथा वर्ष 1944 की बंबई योजना द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को गतिशील बनाने के लिए नियोजन प्रणाली तथा राज्य नियंत्रण की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था।

लोकतांत्रिक समाजवाद के उद्देश्यों को औद्योगीकरण के माध्यम से प्राप्त करने के लिए भी उद्योगों पर सरकारी स्वामित्व कायम रखना जरूरी था। निजी क्षेत्र के अधिकाधिक लाभार्जन करने के दृष्टिकोण के कारण उससे सामाजिक कल्याण से संबंधित प्राथमिकताओं की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। धन अंकुश रखना उचित समझा गया। औद्योगीकरण पर राज्य नियंत्रण के स्वरूप को सरकार की आरंभिक औद्योगिक नीतियों में देखा जा सकता है।

वर्ष 1948 की औद्योगिक नीति

इस नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत आगामी वर्षों में राज्य द्वारा अपने नियंत्रणाधीन नवीन उत्पादक इकाइयों की स्थापना की घोषणा की गई। निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र को संयुक्त रूप से कार्य करना था। निजी क्षेत्र को देश की सामान्य औद्योगिक नीति के अंतर्गत अपनी गतिविधियां संचालित करनी थीं। ऊर्जा, शस्त्रास्त्र, रेलवे, मुद्रा उत्पादन आदि क्षेत्रों में राज्य के अधीन सार्वजनिक क्षेत्र की परिकल्पना की गई। विमान एवं पोत निर्माण, लोहा, कोयला खनिज तेल तथा संचार क्षेत्र में राज्य द्वारा आधारभूत उद्योगों की स्थापना करने का निश्चय किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र को सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में मान्यता दी गयी। इस नीति में लघु एवं कुटीर उद्योगों को राज्य द्वारा प्रोत्साहन देने का प्रस्ताव था। इन उद्योगों हेतु विशिष्ट वस्तुओं के उत्पादन को आरक्षित किया गया। पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना द्वारा क्षेत्रीय असंतुलन दूर करना भी राज्य का दायित्व माना गया। इस प्रकार वर्ष 1948 की औद्योगिक नीति द्वारा संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने का प्रयास किया गया।

वर्ष 1956 की औद्योगिक नीति

इस नीति के प्रस्ताव में उद्योगों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया–

1. पहले वर्ग में शस्त्रास्त्र उत्पादन, परमाणु ऊर्जा, भारी उपकरण, लौह इस्पात, कोयला, खनिज तेल, धातु उद्योग, भारी विद्युत् उपकरण, अन्य महत्त्व खनिज वायु परिवहन, रेलवे, वैमानिकी टेलीफोन, विद्युत उत्पादन व वितरण तथा टार एवं रेडियो उपकरण जैसे 17 उद्योगों को रखा गया। ये राज्य के पूर्ण नियंत्रण में थे।
2. दूसरे वर्ग में अन्य अलौह धातु व एल्यूमिनियम, अन्य खनिज उद्योग, लौह मिश्रधातु एवं इस्पात, प्रतिजैविक व अन्य औषधि, रसायन उद्योग, उर्वरक, संश्लिष्ट रबर, सड़क परिवहन व समुद्री परिवहन, कोयले का कार्बनीकरण तथा रासायनिक अपशिष्ट जैसे 12 उद्योगों को शामिल किया गया। इन उद्योगों में राज्य का नियंत्रण बढ़ता जा रहा था तथा राज्य इनमें नवीन उद्यमों की स्थापना करेगा। निजी क्षेत्र से इन उद्योगों के संचालन में राज्य की सहायता करने की अपेक्षा की गई।
3. शेष सभी उद्योग निजी क्षेत्र के हाथों में सौंप दिये गये। किंतु इस वर्ग के सभी उद्योगों को भी सामाजिक उद्देश्यों एवं नियंत्रक विधानों के अधीन कार्य करना था।

इस औद्योगिक नीति में स्पष्ट किया गया कि निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र आपस में पृथक या विरोधी नहीं बल्कि परस्पर पूरक है। निजी क्षेत्र की आशंका का समाधान करने के लिए राज्य द्वारा पूंजी का समर्थन, राजकोषीय उपायों तथा संचार

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

व ऊर्जा सुविधाओं के माध्यम से निजी क्षेत्र के विकास को पर्याप्त समर्थन दिया गया। नीति में राज्य के, सरकारी व निजी दोनों इकाइयों के प्रति न्यायपूर्ण एवं भेदभाव रहित व्यवहार को सुनिश्चित किया गया। इसमें लघु व कुटीर उद्योगों के प्रोत्साहन, प्रादेशिक असमानता की समाप्ति तथा श्रमिक सुविधाओं के विस्तार की सिफारिशें भी की गयी, जिन्हें पूरा करना राज्य के नियंत्रण के बगैर असंभव था।

प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन औद्योगीकरण

- **प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत औद्योगीकरण 1951-56:** प्रथम योजना में प्रत्यक्ष औद्योगीकरण प्रयासों की बजाय आधारभूत सरंचना एवं कृषि एवं सिंचाई के विकास पर जोर दिया गया ताकि आगामी समय में किये जाने वाले तीव्र औद्योगीकरण हेतु सुगम पृष्ठभूमि निर्मित की जा सके। विभिन्न उद्योगों की विकास दर प्रथम योजना काल में संतोषजनक रही। इसी काल में सिंदरी उर्वरक कारखाना, चितरंजन का रेल इंजन निर्माण कारखाना, इंटीग्रल कोच फैक्ट्री, पेनिसिलीन फैक्ट्री, भारतीय टेलीफोन उद्योग आदि की स्थापना की गई।
- **द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत औद्योगीकरण, 1956-61:** इस योजनाकाल में निर्धारित औद्योगीकरण का लक्ष्य, 1956 की औद्योगिक नीति से प्रेरित था। योजना के कुल विनियोग का 27 प्रतिशत अंश उद्योग क्षेत्र के लिए निश्चित किया गया। राज्य द्वारा राउरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर स्थित इस्पात कारखानों के अतिरिक्त विभिन्न उद्योग क्षेत्रों में अनेक उत्पादक इकाइयां स्थापित की गयीं। इस काल में छोटे उद्यमकर्ता समूह का तेजी से विस्तार हुआ, जिससे पूंजी एकाधिकार की प्रवृत्तियों में आंशिक रूप से कमी आयी।
- **तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत औद्योगीकरण, 1961-66:** इस योजनाकाल में औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ मशीन निर्माण उत्पादन, तकनीकी कौशल एवं प्रबंधकीय दक्षता में सुधार करने पर बल दिया गया। योजनाकाल के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र को केंद्रीय स्थान प्रदान किया गया। योजनाकाल के दौरान ओटोमोबाइल, डीजल इंजन, बिजली ट्रांसफार्मर, मशीनी उपकरण आदि क्षेत्रों में काफी प्रगति हुई।

प्रथम पंचवर्षीय योजना

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956) की कोशिश देश को गरीबी के मकड़जाल से निकालने की थी। योजना को तैयार करने में जुटे विशेषज्ञों में एक के.एन. राज थे। इस युवा अर्थशास्त्री की दलील थी कि अगले दो दशक तक भारत को अपनी चाल 'धीमी' रखनी चाहिए क्योंकि तेज रफ्तार विकास से अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचेगा। पहली पंचवर्षीय योजना में ज्यादा जोर कृषि-क्षेत्र पर था। इसी योजना के अंतर्गत बांध और सिंचाई के क्षेत्र में निवेश किया गया। विभाजन के कारण कृषि-क्षेत्र को गहरी मार लगी थी और इस क्षेत्र पर तुरंत ध्यान देना जरूरी था। भाखड़ा-नांगल जैसी विशाल परियोजनाओं के लिए बड़ी धनराशि आबंटित की गई। इस पंचवर्षीय योजना में माना गया था कि देश में भूमि के वितरण का जो ढर्रा मौजूद है उससे कृषि के विकास को सबसे बड़ी बाधा पहुंचती है। इस योजना में भूमि-सुधार पर जोर दिया गया और उसे देश के विकास की बुनियादी चीज माना गया।

योजनाकारों का बुनियादी लक्ष्य राष्ट्रीय आय के स्तर को ऊंचा करने का था। यह तभी संभव था जब लोगों की बचत उनके खर्चे से ज्यादा हो। वर्ष 1950 के दशक में खर्च का स्तर भी बहुत नीचे था। इसे अब और कम नहीं किया जा सकता था। योजनाकारों ने बचत को बढ़ावा देने की कोशिश की। यह काम भी कठिन था क्योंकि देश में रोजगार के काबिल जितने लोग थे उनकी तुलना में देश का मौजूदा पूंजी-भण्डार कम था। बहरहाल, नियोजन की प्रक्रिया में लोगों की बचत तीसरी पंचवर्षीय योजना तक बढ़ी। लेकिन, यह बचत उम्मीद के अनुरूप नहीं थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरुआत में इससे कहीं ज्यादा बचत की उम्मीद की गई थी। बाद के दिनों में यानी 1960 के दशक से लेकर 1970 के दशक के शुरुआती सालों तक बचत की मात्रा में लगातार कमी आई।

उद्योग (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1951

इस अधिनियम के माध्यम से सरकार को मध्यम एवं बड़े औद्योगिक उपक्रमों की स्थापना के लिए लाइसेंस जारी करने का अधिकार प्रदान किया गया। सरकार को उत्पादन की मात्र, आयात-निर्यात कोटा, मजदूरी, मूल्य एवं वेतन के निर्धारण की शक्ति भी प्राप्त हुई। सरकार के इन अधिकारों को उद्योगों के विकेंद्रीकरण तथा उपभोक्ता व श्रमिकों के हित संरक्षण की दृष्टि से औचित्यपूर्ण सिद्ध किया गया। सरकार द्वारा विदेशी व्यापार घरानों तथा बहुराष्ट्रीय निगमों की गतिविधियों को भी विभिन्न कानूनों के माध्यम से नियंत्रित करने का प्रयास किया गया।

PARAMOUNT

मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत औद्योगीकरण

इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के डेढ़ दशक में लोकतांत्रिक समाजवाद के आदशों के अनुरूप मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत औद्योगीकरण की जो प्रक्रिया आरंभ की गयी, उसमें राज्य के नियंत्रण को अनिवार्य तत्व माना गया। तत्कालीन नवीन अर्थव्यवस्था में आधारभूत क्षेत्रों को मात्र निजी एवं बाजारवादी आर्थिक शक्तियों के सहारे विकसित करना असंभव था और स्वयं निजी क्षेत्र भी इतना सामर्थवान नहीं हो पाया या जो सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्सरचना हेतु अपेक्षित संसाधनों को जुटा सकने में समर्थ हो पाता। राज्य नियंत्रण के माध्यम से ही कृषि, ऊर्जा, परिवहन तथा संचार क्षेत्र में संसाधनों का निवेश सुनिश्चित किया जा सकता था। इन आधारभूत सुविधाओं के विकास के बिना घरेलू बाजार का निर्माण तथा सामाजिक परिवर्तन का होना संभव नहीं था। इन सब कारणों से राज्य को औद्योगीकरण प्रक्रिया के नियंत्रण की बागडोर सौंपी गयी और कतिपय असफलताओं के बावजूद राज्य द्वारा अपनी भूमिका को कुशलतापूर्वक निभाया गया।

कृषिक सुधार, 1947-64

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत राजनैतिक नेतृत्व के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती देश का सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्निर्माण एवं विकास करने की थी। भारत की 80 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या की आजीविका कृषि पर निर्भर होने के कारण कृषि को आर्थिक विकास से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध पाया गया। आजादी के बाद भारत को पिछड़ी हुई कृषि व्यवस्था विरासत में प्राप्त हुई, जिसके मुख्य लक्षण इस प्रकार थे- भूस्वामित्व के विभिन्न प्रकार, कुछ गिने-चुने हाथों में भूमि का केन्द्रीकरण, बिचौलियों की प्रभावशीलता, बहुसंख्यक गरीब किसानों का अस्तित्व, ग्रामीण बेरोजगारी, न्यून कृषि, उत्पादन, तकनीकी सुविधाओं का आभाव, सामाजिक पिछड़ापन एवं भेदभाव, निम्न ग्रामीण जीवन स्तर तथा ग्रामीण क्षेत्रों में निरक्षरता, रूढ़िवाद, धर्माधता व जातिवाद का वर्चस्व आदि।

- स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण जीवन और कृषि में सुधार करना नेतृत्व की प्राथमिकता सूची में सबसे ऊपर था। तत्कालीन समय में कृषि सुधार से जुड़ी तीन विचारधाराएं मौजूद थीं-
  1. भारतीय साम्यवादी दल द्वारा भूमि के राष्ट्रीयकरण को अनिवार्य माना गया।
  2. विनोबा भावे के भूदान आंदोलन के अंतर्गत भूमि सुधारों की नैतिक दबाव के आधार पर तय करने का आहवान किया गया।
  3. वर्ष 1949 में कांग्रेस कृषि सुधार समिति के प्रतिवेदन में संघीय लोकतांत्रिक ढांचे के अधीन भूमि सुधार तथा सहकारी खेती पर बल दिया गया। पहली दो विचारधाराओं को कानूनी समर्थन के अभाव में अस्वीकार कर दिया गया तथा कांग्रेस की नीतियों के आधार पर ही कृषि सुधारों की प्रक्रिया को प्रारंभ करने का निश्चय किया गया।

वर्ष 1955 के आवड़ी अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा समाजवादी ढांचे के अंतर्गत कृषि क्षेत्र में सुधारों के निम्न उद्देश्य निश्चित किये गये-

- ग्रामीण भारत में प्रभावी अर्धसामंती सामाजिक सम्बंधों तथा आर्थिक संस्थाओं का उन्मूलन।
- वास्तविक किसानों को भूमि का वितरण।
- सरकारी सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा प्रगतिशील किसानों की क्षमता में वृद्धि।
- खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि।
- काश्तकारी अवधि की सुरक्षा सुनिश्चित करना।
- लगान का भुगतान नकदी में करना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति संसदीय लोकतंत्र के अधीन तथा सम्पति के अधिकार को बिना क्षति पहुंचाये, की जानी थी। भारतीय संसद द्वारा भी शीघ्र ही कांग्रेस के प्रस्तावों का अनुमोदन कर दिया गया।

प्रथम चरण, 1948-52

इस चरण सरकार द्वारा जमींदारी व्यवस्था के उन्मूलन पर अधिक बल दिया गया जिससे बिचौलियों को समाप्त करके कृषकों के साथ सीधा सम्पर्क कायम किया जा सके। काश्तकार की वैधानिक परिभाषा में लघु किसानों के साथ-साथ बड़े-बड़े भूस्वामियों को भी शामिल किया गया। कृषि श्रम जांच रिपोर्ट (1951) के अनुसार ''कुल कृषक परिवारों में 20 प्रतिशत लोग भूमिहीन थे। 2.5 एकड़ से कम भूमि प्राप्त किसानों का प्रतिशत 38 था और कुल खेती योग्य भूमि के मात्र 6 प्रतिशत पर ही उनका अधिकार था।। 59 प्रतिशत कृषक परिवारों के पास 5 एकड़ से अधिक भूमि थी जो कुल खेती योग्य भूमि का 16 प्रतिशत थी।''

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS

आजादी के समय व्यक्तिगत स्वामित्व की 57 प्रतिशत कृषि भूमि पर जमीदारों का प्रभुत्व था। सरकार द्वारा जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कदम उठाये जाने पर निम्न कठिनाइयां उपस्थित हुई-

- कृषि राज्य सूची का विषय था। अत: इस दिशा में किया गया कोई भी सुधार संपूर्ण भारत में एक साथ लागू करना अत्यंत दुष्कर था। विभिन्न राज्यों की भू-सुधार नीतियों में विभिन्नता थी।
- खेतिहर व सीमांत कृषकों को राज्य के प्रत्यक्ष सम्पर्क में लाना एक विकट समस्या थी।
- अधिग्रहीत की गई भूमि के बदले मुआवजा देना भी एक समस्या थी। जमींदार मुआवजे के प्रश्न को मौलिक अधिकार के उल्लंघन के आधार पर न्यायालय से असंवैधानिक घोषित करा लेते थे। अनुच्छेद 31 में संशोधन करके ही भूमि सुधारों को लागू किया जा सका। जमींदारी व्यवस्था के उन्मूलन के बाद भी जमीदारों को 'भू-कृषक' का दर्जा प्रदान किया गया तथा उन्हें निजी खेती के लिए भूमि के पुनग्रहण की सुविधा भी दी गई।

काश्तकारों को भूमि जोतने का स्थायी अधिकार दे दिया गया किंतु वे जमीन का विक्रय नहीं कर सकते थे। एक वर्ष के लगान का दस गुना अदा करने वाले काश्तकार ही भूमि को बेच सकते थे। इस प्रकार अधिकांश किसान भूमिधर और सिरदार के रूप में बदल गये, जो सरकार को सीधे लगान देते थे। किंतु जमीदारों पर अभी भी खुदकाश्त के रूप में काफी भूमि बची रह गयी थी और सरकार से प्राप्त मुआवजे को लाभकारी व्यवसायों में नियोजित करके उन्होंने अपनी प्रभावपूर्ण सामाजिक व आर्थिक स्थिति को पूर्णत: समाप्त नहीं होने दिया था।

द्वितीय चरण, 1951-64

इस चरण में कृषिक सुधारों के अंतर्गत अनेक वैधानिक कदम उठाये गये। काश्तकारी अवधि की सुरक्षा, लगान दर के निर्धारण, तथा काश्तकारों को भूमि खरीद कर स्वामी बनने का अवसर देने के उद्देश्य से कई कानून बनाये गये। कृषि भूमि की सीमा तथा भूमिहीनों को कृषि भूमि के वितरण के संबंध में भी कई कानून बनाये गये। छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में योजना आयोग द्वारा एक पारिवारिक जीत का निर्धारण किया गया, जिसकी वार्षिक आमदनी 1200 रु. के बराबर हो। योजना आयोग द्वारा दिये गये सुझाव में 5 सदस्यीय परिवार के पास 3 पारिवारिक जोतों के स्वामित्व की जरूरी माना गया। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं के प्रपत्रों में भी काश्तकारों की दशा सुधारने के संबंध में निम्न प्रस्ताव मौजूद थे-

- भूमि का किराया कुल उत्पादन के 1/2 से 1/4 स्तर से ज्यादा न हो।
- जिस भूमि के पुनग्रहण की संभावना न हो, उसका स्वामित्व काश्तकार को सौंपा जाये।
- दूरस्थ जमींदारी को हतोत्साहित किया जाये।
- व्यक्तिगत कृषि को प्रोत्साहन दिया जाये।

इन पंचवर्षीय योजनाओं में असमानता की समाप्ति तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आवश्यकता को स्वीकार किया गया। भूमि हदबंदी कानून वर्ष 1950 के दशक में ही लागू हो गया किंतु उसका क्रियान्वयन विभिन्न राज्यों में अलग-अलग समय पर हुआ। भूमि हदबंदी के उद्देश्य को आंशिक सफलता ही मिल सकी क्योंकि भूमिपतियों ने अपनी अधिशेष भूमि अपने रिश्तेदारों, मित्रों व अन्य लोगों के नाम कर दी थी। इस बेनामी हस्तांतरण ने भूमि हदबंदी कानूनों को एक सीमा तक अप्रभावी बना दिया।

कृषि सुधारों के अंतर्गत भारी निवेश के द्वारा भूमि की उत्पादकता' बढ़ने पर भी जोर दिया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में भूमि चकबंदी की व्यवस्थित शुरुआत की गई जिसका उद्देश्य भूमि के उपविभाजन को रोकना था। वर्ष 1957 के अंत तक 150 लाख एकड़ भूमि की चकबंदी हो चुकी थी। भूमि सुधारों के साथ ही संविधान के निर्देशक तत्वों (अनुच्छेद 40) के अधीन, ग्राम पंचायत व्यवस्था लागू की गयी, जो वयस्क और व्यापक मताधिकार पर आधारित थी। ग्रामीण पंचायतों द्वारा ग्रामीण स्तर के भूमि संसाधनों के नियंत्रण से ग्रामीण जीवन में एक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की शुरुआत हुई।

कृषिक सुधारों के अंतर्गत सरकार ने कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए भी कई प्रयास किये। वर्ष 1960 में गहन कृषि जिला कार्यक्रम को कुछ राज्यों के चयनित जिलों में लागू किया गया। इसका उद्देश्य किसानों को उर्वरक, कीटनाशक दवाइयां, अच्छे बीज तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराना था। इन सुविधाओं के साथ-साथ सिंचाई की उचित व्यवस्था पर भी बल दिया गया।

किंतु इन सुविधाओं का सर्वाधिक लाभ अमीर कृषकों द्वारा उठाया गया। यद्यपि इससे सरकार को उत्पादन में वृद्धि हासिल करने में सफलता प्राप्त हुई किंतु कृषि क्षेत्र में संरचनात्मक

परिवर्तन तथा सामाजिक-आर्थिक समानता लाने के प्रयासों को कई अवरोधों का सामना करना पड़ा।

निष्कर्ष रूप में वर्ष 1947-64 के काल में कृषिक सुधारों को लागू करने के अभूतपूर्व प्रयास किये गये किंतु वे कृषि क्षेत्र में आमूल संरचनात्मक परिवर्तन लाने में अपर्याप्त रहे, जिसका कारण मूलत: तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक संरचना में निहित था।

औद्योगीकरण की तीव्रता

दूसरी पंचवर्षीय योजना में भारी उद्योगों के विकास पर जोर दिया गया। पी.सी. महालनोबिस के नेतृत्व में अर्थशास्त्रियों और योजनाकारों की एक टोली ने यह योजना तैयार की थी। पहली योजना का मूलमंत्र था धीरज, लेकिन दूसरी योजना की कोशिश तेज गति से संरचनात्मक बदलाव करने की थी। इसके लिए हर संभव दिशा में बदलाव की बात तय की गई थी। सरकार ने देशी उद्योगों को संरक्षण देने के लिए आयात पर भारी शुल्क लगाया। संरक्षण की इस नीति से निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को आगे बढ़ने में मदद मिली। चूंकि इस अवधि में बचत और निवेश दोनों ही बढ़ रहे थे इसलिए बिजली, रेलवे, इस्पात, मशीनरी और संचार जैसे उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में विकसित किया जा सकता था। दरअसल, औद्योगीकरण पर दिये गये इस जोर ने भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास को एक नया आयाम दिया।

बहरहाल, इसके साथ कुछ समस्याएं भी थीं। भारत प्रौद्योगिकी के लिहाज से पिछड़ा हुआ था और विश्व बाजार से प्रौद्योगिकी खरीदने में उसे अपनी बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त, उद्योगों ने कृषि की अपेक्षा निवेश को ज्यादा आकर्षित किया। ऐसे में खाद्यान्न-संकट की आशंका अलग से सता रही थी। भारत के योजनाकारों को उद्योग और कृषि के बीच संतुलन साधने में भारी कठिनाई आई। तीसरी पंचवर्षीय योजना दूसरी योजना से कुछ खास अलग नहीं थी। आलोचकों ने ध्यान दिलाया है कि इस समय से योजना की रणनीतियों में सीधे-सीधे 'शहरों' की तरफदारी होती नजर आती है। कुछ अन्य लोगों का मानना था कि कृषि की जगह उद्योग को प्राथमिकता देकर गलती की गई। कुछ ऐसे भी लोग थे जो चाहते थे कि भारी उद्योगों की जगह कृषि-आधारित उद्योगों पर जोर दिया जाए।

मुख्य विवाद

शुरुआती दौर में विकास की जो रणनीतियां अपनाई गई उन पर बड़े सवाल उठे।

1. कृषि बनाम उद्योग

कई लोगों का मानना था कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि के विकास की रणनीति का अभाव था और इस योजना के दौरान उद्योगों पर जोर देने के कारण खेती और ग्रामीण इलाकों को चोट पहुंची।

जे.सी. कुमारप्पा जैसे गांधीवादी अर्थशास्त्रियों ने एक वैकल्पिक योजना का खाका प्रस्तुत किया था जिसमें ग्रामीण औद्योगीकरण पर ज्यादा जोर था। चौधरी चरण सिंह ने भारतीय अर्थव्यवस्था के नियोजन में कृषि को केन्द्र में रखने की बात बड़े सुविचारित और दमदार ढंग से उठायी थी। उन्होंने कहा कि नियोजन से शहरी और औद्योगिक तबके समृद्ध हो रहे हैं और इसकी कीमत किसानों और ग्रामीण जनता को चुकानी पड़ रही है।

कई अन्य लोगों का सोचना था कि औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर को तेज किए बगैर गरीबी के मकड़जाल से छुटकारा नहीं मिल सकता। इन लोगों का तर्क था कि भारतीय अर्थव्यवस्था के नियोजन में खाद्यान्न के उत्पादन को बढ़ाने की रणनीति अवश्य ही अपनायी गई थी। राज्य ने भूमि-सुधार और ग्रामीण निर्धनों के बीच संसाधन के बंटवारे के लिए कानून बनाए। नियोजन में सामुदायिक विकास के कार्यक्रम तथा सिंचाई परियोजनाओं पर बड़ी रकम खर्च करने की बात मानी गई थी। नियोजन की नीतियां असफल नहीं हुई। दरअसल, इनका कार्यान्वयन ठीक नहीं हुआ क्योंकि भूमि-संपन्न तबके के पास सामाजिक और राजनीतिक ताकत ज्यादा थी। इसके अतिरिक्त, ऐसे लोगों की एक दलील यह भी थी कि यदि सरकार कृषि पर ज्यादा धनराशि खर्च करती तब भी ग्रामीण गरीबी की विकराल समस्या का समाधान न कर पाती।

- कुछ ऐसे आलोचक भी थे जो सोचते थे कि सरकार को जितना करना चाहिए था उतना उसने नहीं किया। इन आलोचकों ने ध्यान दिलाया कि जनता की शिक्षा अथवा चिकित्सा के मद में सरकार ने कुछ खास धनराशि खर्च नहीं की।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- सरकार ने केवल उन्हीं क्षेत्रों में हस्तक्षेप किया जहां निजी क्षेत्र जाने के लिए तैयार नहीं था। दरअसल, सरकार ने इस तरह से निजी क्षेत्र की मुनाफा कमाने में मदद की। इसके अतिरिक्त, मदद गरीबों की होनी चाहिए थी लेकिन राज्य के हस्तक्षेप के फलस्वरूव एक नया 'मध्यवर्ग' उठ खड़ा हुआ जो बगैर खास जिम्मेदारी के मोटी तनख्वाह सहित अन्य सुविधाओं को भोग रहा है।
- इस अवधि में गरीबी में ज्यादा कमी नहीं आई। गरीबों का प्रतिशत कुल जनसंख्या में भले कम हुआ हो लेकिन उनकी संख्या में बढ़ोतरी हुई है।

2. निजी क्षेत्र बनाम सार्वजनिक क्षेत्र

विकास के जो दो जाने-माने मॉडल थे, भारत में उनमें से किसी को नहीं अपनाया। पूंजीवादी मॉडल में विकास का काम पूर्णतया निजी क्षेत्र के भरोसे होता है। भारत ने यह रास्ता नहीं अपनाया। भारत ने विकास का समाजवादी मॉडल भी नहीं अपनाया जिसमें निजी संपत्ति को खत्म कर दिया जाता है और हर तरह के उत्पादन पर राज्य का नियंत्रण होता है। इन दोनों ही मॉडल की कुछ एक बातों को ले लिया गया और अपने देश में इन्हें मिले-जुले रूप में लागू किया गया। इसी कारण भारतीय अर्थव्यवस्था को 'मिश्रित-अर्थव्यवस्था' कहा जाता है।

- खेती-किसानी, व्यापार और उद्योगों का एक बड़ा भाग निजी क्षेत्र के हाथों में रहा। राज्य ने अपने हाथ में भारी उद्योगों को रखा और उसने आधारभूत ढांचा प्रदान किया। राज्य ने व्यापार का नियमन किया और कृषि के क्षेत्र में कुछ बड़े हस्तक्षेप किए। इस तरह के मिले-जुले मॉडल की आलोचना दक्षिणपंथी और वामपंथी, दोनों खेमों से हुई। आलोचकों का कहना था कि योजनाकारों ने निजी क्षेत्र को पर्याप्त जगह नहीं दी है और न ही निजी क्षेत्र के बढ़ावे के लिए उपाय किया गया है।
- विशाल सार्वजनिक क्षेत्र ने ताकतवर निहित स्वार्थों को खड़ा किया है और न न्यस्त हितों ने निवेश के लिए लाइसेंस तथा परमिट की प्रणाली खड़ी करके निजी पूंजी की राह में रोड़े अटकाए हैं। इसके अतिरिक्त सरकार ने ऐसी चीजों के आयात किया जिन्हें घरेलू बाजार में बनाया जा सकता हो। ऐसी चीजों के उत्पादन का बाजार एक तरह से प्रतिस्पर्धा विहीन है।

भूमि सुधार

जहां तक कृषि-क्षेत्र का सवाल है, इस अवधि में भूमि सुधार के गंभीर प्रयास हुए। इनमें सबसे महत्वपूर्ण और सफल प्रयास जमींदारी प्रथा को समाप्त करने का था। यह प्रथा अंग्रेजी शासन के जमाने से चली आ रही थी। इस साहसिक कदम को उठाने से जमीन उस वर्ग के हाथ से मुक्त हुई जिसे कृषि में कोई दिलचस्पी नहीं थी। इससे राजनीति पर दबदबा कायम रखने की जमींदारों की क्षमता भी घटी। जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों को एक साथ करने के प्रयास किए गए ताकि खेती का काम सुविधाजनक हो सके। यह प्रयास भी सफल रहा। भूमि सुधार को दो अन्य कोशिशों को थोड़ी कम सफलता मिली। हालांकि इस बात के लिए कानून बनाए गए कि कोई व्यक्ति अधिकतम कितनी भूमि अपने नाम पर रख सकता है लेकिन जिनके पास ज्यादा जमीन थी उन्होंने इस कानून का तोड़ खोज लिया। ठीक इसी तरह जो काश्तकार किसी और की जमीन बटाई पर जोत-बो रहे थे, उन्हें भी ज्यादा कानूनी सुरक्षा प्रदान की गई लेकिन इस कानून पर शायद ही कहीं अमल हुआ। कृषि की बेहतरी और खेतिहर जनता की भलाई से जुड़ी इन नीतियों को ठीक-ठीक और कारगर तरीके से अमल में ला पाना आसान नहीं था। ऐसा तभी हो सकता था जब ग्रामीण भूमिहीन जनता लामबंद हो लेकिन भू-स्वामी बहुत ताकतवर थे। इनका राजनीतिक रसूख भी था। इस वजह से भूमि सुधार के अनेक प्रस्ताव या तो कानून का रूप नहीं ले सके या कानून बनने पर महज कागज की शोभा बढ़ाते रहे। इससे पता चलता है कि आर्थिक नीति किसी समाज की वास्तविक राजनीतिक स्थिति का ही अंग होती है। इससे यह भी जाहिर होता है कि शीर्षस्थ नेताओं की भलमनसाहत के बावजूद प्रभुत्व संपन्न सामाजिक वर्ग ही हमेशा नीति के निर्माण और उसके क्रियान्वयन पर अपना कारगर नियंत्रण रखता है।

- इसकी वजह से निजी क्षेत्र के पास अपने उत्पादों की गुणवत्ता सुधारने अथवा उन्हें सस्ता करने की कोई हड़बड़ी नहीं रही। सरकार ने अपने नियंत्रण में जरूरत से ज्यादा चीजें रखी हैं। इससे भ्रष्टाचार और अकुशलता बढ़ी है।

मुख्य परिणाम

आजाद भारत के सामने तीन मुख्य चुनौतियां थीं। इनमें तीसरी चुनौती सबसे कठिन साबित हुई। नियोजित विकास की शुरुआती कोशिशों को देश के आर्थिक विकास और सभी नागरिकों की भलाई के लक्ष्य में आंशिक सफलता मिली। शुरुआती दौर में ही इस दिशा में बड़े कदम न उठा पाने की

अक्षमता एक राजनीतिक समस्या के रूप में सामने आई। असमान विकास से जिनको फायदा पहुंचा था वे जल्दी ही राजनीतिक रूप से ताकतवर हो उठे और इन के कारण सबकी भलाई को मयान में रखकर विकास की दिशा में कदम उठाना और मुश्किल हो गया।

बुनियाद

नियोजित विकास के शुरुआती दौर का मूल्यांकन करते समय हमें इस बात को ध्यान में रखना होगा कि इसी दौर में भारत के आगामी आर्थिक विकास की बुनियाद पड़ी। भारत के इतिहास की कुछ सबसे बड़ी विकास-परियोजनाएं इसी अवधि में शुरू हुई। इसमें सिंचाई और बिजली-उत्पादन के लिए शुरू की गई भाखड़ा-नांगल और हीराकुण्ड जैसी विशाल परियोजनाएं शामिल हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ भारी उद्योग जैसे इस्पात-संयंत्र, तेल-शोधक कारखाने, विनिर्माता ईकाइयां, रक्षा-उत्पादन आदि, इसी अवधि में शुरु हुए। इस दौर में परिवहन और संचार के आधारभूत ढांचे में भी काफी इजाफा हुआ। बाद के समय में कुछ विशाल परियोजनाओं की खूब आलोचना हुई। फिर भी, बाद के समय की आर्थिक संवृद्धि (जिसमें निजी क्षेत्र की आर्थिक संवृद्धि भी शामिल है) इस बुनियाद के बगैर संभव नहीं हो पाती।

हरित क्रांति

खाद्यान्न संकट की इस हालत में देश पर बाहरी दबाव पड़ने की आशंका बढ़ गई थी। भारत विदेशी खाद्य-सहायता पर निर्भर हो चला था, खासकर संयुक्त राज्य अमेरिका के। संयुक्त राज्य अमेरिका ने इसकी एवज में भारत पर अपनी आर्थिक नीतियों को बदलने के लिए जोर डाला। सरकार ने खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए कृषि की एक नई रणनीति अपनाई। जो इलाके अथवा किसान खेती के मामले में पिछड़े हुए थे, आरंभ में सरकार ने उनको ज्यादा सहायता देने की नीति अपनाई थी। इस नीति को छोड़ दिया गया। सरकार ने अब उन इलाकों पर ज्यादा संसाधन लगाने का फैसला किया जहां सिंचाई सुविधा मौजूद थी और जहां के किसान समृद्ध थे। इस नीति के पक्ष में दलील यह दी गई कि जो पहले से ही सक्षम हैं वे कम समय में उत्पादन को तेज रफ्तार से बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। सरकार ने उच्च गुणवत्ता के बीच, उर्वरक, कीटनाशक और बेहतर सिंचाई सुविधा बड़े अनुदानित मूल्य पर मुहैया कराना शुरु किया।

भूदान आंदोलन

भूदान आन्दोलन सन्त विनोबा भावे द्वारा सन् 1951 में आरम्भ किया गया स्वैच्छिक भूमि सुधार आन्दोलन था। विनोबा की कोशिश थी कि भूमि का पुनर्वितरण सिर्फ सरकारी कानूनों के जरिए नहीं हो, बल्कि एक आंदोलन के माध्यम से इसकी सफल कोशिश की जाए। 20वीं सदी के 50वें दशक में भूदान आंदोलन को सफल बनाने के लिए विनोबा ने गांधीवादी विचारों पर चलते हुए रचनात्मक कार्यों और ट्रस्टीशिप जैसे विचारों को प्रयोग में लाया। उन्होंने सर्वोदय समाज की स्थापना की। यह रचनात्मक कार्यकर्ताओं का अखिल भारतीय संघ था। इसका उद्देश्य अहिंसात्मक तरीके से देश में सामाजिक परिवर्तन लाना था।

पर बड़ी उम्मीदों के बावजूद साठ के दशक में भूदान और ग्रामदान आंदोलन का बल कमजोर पड़ गया। लोगों की राय में इसकी रचनात्मक क्षमताओं का आम तौर पर उपयोग नहीं किया जा सका। दान में मिली 45 लाख एकड़ भूमि में से 1961 तक 8.72 लाख एकड़ जमीन गरीबों व भूमिहीनों के बीच बांटी जा सकी थी। कहा जाता है कि इसकी कई वजहें रहीं। मसलन- दान में मिली भूमि का अच्छा-खासा हिस्सा खेती के लायक नहीं था। काफी भूमि मुकदमें में फंसी हुई थी, आदि-आदि। कुल मिलाकर ये बातें अब भुला दी गई हैं। हालांकि, कभी-कभार मीडिया में भूदान में मिली जमीन के बाबत खबरें आती रहती हैं। आचार्य विनोबा का भूदान आंदोलन लोगों के जेहन में रह गया है। जानकारों की राय में आजादी के बाद यह उन पहली कोशिशों में से एक था, जहां रचनात्मक आंदोलन के माध्यम से भूमि सुधार की कोशिशें की गई थी। लोगों ने बड़ी कोशिशें की हैं, इस समाज को आगे लाने की। दुख है कि वह कोशिश राजनीतिक या फिर शासकीय मकड़ाजाल में फंसकर रह जाती है।

सरकार ने इस बात की भी गारंटी दी कि उपज को एक निर्धारित मूल्य पर खरीद लिया जाएगा। यही उस परिघटना की शुरुआत भी जिसे 'हरित क्रांति' कहा जाता है।

इस प्रक्रिया में धनी किसानों और बड़े भू-स्वामियों को सबसे ज्यादा फायदा हुआ। हरित क्रांति से खेतिहर पैदावार में सामान्य किस्म का इजाफा हुआ (ज्यादातर गेहूं की पैदावार बड़ी) और देश में खाद्यान्न की उपलब्धता में बढ़ोत्तरी हुई। बहरहाल, इससे समाज के विभिन्न वर्गों और देश के अलग-अलग इलाकों के बीच ध्रुवीकरण तेज हुआ। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे इलाके कृषि के लिहाज से समृद्ध हो गए जबकि बाकी इलाके खेती के मामले में पिछड़े रहे। हरित क्रांति के दो और

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS
A SUBSIDIARY OF PARAMOUNT LEAGUE

प्रभाव हुए। पहला असर तो यह हुआ कि गरीब किसानों और भू-स्वामियों के बीच का अंतर मुखर हो उठा। इससे देश के विभिन्न हिस्सों में वामपंथी संगठनों के लिए गरीब किसानों को लामबंद करने के लिहाज से अनुकूल स्थिति पैदा हुई। दूसरे, हरित क्रांति के कारण कृषि में मंझोले दर्जे के किसानों यानी मध्यम श्रेणी के भू-स्वामित्व वाले किसानों का उभार हुआ। इन्हें बदलावों से फायदा हुआ था और देश के अनेक हिस्सों में ये प्रभावशाली बनकर उभरे।

वर्ष 1950 के बाद बदलाव

वर्ष 1960 के दशक के अंत में भारत के आर्थिक विकास प्रणाली में एक नया मोड़ आता है। नेहरु की मृत्यु के बाद कांग्रेस-प्रणाली संकट से घिरने लगी। इंदिरा गांधी जननेता बनकर उभरीं। उन्होंने फैसला किया कि अर्थव्यवस्था के नियंत्रण और निर्देशन में राज्य और बड़ी भूमिका निभाएगा। वर्ष 1967 के बाद की अवधि में निजी क्षेत्र के उद्योगों पर और बाधाएं आयी। 14 निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। सरकार ने गरीबों की भलाई के लिए अनेक कार्यक्रमों की घोषणा की। इन परिवर्तनों के साथ ही साथ सरकार का विचारधारात्मक रुझान समाजवादी नीतियों की तरफ बढ़ा।

बहरहाल, सरकारी नियंत्रण वाली अर्थव्यवस्था के पक्ष में बनी सहमति ज्यादा दिनों तक कायम नहीं रही। नियोजन का काम तो जारी रहा लेकिन इसके महत्व में कमी आई।

वर्ष 1950 से वर्ष 1980 के बीच भारत की अर्थव्यवस्था सालाना 3-3.5 प्रतिशत धीमी रफ्तार से आगे बढ़ी सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ उद्यमों में भ्रष्टाचार और अकुशलता का जोर बढ़ा। नौकरशाही भी आर्थिक विकास में ज्यादा सकारात्मक भूमिका नहीं निभा रही थी। सार्वजनिक क्षेत्र अथवा नौकरशाही के प्रति शुरु-शुरु में लोगों में गहरा विश्वास था लेकिन बदले हुए माहौल में यह विश्वास टूट गया। जनता का भरोसा टूटता देख नीति-निर्माताओं ने वर्ष 1980 के दशक के बाद से अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका को कम कर दिया।

वर्ष 1991 के बाद आर्थिक सुधार

कुछ दशकों से भारतीय अर्थतंत्र में कई गंभीर रूकावटें निर्मित हो रही थी जो उसे अधिकाधिक हानि पहुंचा रही थी। साथ ही, कुछ नई समस्याएं भी पैदा हो रही थी। इन सबने कुल मिलाकर गंभीर वित्तीय और भुगतान-संतुलन का संकट पैदा कर दिया जो वर्ष 1991 में उच्चतम बिंदु पर जा पहुंचा। इससे निकलने के लिए भारत ने आर्थिक सुधारों एवं ढांचागत पुनर्गठन का रास्ता अपनाया। ये सुधार भारतीय संदर्भ में एक क्रांति ही थे। दिलचस्प बात यह है कि इन्हें नरसिंह राव की अल्पमत सरकार ने शुरू किया, और इसका निर्देशन आजाद भारत के अत्यंत महत्वपूर्ण अर्थशास्त्रियों में से एक, मनमोहन सिंह ने वित्तमंत्री के रूप में किया।

नियंत्रणों में जकड़े, अंतर्मुखी और ठहराव में फंसते भारतीय अर्थतंत्र में सुधारों की जरूरत काफी समय से थी। साठ दशक की शुरूआत में मनमोहन सिंह ने तर्क पेश किया था कि निर्यात बढ़ाने के बारे में भारत की आशंका-निराशा सही नहीं थी। उस काल के बौद्धिक वातावरण में ऐसी बात कहना साहस की बात थी। उन्होंने कम नियंत्रण और ज्यादा खुलेपन की वकालत की। जगदीश भगवती समेत कई अन्य प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों ने भी आरंभिक दिनों में सुधारों पर जोर दिया। साठ के दशक के मध्य में सुधारों की कोशिश की गई थी। लेकिन कई कारणों से यह असफल रही। इसके फलस्वरूप अर्थतंत्र पर और भी अंकुश लगते चले गए। सत्तर के दशक में कुछ सुधार लागू किए जिन्हें 'चोरी-छिपे सुधार' कहा गया। रूपए का मूल्य अवमूल्यन के जरिए नहीं बल्कि बाजार में: स्वत: ही कम होने दिया गया। अवमूल्यन करना राजनीतिक दृष्टि से अव्यावहारिक था। रूपए को घटते स्टर्लिंग से जोड़ दिया गया। इंदिरा गांधी ने खासतौर पर वर्ष 1980 में सत्ता में वापस आने के बाद उदारीकरण के कुछ कदम उठाने की कोशिश की। मुख्यत: यह काम औद्योगिक लाइसेंसिंग तथा बड़े 'इजारेदार' उद्यमों पर लगे बंधनों को कम करने के सिलसिले में किए गए। वे वर्ष 1991 के बाद के सुधारों के मुकाबले सामान्य से लगते हैं, लेकिन अस्सी के दशक के अखबारों पर नजर डालने से पता चलता है कि उन्होंने एक नया रास्ता तय करना शुरू किया। यह बात खासतौर पर आलोचकों की बातों में प्रतिबिंबित होती है। वर्ष 1984 में सत्ता मे आने के बाद राजीव गांधी ने औद्योगिक गैर-नियमन, विनिमय दरों में छूट और आयात नियंत्रणों के आंशिक रूप से हटाए जाने संबंधी कुछ कदम जल्दी-जल्दी उठाए। लेकिन बड़े पैमाने के बढ़ते आर्थिक असंतुलन का महत्वपूर्ण प्रश्न छोड़ दिया गया, हालांकि इससे सहमति प्रकट हो गई थी। इसके लिए वित्तीय एवं भुगतान-संतुलन में कमियों संबंधी स्थिरता लाने वाले कदमों की जरूरत थी। साथ ही वित्तीय एवं श्रम बाजारों तथा सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों पर

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

भी ध्यान नहीं दिया गया। राजीव गांधी द्वारा आरंभ किए गए सुधारों की ये छिटपुट कोशिशें भी तब खत्म हो गईं जब बोफोर्स और वी.पी. सिंह तथा अन्य के इस्तीफे से संबंधित संकट पैदा हो गए।

हालांकि सुधारों की जरूरत काफी समय से महसूस की जा रही थी, लेकिन कई कारणों से उन्हें लागू नहीं किया जा सका। विपरीत परिस्थितियों में पड़ने पर सरकारे ऐसे कदम उठाने से बचती रहीं जो अप्रिय हों।

भुगतान संकट

वर्ष 1991 में भुगतान का संकट चरम सीमा पर पंहुच गया। उस वक्त विचारधारात्मक तथा निहित स्वार्थो द्वारा विरोध काफी कमजोर हो चुका था। इसलिए नरसिंह राव सरकार ने पुरानी मानसिकता पर चोट करते हुए असाधारण और व्यापक सुधार आरंभ किए। इस प्रकार, चीन द्वारा रास्ता बदलने के करीब तेरह वर्षो के बाद भारत ने वर्ष 1991 में, कुछ देर से, आर्थिक सुधारों का कम शुरू किया। परिवर्तन में इस देरी का एक और कारण है। वर्ष 1978 में चीन में या तो सोवियत संघ में आठवें दशक के मध्य मे तेजी से बदलाव के विपरीत जनतांत्रिक प्रणाली में एक प्रकार की सामाजिक (जैसे नेहरूवादी) से दूसरे प्रकार की सहमति में (जैसे सुधारों संबंधी) परिवर्तन एक घटना नहीं, प्रक्रिया होती है। इसकी अपनी ही क्रियाशीलता होती है जो गैर-जनतांत्रिक या तानाशाही समाज से अलग होती है।

रूपए का अवमूल्यन

वर्ष 1991 से आरंभ सुधारों की प्रक्रिया में निम्नलिखित बातें शामिल थीं: तुरंत वित्तीय सुधार (विनिमय दर को बाजार से जोड़ देने पर आंरभ में ही रूपए का 20 फीसदी अवमूलयन हो गया); व्यापार तथा औद्योगिक नियंत्रणों का उदारीकरण जैसे आयात आसान बनाया जाना, औद्योगिक लाइसेंसिंग का काफी हद तक सरलीकरण और एम.आर.टी.पी. की समाप्ति; सार्वजनिक क्षेत्र के कदम-ब-कदम निजीकरण समेत सुधार; पूंजी बाजार और वित्तीय क्षेत्र में सुधार; विदेशी निवेश तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियो पर कई बंधनों का हटाया जाना और उनका स्वागत, खासकर विदेशी निवेश का इत्यादि। संक्षेप में ये कदम दमघोंटू आंतरिक नियंत्रणों से अर्थतंत्र को छुटकारा दिलाए जाने की कोशिश थी ताकि वह अपने हित में विश्वव्यापी भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में भाग ले सके।

आर्थिक सुधार के प्रभाव

सुधारों के आरंभिक वर्षो के नतीजे प्रशंसनीय हैं, हालांकि कई समस्याएं एवं चुनौतियां अभी भी बाकी हैं। गहरे व्यापक संकट से भारत को निकलने भी प्रक्रिया सबसे तेज में गिनी जाएगी। इसके अलावा, ढांचागत सुधार, खासकर आरंभ में उठाए गए वित्तीय कदम बहुत कम हानि के साथ उठाए गए। ऐसी आशंका थी कि इन कदमों से लंबी मंदी आएगी जिससे बड़े पैमाने पर बेकारी पैदा होगी और गरीबों की स्थिति और भी खराब होगी। यह कई दूसरे देशों की मिलती-जुलती परिस्थिति में 'ढांचागत सुधारों' के सिलसिले में हुआ था लेकिन भारत में ऐसा कुछ नहीं हुआ।

- भारत का कुल घरेलू उत्पाद की दर 1991-92 के संकट के वर्ष में गिरकर मात्र 0.8 फीसदी रह गई थी। लेकिन यह जल्द ही बढ़कर 1992-93 में 5.3 फीसदी हो गई, और 1993-94 में 1992-93 के आयोध्या संकट के बावजूद 6.2 फीसदी हो गई। इससे भी अधिक महत्व की बात यह कि अगले तीन वर्षो में भारतीय अर्थतंत्र की विकास दर 7.5 फीसदी के असाधारण आंकड़े तक पहुंच गई। यह पहली बार पूर्वी एशिया के अत्यंत सफल अर्थतंत्रों का विकास दर के इतने करीब थी संकट और आवश्यक ढांचागत सुधारों के बावजूद आठवीं योजना (1992-97) में विकास दर का औसत लगभग 7 फीसदी (6.94) रहा। यह सातवीं योजना (1985-90) के 6 फीसदी से उच्चतर और अधिक स्थायी थी। 1991 तथा 1997 के बीच कुल घरेलू बचत 23 फीसदी थी, जो सातवीं योजना के 20.6 फीसदी औसत से अधिक थी। 1992 तथा 1997 के बीच कुल घरेलू पूंजी निर्माण (निवेश) और कुल घरेलू स्थिर पूंजी निर्माण भी 25.2 फीसदी और 22.3 फीसदी का सम्मानजनक औसत बनाए रखा, जो सातवीं योजना के क्रमश: 21.8 तथा 19.8 फीसदी से अधिक था।
- वर्ष 1991-92 मे औद्योगिक उत्पादन विकास दर बहुत ही कम, एक फीसदी से भी कम थी। उत्पादन क्षेत्र में यह नकारात्मक थी। 1992-93 में यह बढ़कर 2.3 फीसदी, और 1993-94 में 6 फीसदी और फिर 1993-94 मे अभूतपूर्व 12.8 फीसदी हो गई। कई वर्षो से मूल वस्तुओं का क्षेत्र नकारात्मक विकास दर दर्शा रहा था। यह दर

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission

बढ़कर 1994-95 में 25 फीसदी हो गई। इससे यह आंशका निर्मूल साबित हो गई कि उदारीकरण घरेलू मूल वस्तु उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। छोटे पैमाने का उत्पादन कुल औद्योगिक उत्पादन से अधिक तेज रहा। इससे पता चला कि एम.आर.टी.पी. की समाप्ति से इस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के बजाए इसके विकास को मदद ही मिली। कृषि में भी 1991-92 की गिरावट के बाद अगले वर्ष विकास हुआ। 1996-97 तक आमतौर पर विकास दर 3 फीसदी बनी रही।

- केंद्रीय सरकार का वित्तीय घाटा 1990-91 में कुल राष्ट्रीय उत्पाद के 8.3 फीसदी तक पहुंच चुका था। यह 1992 तथा 1997 में बंटकर लगभग 6 फीसदी पर आ गया। महत्व की बात यह है कि 1996-97 में 5.2 फीसदी के कुल वित्तीय घाटे में से 4.7 फीसदी सूद भुगतान पर खर्च हो रहा था। यह वित्तीय ढिलाई का एक नतीजा था। प्राथमिक घाटा अर्थात् सूद भुगतान घाटा वित्तीय घाटा यानी चालू वित्तीय दबाव या अतिखर्चा होता है। यह 1996-97 में सिफ 0.6 फिसदी था; जबकि 1990-91 में यह सकल घरेलू उत्पाद का 4.3 फीसदी हो गया, और 1993-94 में 2.9 फीसदी।
- देश के अर्थतंत्र के विदेशी क्षेत्र में भी काफी सुधार दिखाई दिया। निर्यात के मामले में 1991-92 में डॉलर के हिसाब से 1.5 फीसदी की गिरावट आई। लेकिन इसमें जल्द ही सुधार हुआ और 1993-96 में औसत विकास दर 20 फीसदी तक पहुच गई। महत्व की बात यह है कि भारत की आत्मनिर्भरता इस हद तक बढ़ रही थी कि आयात के काफी बड़े भाग का भुगतान अब निर्यात के जरिए किया जा रहा था। आयात के भुगतान की तुलना में निर्यात से आय का अनुपात अस्सी दशक में 60 फीसदी में बढ़कर नब्बे के दशक में 90 फीसदी हो गया। चालू खाते के भुगतान संतुलन में घाटा 1990-91 में सकल घरेलू उत्पाद के 3. 2 फीसदी तक पहुच गया था, जो हानिकारक था। इसे 1993-94 में घटाकर 0.4 फीसदी तक लाया गया, और 1995-96 में यह फिर बढ़कर 1.6 फीसदी हो गया। फिर भी 1991-92 और 1997-98 के बीच औसत घाटा मात्र 1.1 फीसदी था, जो सातवीं योजना (1985-90) और 2. 3 फीसदी से काफी कम था। जनवरी 1999 के अंत तक सोना तथा एस.डी.आर. समेत विदेशी विनिमय कोष 30.4 अरब डॉलर के सम्मानजनक स्तर तक पहुंच गया था। इस कोष के सहारे सात महीनों तक आयात किया जा सकता था जबकि जुलाई 1991 में सिर्फ दो सप्ताह के आयात के विदेशी मुद्रा उपलब्ध थी।

कर्जे का संकट भी समाप्त होने लगा। भारत का विदेशी कर्जा सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात 1991-92 में 41 फीसदी के उच्च बिंदुपर था; 1995-96 में यह गिरकर 28.7 फीसदी हो गया। कर्जा वापसी अनुपात भी 1990-91 के 35.3 फीसदी से गिरकर 1997-98 में 19.5 फीसदी हो गया। फिर भी, चीन मलेशिया और दक्षिण कोरिया के 10 फीसदी से नीचे के आंकड़ों से यह अभी काफी ज्यादा है।

आर्थिक सुधार के बाद की स्थिति

वर्ष 1996-97 में अर्थतंत्र में बढ़ता धीमापन आंशिक रूप से पूर्वी एशियाई संकट का नतीजा था। जापान में मंदी थी। दक्षिण कोरिया, इंडोनेशिया, थाइलैंड तथा अन्य देशों में विकास दरे नकारात्मक थीं। रूस और ब्राजील जैसे अन्य देशों में भी संकट की स्थिति पैदा हो गई थी। विश्व के पैमाने पर विकास धीमा पड़ गया, खासकर वर्ष 1998 में विश्व व्यापार विकास। इस संकट के कारण पूंजी के अंतर्राष्ट्रीय बहाव और निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। भारत में विदेशी निवेश तथा भारतीय निर्यात मे कमी का यह आंशिक कारण था। भारतीय निर्यात में आता धीमापन समूचे 'विकासमान देशों' से ज्यादा हैं। यह इस बात का संकेत है कि भारतीय निर्यात के रास्ते में कुछ आधारभूत ढांचागत बांधाएं है। इनमें ऊर्जा, यातायात, बंदरगाहों जैसी सुविधाएं, पुराने श्रम कानून, व्यापार पर बरकरार अंकुश, इत्यादि शामिल हैं। इन्ही कारणों से कोरिया, ताइवान, हांगकांग, इत्यादि द्वारा खाली की गई जगह भारत ने नहीं, बल्कि चीन ने पूरी की। इन देशों में श्रम की कीमत बढ़ने से अधिक श्रम वाले सामानों की कीमत बढ़ गई।

इसके अलावा, न्यूक्लियर परीक्षणों के फलस्वरूप भारत पर लगाए गए आर्थिक प्रतिबंधों ने अर्थतंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। भा.ज.पा. सरकार ने जल्दीबाजी में ये परीक्षण देश में राजनीतिक फायदा उठाने के लिए किए। राजनीतिक अस्थिरता, काफी भिन्न विश्व दृष्टि रखने वाली पार्टियों के अवसरवादी साझा सरकारों का निर्माण, राजनीतिक के समान आर्थिक मामलों में भी भा.ज.पा. का

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE

दोमुंहा चरित्र उसकी मूल संस्था द्वारा सुधारों पर रोक लगाने वाली स्वदेशी की बातें और भूमंडलीकरण का विरोध, लेकिन साथ ही भा.ज.पा. द्वारा सुधारों की बाते इन सारे कारकों ने सुधारों की प्रक्रिया धीमी कर दी।

फिर भी जनतंत्र में यह बड़े ही महत्व की बात है कि दोनों धुरियों के चरमपंथियों को छोड़ दक्षिण से वामपंथ तक की सारी पार्टियों के बीच सुधारों के जारी रहने पर एक सामान्य सहमति है। यह बहुत कुछ आजादी के वक्त नेहरूवादी कार्यक्रम संबंधी एकता की याद दिलाता है।

यह सहमति इस बात की द्योतक है कि आर्थिक सुधार और उदारीकरण का अर्थ आजादी के समय भारतीय जनता के उद्देश्यों में परिवर्तन नहीं है, जैसे तीव्र विकास, औद्योगीकरण, आत्मनिर्भरता, गरीबी हटाया जाना, इत्यादि। उदारीकरण और भूमंडलीकरण मे हिस्से विश्व पूंजी या साम्राज्यवाद या विश्व बैंक अंतर्राष्ट्रीय मुदा कोष के सामने पूर्ण समर्पण नहीं है, जैसा कि परंपरागत वामपंथ बारंबार कहता है। आजादी के समय पेश उद्देश्यों को हासिल करने की रणनीति में अंतर की जरूरत थी। इस बीच देश में राज्य के हस्तक्षेप एवं विभिन्न नियंत्रणों के अनुभव हुए, विश्व पैमाने पर समाजवादी खेमा समाप्त हो गया, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भूमंडलीकरण की नई प्रक्रिया शुरू हो गई, और विभिन्न ऐसे अर्थतंत्रों का अनुभव हुआ जो तेजी से विकसित हो रहे थे।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि नेहरूवादी रणनीति गलत थी। इसका अपना महत्व था। इसने भारतीय अर्थतंत्र को एक गहराई और व्यापकता प्रदान की, इसकी शक्ति और स्वतंत्रता बढ़ाई, भारतीय अर्थतंत्र को एक गहराई और व्यापकता प्रदान की, इसकी शक्ति और स्वतंत्रता बढ़ाई, भारतीय अर्थतंत्र और समाज को औपनिवेशिक अनुभव के बाद वह सम्मान प्रदान किया जो पहले नहीं था। लेकिन समय के साथ कुछ नकारात्मक पहलू विकसित हुए। इस कारण तथा विश्व परिस्थितियों में परिवर्तनों के कारण उन्हीं उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रणनीति में परिवर्तन करने पड़े। यदि पचास के दशक में आयात के बदले उत्पादन की जरूरत थी तो आज पूंजी एवं टेक्नोलॉजी के प्रसार तथा उसके सहारे क्षमता उत्पादन स्तर बढ़ाने के तरीके आत्मनिर्भरता एवं तेज विकास के रास्ते हैं।

पुरानी रणनीति के निर्माताओं एवं समर्थकों में से कईयों ने बदली स्थिति में सुधारों की जरूरत महसूस की। उदाहरण के लिए, स्वयं इंदिरा गांधी के अलावा, नेहरू युग के मूलगामी अर्थशास्त्री के.एन.राज, मार्क्सवादी अर्थशास्त्री लॉर्ड मेघनाद देसाई, नेहरूवादी नरसिंह राव, वामपंथी अर्थशास्त्री स्व. सुखमय चक्रवार्ती, सी.एच. हनुमंथ राव, अर्जुन, सेनगुप्त, नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन, और आजादी के बाद सबसे लंबी अवधि के मुख्यमंत्री एवं प्रसिद्ध कम्युनिस्ट ज्योति बसु इत्यादि ने उदारीकरण, आर्थिक सुधारों एवं भूमंडलीकरण में भाग लेने की हिमायत की, हालांकि उनके रूख के कारण तथा हिस्से की सीमाएं अलग अलग थी। यहां तक कि रा.स्व. संघ समर्थित स्वदेशी जागरण मंच जो तगड़े विरोध के वाबजूद भा.ज.पा की सुधारों के प्रति समर्पित है।

दूसरे शब्दों में, बदलते विश्व एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारत द्वारा राजनीति बदलने के प्रश्न पर अधिकाधिक जागरूकता पैदा होती जा रही हैं, ताकि यह महान देश अपनी पहचान बना सके और अपनी विशाल आर्थिक क्षमता बर्बाद करने के बजाए आजादी के बाद की उपलब्धियां आगे बढ़ा सके। इसी से हमें प्रेरणा मिलती है कि भारत सहस्राब्दी में अपने 'भविष्य से मुलाकात' कर सकेगा, और आजादी के बाद भारत की जनता और नेहरू के नेतृत्व में आरंभ की गई यात्रा मजबूत कर पाएगा।

❑❑❑

PARAMOUNT IAS
Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ADDING VALUES ESTD.

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

2. ''पंचशील'' के पाँच सिद्धांतों के आधार पर भारत ने अपनी विदेश नीति को रेखांकित किया। चर्चा करें।

(200 शब्द)

3. किस प्रकार गुट-निरपेक्ष आंदोलन अस्तित्व में आया? भारत की भूमिका पर चर्चा करें।

(200 शब्द)

4. जिन परिस्थितियों के कारण भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध हुआ, उस पर चर्चा करें। इसके क्या प्रभाव हुए?

(200 शब्द)

5. भारत-चीन के बीच युद्ध जिन कारणों से हुआ, उस पर चर्चा करें। इसके क्या प्रभाव हुए?

(200 शब्द)

6. परमाणु नीति क्या है? इसके मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

(200 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अध्याय

5

भारत में दलीय व्यवस्था

परिचय

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है। अत: भारत मे राजनीतिक विभिन्न दलों का होना स्वभाविक है। परन्तु भारत में राजनीतिक दलों का विकास उस प्रकार से नहीं हुआ जिस कारण इंग्लैंड, अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों में हुआ है। भारत में राजनीतिक दलों का जन्म किसी कुलीनतंत्र सत्तारूढ़ वर्ग को अपदस्थ करने के लिए नहीं हुआ था, अपितु उनका उद्देश्य विदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को चलाने के लिए हुआ था बल्कि इसका उद्देश्य भारतीय समाज मे उन तत्वों को भी समाप्त करना था जो सामाजिक प्रगति में रोड़ा अटकाते थे। भारत में राजनीतिक दलों के निर्माणकारी तत्वों में राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सामाजिक-आर्थिक विकास और राष्ट्रीय सुरक्षा व अखण्डता प्रमुख हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त इन तत्वों में सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक था क्योंकि राष्ट्र निर्माण के ये प्राथमिक आधार हैं। इन तत्वों के बीच समन्वय करने संबंधी कार्य राजनीतिक दल ही बेहतर ढंग से कर सकते हैं।

स्वतंत्र भारत में राजनीतिक दलों का उदय

स्वतंत्र भारत में विचाराधारा के प्रभाव के कारण भी राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ है। चूँकि भारत में अमीरों और गरीबों के बीच व्यापक आर्थिक खाई है इसलिए यहाँ मार्क्सवादी विचारधारा सम्भव हुआ हैं और राजनीतिक दलों के माध्यम से ही जनता को शोषण के विरोध में खड़ा किया जा सकता है। भारत एक विशाल देश है जहाँ क्षेत्रीय, भाषायी तथा जातीय आधार पर भी क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ।

- विगत दो दशकों के इतिहास का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट है कि दल-बदल प्रक्रिया ने भी कई नए राजनीतिक दलों को जन्म दिया है। यह स्वीकार करते हुए थोड़ी-सी भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि राजनीतिक सत्तालोलुपता ने अनेक राजनीतिक दलों को खड़ा कर दिया।
- सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी। कांग्रेस के पश्चात् मुस्लिम लीग की स्थापना सन् 1905 में हुई थी। अखिल भारतीय हिन्दू महासभा की स्थापना सन् 1916 में हुई। साम्यवादी दल की स्थापना सन् 1924 में हुई थी परन्तु द्वितीय महायुद्ध तक साम्यवादी दल को गैर-कानूनी माना गया था।
- द्वितीय महायुद्ध में जब रूस मित्र-राष्ट्रों के साथ मिल गया तब इस दल को भी विकसित होने का अवसर मिला। स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक राजनीतिक दलों की स्थापना हो गई। सन् 1952 में जब प्रथम आम चुनाव हुआ तो उस समय 14 राष्ट्रीय दल और लगभग 50 राज्य स्तर के दल थे। सन् 1957 के आम चुनावों मे निर्वाचन आयोग ने उन्हीं दलों को अखिल भारतीय राजनीतिक दल की मान्यता प्रदान की जिन्हें प्रथम निर्वाचन में कुल मतों के कम-से-कम तीन प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे।
- केवल चार दलों-कांग्रेस दल, प्रजा समाजवादी दल, साम्यवादी दल तथा जनसंघ को ही अखिल भारतीय राजनीतिक दलों की मान्यता प्राप्त हुई। सन् 1974 में स्वतंत्र पार्टी को भी अखिल भारतीय राजनीति दल की मान्यता प्राप्त हो गई। 29 अगस्त, 1947 को सात दलों ने मिल कर भारतीय लोक दल की स्थापना की।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- जनवरी, 1977 में चार राजनीतिक दलों-जनसंघ, कांग्रेस(संगठन),सोशलिस्ट पार्टी तथा भारतीय लोकदल और विद्रोही कांग्रेसियों ने मिलकर जनता पार्टी की स्थपना की। इस पार्टी की विधिवत् स्थापना 1 मई, 1977 को की गई। जनवरी, 1978 में कांग्रेस का विभाजन हुआ और इस प्रकार एक और पार्टी कांग्रेस (इ) की स्थापना हुई।
- जनू, 1979 में कांग्रेस (इ) का विभाजन हो गया और देवराज अर्स के नेतृत्व मे एक नई पार्टी का निर्माण हुआ। परन्तु शीघ्र ही सरदार स्वर्ण सिंह कांग्रेस और अर्स कांग्रेस का मेल हो गया और अर्स को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। अत: कांग्रेस अर्स कांग्रेस के नाम से जानी जाने लगी। जुलाई, 1979 में जनता पार्टी का विभाजन हो गया और लोकदल अर्थात् जनता (एस) की स्थापना हुई।

विभिन्न राष्ट्रीय पार्टियाँ

दिसम्बर, 1984 में लोकसभा चुनाव के अवसर पर चुनाव आयोग ने 7 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर के दलों के रूप में मान्यता दी। सन् 1988 में लोकदल (ब), जनता पार्टी तथा जन मोर्चा ने मिलकर जनता दल की स्थापना की। नवम्बर, 1990 में जनता दल (समाजवादी) की स्थापना हुई। मई-जून, 1991 में लोकसभा के चुनाव के अवसर पर चुनाव आयोग ने 9 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर के दलों के रूप में मान्यता दी। परन्तु फरवरी, 1992 में तीन राष्ट्रीय स्तर के दलों की मान्यता समाप्त कर दी गई। मार्च, 1996 में चुनाव आयोग ने 8 राष्ट्रीय स्तर के तथा 39 क्षेत्रीय स्तर के दलों को मान्यता देकर आरक्षित चिन्ह आबंटित किए। 25 नवम्बर, 1997 में चुनाव आयोग ने सात राजनीतिक दलों राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्रदान की। 24 मार्च, 1999 को चुनाव आयोग ने समता पार्टी को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता समाप्त कर दी। सितम्बर-अक्टूबर, 1993 में 13वीं लोक सभा के चुनावों में 6 मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दलों-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, जनता दल, बहुजन समाज पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी व मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त 48 मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय दलों ने भाग लिया। 29 दिसम्बर, 2000 को चुनाव आयोग ने 6 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर पर एवं 44 राजनीतिक दलों को राज्यस्तरीय दल के रूप में मान्यता प्रदान की। इन्हीं दलों ने 2004 के लोकसभा चुनावों मे हिस्सा लिया।

राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करने संबंधी कार्य निवार्चन आयोग द्वारा किया जाता है। निर्वाचन आयोग ने 1968 मे निवार्चन प्रतीक आदेश के अनुसार कुछ प्रावधान सुनिश्चित किए हैं। जिसके आधार पर राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान की जाती है। किसी भी दल को राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों का स्पष्ट विवरण देना होता है-

- राजनीतिक दल के रूप में मान्यता चाहने वाले संगठित व्यक्तियों के समूह को अपनी नीतियों लक्ष्य और उद्देश्य के बारे में बताना होता है।
- राजनीतिक दल के लिए अपना सिद्धांत होना चाहिए क्योंकि सिद्धांत ही राजनीतिक दल का मूलाधार है।
- दल के अध्यक्ष सहित अन्य प्रमुख सदस्यों का स्पष्ट ब्यौरा होना चाहिए।
- राजनीति दल को अपने कार्यक्रम तथा क्रियाकलाप स्पष्ट रूप से बताने होते हैं।
- राजनीतिक दल को यह प्रमाण-पत्र देना होता है कि जनता में उसका प्रभाव है और जनता उसका समर्थन करती है।

अन्य देशों के राजनीतिक दलों की तरह भारतीय दलीय व्यवस्था की अपनी विशेषताए हैं जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं:

बहुदलीय पद्धति

चीन की तरह भारत में एक-दलीय प्रणाली नहीं है और न ही इंग्लैण्ड तथा अमेरिका की तरह द्वि-दलीय प्रणाली है। हमारे यहां स्विट्जरलैंड की तरह बहुदलीय प्रणाली है। वर्ष 1980 के लोकसभा के चुनाव के अवसर पर चुनाव आयोग ने 6 राष्ट्रीय दलों और 25 क्षेत्रीय दलों को मान्यता दी। अक्टूबर, 1999 में 13वीं लोकसभा के चनुावों के अवसर पर 6 राजनीतिक दल-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, जनता दल, बहुजनसमाजवादी पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी व भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रीय स्तर पर और 48 राजनीतिक दल क्षेत्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त राजनीति दल थे। 29 दिसम्बर, 2000 को चुनाव आयोग ने 6 राजनीतिक दलों-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी एवं बहुजन समाज पार्टी को राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के रूप में एवं 44 राजनीतिक दलों को राज्य स्तरीय दलों के रूप में मान्यता प्रदान की।

एक दल की प्रधानता का युग

हमारे यहां की बहुदलीय प्रणाली पश्चिमी देशों की बहुदलीय प्रणाली, जैसे कि फ्रांस में है, से भिन्न हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारत में अनेक दल चुनाव में भाग लेते हैं; परन्तु वर्ष 1967 से पूर्व केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस की प्रधानता ही रही है। कांग्रेस को 1952, 1957, 1962 तथा 1967 में क्रमशः 354, 371, 361 तथा 283 स्थान मिले। वर्ष 1967 के चुनाव में कांग्रेस को राज्यों में इतनी अधिक सफलता न मिली जिसके फलस्वरूप कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों का निर्माण हुआ। परन्तु गैर-कांग्रेसी नेता इतने नासमझ निकले कि उन्होंने इस सुनहरी अवसर का पूरा लाभ उठाने की अपेक्षा अपनी हानि ही की। उन्होंने जनता की भलाई न करके अपने स्वार्थ की ही पूर्ति करने की कोशिश की। अतः गैर-कांग्रेसी सरकारें अधिक समय तक न चल सकीं। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने वर्ष 1971 में मध्यवर्ती चुनाव करवाए जिसमे इन्दिरा कांग्रेस को इतनी अधिक सफलता मिली कि कांग्रेस पहले से भी कहीं अधिक शक्तिशाली हो गई। लोकसभा में कांग्रेस को 352 स्थान प्राप्त हुए। 19 राज्यों में से कई राज्यों मे विधानसभाओं के लिए भी चुनाव हुए और इन सब राज्यों मे कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। शेष राज्यों में वर्ष 1972 में चुनाव हुए और गोवा, मणिपुर तथा मेघालय को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। वर्ष 1974 में उत्तर प्रदेश में चुनाव हुए और इसमें भी कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। कांग्रेस दल की प्रधानता का मुख्य कारण यह था कि स्वतंत्रता प्राप्ति में इस दल के नेताओं का अपार बलिदान था जिस कारण बूढ़े लोगों की निष्ठा इसी दल में थी। इस दल की प्रधानता इसलिए भी थी क्योंकि हरिजन व मुसलमान इसी दल में विश्वास रखते थे। कांग्रेस कुल डाले गए मतों का स्पष्ट बहुमत प्राप्त न करके भी लोकसभा में एकाधिकार जमाए रही। वर्ष 1984 में 415 स्थान पाकर भी कांग्रेस को कुल 48 प्रतिशत मत ही प्राप्त हुए। वर्ष 1980 से नवम्बर, वर्ष 1989 तक केन्द्र और राज्यों में तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश को छोड़कर कांग्रेस (इ) का प्रभुत्व बना रहा।

एल दल की प्रधानता के युग का अंत

कांग्रेस का एकाधिकार जनता पार्टी की स्थापना से समाप्त हो गया। मार्च, 1977 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को केवल 158 स्थान मिले जबकि पार्टी को 272 तथा कांग्रेस फॉर डैमोक्रेसी को 28 स्थान मिले। इस प्रकार पहली बार केन्द्र में गैर-कांग्रेसी पार्टी (जनता पार्टी) की सरकार का निर्माण हुआ। जून, 1977 में 10 राज्यों के चुनाव में सात राज्यों मे जनता पार्टी की सरकारें बनीं। ये सात राज्य थे-हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा। पंजाब मे जनता पार्टी ने अकाली दल के साथ मिलकर सरकार बनाई जबकि तमिलनाडु में अन्नामुद्रक को बहुमत मिला और पश्चिमी बंगाल में वामपंथी दलों की सरकार बनी। इस प्रकार 10 राज्यों में से किसी भी राज्य में कांग्रेस की सरकार नहीं बनी जबकि चुनाव से पूर्व 10 में से 9 राज्यों में कांग्रेस की ही सरकारें थी। परन्तु जनता पार्टी पाँच वर्ष तक शासन नहीं कर सकी जुलाई, 1979 मे जनता पार्टी के अनेक महत्वपूर्ण सदस्यों ने जनता पार्टी छोड़ दी और लोकदल का निर्माण किया। प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई को त्यागपत्र देना पड़ा और इसके पश्चात् लोकदल के नेता चौधरी चरण सिंह की सरकार बनी। लेकिन चौधरी चरण सिंह को 20 अगस्त, 1979 को त्यागपत्र देना पड़ा और उन्होंने लोकसभा को

प्रारंभिक चुनावों में कांग्रेस का प्रभुत्व

पहले तीन चुनावों में कांग्रेस का प्रभुत्व पहले आम चुनाव के नतीजों से शायद ही किसी को अचंभा हुआ हो। आशा यही थी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इस चुनाव में जीत जाएगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का लोक प्रचलित नाम कांग्रेस पार्टी था और इस पार्टी को स्वाधीनता संग्राम की विरासत हासिल थी। तब के दिनों में यही एकमात्र पार्टी थी जिसका संगठन पूरे देश में था। फिर, इस पार्टी में खुद जवाहरलाल नेहरु थे जो भारतीय राजनीति के सबसे करिश्माई और लोकप्रिय नेता थे। नेहरु ने कांग्रेस पार्टी के चुनाव अभियान की अगुआई की और पूरे देश का दौरा किया। जब चुनाव परिणाम घोषित हुए तो कांग्रेस पार्टी की भारी-भरकम जीत से बहुतों को आश्चर्य हुआ। इस पार्टी ने लोकसभा के पहले चुनाव में कुल 489 सीटों में 364 सीटें जीतीं और इस तरह वह किसी भी प्रतिद्वंद्वी से चुनावी दौड़ में बहुत आगे निकल गई। जहां तक सीटों पर जीत हासिल करने का सवाल है, पहले आम चुनाव में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी दूसरे नंबर पर रही। उसे कुल 16 सीट हासिल हुई। लोकसभा के चुनाव के साथ-साथ विधानसभा के भी चुनाव कराए गए थे। कांग्रेस पार्टी को विधानसभा के चुनावों में भी बड़ी जीत हासिल हुई। त्रावणकोर-कोचीन (आज के केरल का एक हिस्सा), मद्रास और ओडीशा को छोड़कर सभी राज्यों में कांग्रेस ने अधिकतर सीटों पर जीत दर्ज की। आखिरकार इन तीन राज्यों में भी कांग्रेस की ही सरकार बनी। इस तरह राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर पर पूरे देश में कांग्रेस पार्टी का शासन कायम हुआ। उम्मीद के मुताबिक जवाहरलाल नेहरु पहले आम चुनाव के बाद प्रधानमंत्री बने।

PARAMOUNT

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS

भंग करवा दिया। जनवरी, 1980 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस (इ) को भारी सफलता मिली। कांग्रेस (इ) को 351 स्थान मिले जबकि लोकदल को 41 और जनता पार्टी को केवल 31 स्थान मिले। 1980 से लेकर 1989 तक केन्द्र तथा अधिकांश राज्यों में कांग्रेस (इ) का प्रभुत्व रहा। परन्तु नवम्बर, 1989 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस (इ) की हार हुई और राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी। नवम्बर, 1989 और 1990 में हुए राज्यों की विधानसभाओं की चुनाव के बाद कांग्रेस की प्रधानता समाप्त हो गई। वर्ष 1991 के लोकसभा के चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ और कांग्रेस की अल्पमत सरकार बनी। वर्ष 1996 में कांग्रेस को 140, 1998 में 142 तथा 1999 में 112 स्थान प्राप्त हुए। 14वीं लोकसभा के चुनावों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को मात्र 145 स्थान प्राप्त हुए। आजकल केंद्र तथा विभिन्न राज्यों मे विभिन्न दलों की सरकारें हैं। अत: अब कांग्रेस का प्रभुत्व समाप्त हो गया है।

प्रभावशाली विरोध दल का उदय

भारतीय दल प्रणाली की विशेषता यह भी रही है कि यहाँ पर इंग्लैंड की भांति संगठित विरोधी दल का अभाव रहा है। बिना संगठित विरोधी दल के प्रजातंत्र तानाशाही से भी अधिक हानिकारक हो सकता है। परन्तु भारत में वर्ष 1969 तक संगठित विरोधी दल का अभाव रहा। वर्ष 1967 तक लोकसभा में एक भी दल ऐसा नहीं था जिसे वैधानिक दृष्टि से विरोधी दल कहा जा सके क्योंकि पहले चार चुनावों में किसी भी विरोधी दल को 50 स्थान प्राप्त नहीं हुए थे जबकि संविधान के अनुसर उसी दल को विरोधी दल का दर्जा प्राप्त हो सकता है। जिसे कम से कम 50 स्थान प्राप्त हों। वर्ष 1969 में जब कांग्रेस का विभाजन हुआ तब पुरानी कांग्रेस को सरकार विरोधी दल का दर्जा दिया गया और यह आशा की गई कि अब भारत में एक संगठित विरोधी दल की स्थापना हो जाएगी। परन्तु भारतीयों की इस उम्मीद पर भी शीघ्र ही पानी फिर गया जब वर्ष 1971 के चुनाव मे कोई भी दल संगठित विरोधी दल प्रमाणित नहीं हो सका।

- जनवरी, 1977 में कांग्रेस (संगठन), जनसंघ, भारतीय लोकदल तथा सोशलिस्ट पार्टी ने मिलकर जनता पार्टी की स्थापना की और कांग्रेस के विकल्प के रूप में लोकसभा का चुनाव लड़ा। कांग्रेस फॉर डैमोक्रेसी ने भी जनता पार्टी के साथ मिलकर जनता पार्टी के चुनाव चिन्ह पर ही चुनाव लड़ा।
- इस चुनाव में जनता पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ और कांग्रेस को केवल 153 स्थान मिले और इस प्रकार कांग्रेस की हार से संगठित विरोधी दल का उदय हुआ। जनता सरकार ने विरोधी दल के नेता को कैबिनेट स्तर के मंत्री की मान्यता दी। चुनाव के पश्चात् लोकसभा में विरोधी दल के नेता श्री यशवंतराव चह्वाण थे।
- परन्तु 1980 के लोकसभा के चुनाव में और दिसम्बर, 1984 के चुनाव मे किसी भी विपक्षी दल को इतने स्थान नहीं मिले कि वह मान्यताप्राप्त विपक्षी दल कहा जा सके। 1989 के लोकसीाा के चुनाव में कांग्रेस (इ) की हार हुई और कांग्रेस (इ) लोकसभा में मान्यता प्राप्त विरोधी दल बनी। कांग्रेस (इ) के नेता राजीव गांधी को विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता दी गई।
- वर्ष 1991 के लोकसभा के चुनाव के बाद भारतीय जनता पार्टी को विपक्षी दल के नेता के रूप में मान्यता दी गई। अप्रैल-मई, 1996 के लोकसभा चुनाव में किसी भी दल को सपष्ट बहुमत न मिलने पर राष्ट्रपति ने लोकसभा में सबसे बड़े दल भारतीय जनता पार्टी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस को मुख्य विरोधी दल के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।
- परन्तु भारतीय जनता पार्टी की सरकार द्वारा अपना त्यागपत्र दिए जाने पर संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी जिससे कांग्रेस का समर्थन प्राप्त था। इसके परिणामस्वरूप भारतीय जनता पार्टी को पुन: मुख्य विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गई।
- फरवरी-मार्च, 1998 में 12वीं लोकसभा के चुनाव के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गई और इस दल के नेता शरद पवार को विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता दी गई।
- सितम्बर-अक्टूबर, 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव के बाद भी राष्ट्रीय कांग्रेस को विरोधी दल के रूप में मान्यता प्रदान की गई।

चुनाव आयोग के पास राजनीतिक दलों का पंजीकरण

चुनाव व्यवस्था में सुधार करने के लिए दिसम्बर, 1988 में संसद में वर्ष 1951 के जन प्रतिनिधित्व कानून में संशोधन किया गया। इस संशोधन के अनुसार राजनीतिक दल बनाने के लिए

चुनाव आयोग के पास पंजीकरण करवाना अनिवार्य है। कोई गुट, समूह अथवा संस्था या संघ राजनीतिक दल नहीं बन सकता जब तक वह चुनाव आयोग के पास पंजीकृत नहीं होगा।

- पंजीकरण के लिए प्रत्येक राजनीतिक दल को चुनाव आयोग को प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है। ऐसे प्रार्थना-पत्र पर राजनीतिक दल के अध्यक्ष के हस्ताक्षर होते हैं और प्रार्थना-पत्र में दल के नाम, पदाधिकारियों के नाम, संसद तथा राज्य विधानमण्डलों में सदस्यों की संख्या आदि देनी पड़ती है।
- प्रार्थना-पत्र के साथ राजनीतिक दल के संविधान की प्रति लगाना आवश्यक है। उन्हीं दलों का पंजीकरण हो सकता है जिन्होंने अपने संविधान में स्पष्ट लिखा है कि वे देश के संविधान, समाजवाद, धर्म-निरपेक्षता तथा लोकतंत्र के प्रति आस्था रखते हैं।

प्रादेशिक दलों का होना

भारतीय दलीय प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषता प्रादेशिक दलों का होना है। इनमें मुख्य हैं: तेलंगाना राष्ट्रीय समिति, इण्डियन नेशनल लोकदल, अकाली दल, नेशनल कान्फ्रैंस, तेलुगू देशम, असम गण परिषद् झारखण्ड पार्टी, द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, मिजोरम नेशनल फ्रंट आदि। सितम्बर-अक्टूबर, 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव के अवसर पर राज्य स्तरीय दलों की संख्या 48 थी। 29 दिसम्बर, 2000 को चुनाव आयोग ने 44 राजनीतिक दलों को क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के रूप में मान्यता प्रदान की।

राजनीतिक दलों में दृढ़ सिद्धांत नहीं होना

प्राय: राजनीतिक दल एक निश्चित राजनीतिक, आर्थिक-सामाजिक विचारधारा और सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। परन्तु भारत में एक-दो दलों के अतिरिक्त सभी दलों की न तो निश्चित विचारधारा है और न ही दृढ़ सिद्धांत। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दल अपने सिद्धांतों का सत्ता मे आने पर भी पालन नहीं करते। अपने हितों के लिए राजनीतिक दल जब चाहें अपनी नीतियों और सिद्धांतों में परिवर्तन कर लेते हैं। राजनीतिक दल राजनीतिक लाभ के लिए अपने सिद्धातों का बलिदान करने में बिल्कुल संकोच नहीं करते।

जनता के साथ कम सम्पर्क

भारतीय दलीय प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि राजनीतिक दल जनता के साथ सदा सम्पर्क बनाकर नहीं रखते। भारत में कई दल तो बरसाती मेंढकों की तरह चुनाव के समय अस्तित्व में आते हैं।

दल-बदल

भारतीय दलीय प्रणाली की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेष तथा दोष 'दल-बदल' है जिसके अनेक उदाहरण हैं। 'दल-बदल' ने राज्यों की राजनीति तथा शासन में अस्थिरता ला दी है जिससे भारत में संसदीय लोकतंत्र को खतरा पैदा हो गया है। चह्वाण समिति ने दल-बदल की परिभाषा इन शब्दों में की है: ''यदि कोई व्यक्ति किसी राजनीतिक दल के सुरक्षित चुनाव चिन्ह पर संसद के किसी सदन अथवा किसी राज्य या संघ शासित क्षेत्र की विधानसभा या विधानपरिषद् का सदस्य निर्वाचित होने के बाद स्वेच्छा से उस राजनीतिक दल के प्रति अपनी निष्ठा का परित्याग करता है अथवा उस राजनीतिक दल से संबंध विच्छेद करता है और उसका यह कार्य उसके दल के किसी सामूहिक निर्णय का परिणाम नहीं है तो यह माना जा सकता है कि उसने दल-बदल किया है।''

कार्यक्रमों की अपेक्षा नेतृत्व को प्रमुखता

भारत में अनेक राजनीतिक दलों में कार्यक्रम की अपेक्षा नेतृत्व को प्रमुखता दी जाती है और अब भी दी जा रही है। पहले आम चुनाव में कांग्रेस ने पं. नेहरू के मुकाबले में बहुत कम थी और कांग्रेस के कार्यक्रम को जनता जानती नहीं थी। परन्तु वर्ष 1971 के चुनाव में श्रीमती इन्दिरा गांधी के नाम पर जन-साधारण ने मत डाले। संगठन को वरीयता देने वाली भाजपा ने भी वर्ष 2004 के चुनाव में वाजपेयी के नाम पर वोट मांगे।

अनुशासन का अभाव

अधिकांश दलों में अनुशासन का अभाव है और अनुशासन को कोई महत्व नहीं दिया जाता। दलों के सदस्य अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अनुशासन की परवाह नहीं करते। यदि किसी सदस्य को चुनाव लड़ने के लिए दल का टिकट नहीं मिलता तो वह सदस्य दल छोड़ देता है और इसके पश्चात् वह या तो अपना अलग दल बना लेता है या किसी और दल के टिकट पर चुनाव लड़ता है या स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ता है। चुनाव के मौके पर नेता इस दल से उस दल में होते रहते हैं।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission

इण्डियन नेशनल कांग्रेस

कांग्रेस की स्थापना वर्ष 1885 में भारतीयों को संवैधानिक अधिकार दिलाने को लेकर हुई थी हालांकि इसकी स्थापना के उद्देश्यों को लेकर विवाद है। स्वतंत्रता के बाद इसी पार्टी ने शासन संभाला। नेहरू के शासन तक इस पार्टी की स्थिति ठीक रही। वर्ष 1967 में पहली बार इसे पूर्ण बहुमत नहीं मिला। लेकिन वर्ष 1971 में पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध के माहौल में पार्टी को शानदार सफलता मिली। मार्च, 1977 के आम चुनाव में कांग्रेस को करारी पराजय का सामना करना पड़ा था और श्रीमती इंदिरा गांधी और उनके पुत्र संजय गांधी भी चुनाव हार गए थे। वर्ष 1980, 1984, 1991 में पार्टी को पुनः सफलता मिली।

- वर्ष 1996 के लोकसभा चुनाव में कांग्रसे पार्टी को 140 स्थान प्राप्त हुए। कांग्रेस पार्टी को इतने कम स्थान पहली बार मिले। इन चुनावों के साथ पाँच राज्य विधानसभाओं के चुनाव भी हुए है। इनमें भी कांग्रेस को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। सितम्बर-अक्टूबर, 1996 में जम्मू-कश्मीर और उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनावों में भी कांग्रेस पार्टी को कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। फरवरी, 1997 में पंजाब राज्य विधानसभा के चुनावों में कांग्रेस की करारी हार हुई।
- फरवरी-मार्च, 1998 के लोकसभा के चुनावों में कांग्रेस केवल 142 स्थान ही प्राप्त कर सकी। इसी के साथ पाँच राज्य विधानसभाओं के चुनाव में कांग्रेस की प्रतिष्ठा धूमिल हुई जिसके बाद सोनिया गांधी ने मोर्चा संभाला।
- सितम्बर-अक्टूबर, 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव के साथ-साथ पाँच राज्यों आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, सिक्किम व अरूणाचल प्रदेश में विधानसभा के लिए चुनाव हुए थे। यद्यपि इन चुनावों में राज्य विधानमण्डलों के चुनावों में कांग्रेस को काफी सफलता मिली परन्तु लोकसभा में उसे ऐतिहासिक हार का सामना करना पड़ा।
- लोकसभा चुनाव मे कांग्रेस को मात्र 112 स्थान प्राप्त हुए जो कि उसका अब तक का सबसे बुरा प्रदर्शन था। कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व समाप्त हो गया। आजकल कांग्रेस का महत्व पहले की अपेक्षा काफी कम हो गया है।

भारतीय जनता पार्टी

19 मार्च, 1980 को जनता पार्टी के केन्द्रीय संसदीय बोर्ड ने बहुमत से यह फैसला किया कि जनता पार्टी का कोई भी अधिकारी विधायक और संसद सदस्य राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की प्रतिदिन की गतिविधियों में भाग नहीं ले सकता। बोर्ड की बैठक मे श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री लाल कृष्ण आडवाणी और श्री नाना जी देशमुख ने बोर्ड के इस निर्णय का विरोध दर्ज कराया। बाद में अलग से एक वक्तव्य जारी कर इन नेताओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि भूतपूर्व जनसंघ घटक अभी पार्टी को भले ही न छोड़े पर वह अपनी संख्या बल के आधार पर पार्टी के नेतृत्व को जल्दी ही चुनौती देगा। इस वक्तव्य में जनसंघ घटक ने साफ-साफ कहा कि संसदीय बोर्ड और राष्ट्रीय कार्यकारिणी का गठन चुनाव से नहीं हुआ। वे तदर्थ हैं और इनका तथा इनके सभी पदाधिकारियों को शीघ्र चुनाव होना चाहिए। परन्तु पार्टी के अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर ने पार्टी का राष्ट्रीय अधिवेशन बुलाने की मांग को रद्द करते हुए घोषणा की कि राष्ट्रीय कार्यकारिणी को ऐसे मामलों में फैसला लेने का अन्तिम अधिकार है। 4 अप्रैल, 1980 को जनता पार्टी का एक और विभाजन प्रायः निश्चित हो गया, जब पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने संसदीय बोर्ड के प्रस्ताव का अनुमोदन कर पार्टी के विधायकों और पदाधिकारियों पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यों में भाग लेने पर रोक लगा दी। अनुमोदन प्रस्ताव के पक्ष में 17 सदस्यों ने और विरोध में 14 सदस्यों ने मत दिए। 5 अप्रैल, 1980 को भूतपूर्व जनसंघ के सदस्यों ने नई दिल्ली में दो दिन का सम्मेलन किया और एक नई पार्टी बनाने का निश्चय किया। सम्मेलन की अध्यक्षता श्रीमती विजयाराजे सिंधिया ने की। 6 अप्रैल को भूतपूर्व विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी की अध्यक्षता में भारतीय जनता पार्टी के नाम से एक राष्ट्रीय राजनीतिक दल का गठन किया गया। यद्यपि जनता पार्टी का विभाजन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के साथ जनसंघ के सम्बन्धों पर हुआ था फिर भी जनसंघ को पुनर्जीवित नहीं किया गया।

- भारतीय जनता पार्टी का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन 27 दिसम्बर, 1980 को बम्बई में हुआ। इस सम्मेलन में 55 हजार प्रतिनिधियों ने भाग लिया। 6 हजार से अधिक स्त्रियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया जो अपने आप में स्वतंत्रता के बाद किसी राजनीतिक दल के लिए एक कीर्तिमान ही है।
- भारतीय जनता पार्टी एक राष्ट्रवादी दल है। निस्सन्देह इस पार्टी में राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ के सदस्यों का प्रभुत्व है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस पार्टी का सामाजिक आधार केवल राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तक ही सीमित है। इस पार्टी को अल्पसंख्यकों का समर्थन प्राप्त नहीं है क्योंकि यह पार्टी अल्पसंख्यकों की तुष्टीकरण की नीति की विरोधी है।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FORWARD ALWAYS

- मुसलमान और ईसाइयों का समर्थन इसको बहुत कम प्राप्त है परन्तु हरिजनों और जन-जातियों और कबीलों में इस पार्टी की लोकप्रियता धीरे-धीरे बढ़ रही है। मई, 1982 में होने वाले उप-चुनाव में और 1987 के हरियाणा विधानसभा के चुनाव में इसने सुरक्षित स्थान जीत कर यह प्रमाणित कर दिया कि अनुसूचित जातियों और पिछड़े लोगों में इसका प्रभाव है।
- छत्तीसगढ़ और झारखण्ड जैसे आदिवासी राज्यों में इस पार्टी की सरकारें हैं। सरकारी कर्मचारी और शिक्षित वर्ग भारतीय जनता पार्टी के बड़े समर्थक हैं। श्रमिकों में इसका समर्थन बढ़ा है।
- वर्ष 1984 के लोकसभा के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को केवल 2 स्थान मिले और पार्टी अध्यक्ष अटल बिहारी वाजपयी भी चुनाव हार गए। मार्च, 1985 में 11 राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव में भी कोई विशेष सफलता नहीं मिली। नवम्बर, 1989 के लोकसभा के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को 88 स्थान मिले। इतने अधिक स्थान पार्टी को पहले कभी प्राप्त नहीं हुए थे। पार्टी के समर्थन पर ही राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी।
- फरवरी 1990 में हुए 8 राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव मे मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनी और राजस्थान तथा गुजरात में भारतीय जनता पार्टी ने जनता दल के साथ मिलकर सरकार बनाई।
- मई-जून, 1991 के लोकसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के नेता लालकृष्ण आडवानी को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई। जुलाई, 1993 में श्री आडवानी के विरोधी दल के नेता के पद से त्यागपत्र दिए जाने के बाद श्री अटल बिहारी वाजपेयी को लोकसभा में विपक्षी दल के नेता के रूप में मान्यता दी गई।
- वर्ष 1991 में ही उत्तर प्रदेश विधानसभा में भारतीय जनता पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ और कल्याण सिंह के नेतृत्व में पहली बार इसकी सरकार बनी। 6 दिसम्बर, 1992 को अयोध्या में कार सेवकों ने विवादास्पद बाबरी मस्जिद ढांचे को तोड़ दिया जिसके परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी की सरकार भंग करके राष्ट्रपति शासन लागू किया गया।
- 15 दिसम्बर, 1992 को केन्द्रीय सरकार ने मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा हिमाचल प्रदेश की भारतीय जनता पार्टी की सरकारों को भंग करके राष्ट्रपति शासन लागू किया। भारतीय जनता पार्टी ने लोकसभा को भंग करके चुनाव करवाने की माँग की।
- नवम्बर, 1993 को पाँच राज्यों (हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और मिजोरम) और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधानसभाओं के चुनावों के बाद राजस्थान और दिल्ली में भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनी जबकि हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में यह दल अपनी खोई हुई शासकीय शक्ति को फिर से प्राप्त करने में असफल रहा।
- नवम्बर-दिसम्बर, 1994 और फरवरी-मार्च, 1995 मे सम्पन्न 10 राज्य विधानसभाओं के चुनावों में भारतीय जनता पार्टी को अच्छी सफलता मिली। भारतीय जनता पार्टी ने गुजरात में अकेले और महाराष्ट्र में शिव सेना के साथ मिलकर सरकार बनाई। बिहार में यह दूसरे सबसे बड़े दल के रूप में उभरी।
- 1996 के लोकसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को 162 स्थान प्राप्त हुए। लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी होने के कारण इसके नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। परन्तु 28 मई, 1996 को प्रधानमंत्री वाजपेयी ने त्यागपत्र दे दिया क्योंकि उन्हें लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। जून, 1996 में भारतीय जनता पार्टी को विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गई और अटल बिहारी वाजपेयी को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई।
- फरवरी-मार्च, 1998 में 12वीं लोकसभा के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को 182 स्थान प्राप्त हुए। भारतीय जनता पार्टी ने अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 17 अन्य दलों के साथ मिलकर सरकार बनाई। सितम्बर-अक्टूबर, 1999 में हुए 13वीं लोकसभा के चुनाव भारतीय जनता पार्टी ने 24 राजनीतिक दलों के सहयोग से मिलकर बने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के एक प्रमुख घटक के रूप में लड़े।
- इन चुनावों में भारतीय जनता पार्टी ने पुनः 182 स्थान प्राप्त किए। भारतीय जनता पार्टी ने 23 अन्य राजनीतिक दलों के साथ मिलकर अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार बनाई। 2004 के लोकसभा चुनाव मे इसे मात्र 137 स्थान मिले और यह विपक्ष में है।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रीय स्तर का राजनीतिक दल है। इसकी स्थापना वर्ष 1924 में की गई। इसकी स्थापना में मानवेन्द्र नाथ राय का बड़ा योगदान था। इस दल को वर्ष 1934 में अवैध घोषित कर दिया गया और इसके नेताओं को पकड़ लिया गया। इसके बाद साम्यवादियों ने कांग्रेस में रहकर ही अपना कार्य शुरू किया। द्वितीय महायुद्ध के समय कांग्रेस और साम्यवादियों में मतभेद हो गया क्योंकि रूस द्वारा युद्ध में भाग लेने के बाद साम्यवादियों ने कांग्रेस की आलोचना शुरू कर दी और विशेषकर वर्ष 1942 के भारत छोड़ों आंदोलन का विरोध किया। सरकार का समर्थन करने पर सरकार ने इस दल से प्रतिबंध हटा दिए। स्वतंत्रता के पश्चात् इस दल ने बड़ी तेजी से प्रगति की। वर्ष 1957 मे केरल राज्य में इसे सरकार बनाने का अवसर मिला। यह भारत के किसी राज्य में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार थी। वर्ष 1959 में इस दल मे फूट पड़ गई और इसके दो गुट बन गए। वर्ष 1962 में जब भारत का चीन के साथ विवाद उठा तो एक गुट ने भारत सरकार को ठीक बताया तथा उसका समर्थन किया। परन्तु दूसरे गुट ने चीन को ठीक बताया तथा सरकार पर जोर दिया कि वह चीन के साथ शान्ति वार्ता आरंभ करे। रूसी तथा चीनी विचारधाराओं में अंतर के आधार पर यह दल दो गुटों में बँट गया था।

वर्ष 1962 में चीनी ने भारत पर आक्रमण कर दिया और भारत के सभी राजनीतिक दलों ने भारत सरकार को इस आक्रमण का मुँहतोड़ जवाब देने मे पूर्ण समर्थन दिया। साम्यवादी दल ने भी डांगे, गोबिन्दन नायर, डॉ. अहमद तथा योगेन्द्र शर्मा के प्रभाव में नेहरू सरकार को पूर्ण समर्थन देने का वचन दिया। परन्तु दूसरे गुट के वसु, सुन्दरैय्या, नम्बूदरीपाद तथा सुरजीत आदि के नेतृत्व ने चीन का विरोध करने की निन्दा की और उन्होंने साम्यवादी दल से त्यागपत्र दे दिया और एक-दूसरे के विरूद्ध प्रचार शुरू कर दिया। अप्रैल, 1964 में दल की राष्ट्रीय परिषद् की बैठक में 76 में से 32 सदस्य बाहर चले गए। 8 सितम्बर, 1964 को लोकसभा के 32 में से 11 साम्यवादी सदस्यों ने गोपालन के नेतृत्व में अपना एक अलग दल बना लिया। इस प्रकार साम्यवादी दल के वामपक्षी सदस्यों ने अपना एक अलग दल साम्यवादी दल सी.पी.एम. नाम से संगठित कर लिया और 15 सितम्बर, 1964 को उसे चुनाव आयोग ने भी मान्यता दे दी।

वर्ष 1979 मे भारतीय साम्यवादी दल के वरिष्ठ नेता और अध्यक्ष एस.ए. डांगे तथा पार्टी के महासचिव श्री राजेवश्वर राव मे मतभेद काफी बढ़ गए। लोकसभा के मध्यावधि चुनाव के पूर्व श्री डांगे ने पार्टी को आगाह किया था कि श्रीमती गांधी को समर्थन न देना गलत होगा क्योंकि श्री चरणसिंह व उनके लोकदल के मुकाबले वे न केवल अधिक शक्तिशाली, लोकप्रिय एवं प्रगतिशील नेता हैं बल्कि वही देश में एकमात्र जन-नेता हैं। पार्टी ने श्री डांगे को जब लोकसभा का चुनाव लड़ने की स्वीकृति नहीं दी तो डांगे ने पार्टी के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। श्री राजेश्वर राव के नेतृत्व मे कम्युनिस्ट पार्टी ने श्री डांगे और उनके समर्थकों के बिना अपना कार्य आगे बढ़ाने का निश्चय किया। श्री डांगे के समर्थकों ने 14 अप्रैल, 1980 को नागपुर में नेशनल कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की और इस तरह पार्टी का विभाजन हो गया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति ने उन सभी को पार्टी से निकाल दिया जिन्होंने नागपुर सम्मेलन में भाग लिया था। सी. राजेश्वर राव पार्टी के महासचिव बने। इस प्रकार वे सात बार पार्टी के महासचिव चुने गए। पार्टी के महासचिव इन्द्रजीत गुप्त के संयुक्त मोर्चा सरकार में शामिल होन जाने के बाद कामरेड ए.बी. बर्धन पार्टी के महासचिव बने।

वर्ष 1962 के पहले आम चुनाव में इस दल को लोकसभा में 489 स्थानों में से 26 स्थान प्राप्त हुए। वर्ष 1957 के दूसरे चनुाव में लोकसभा के 494 स्थानों में से इसको 27 स्थान प्राप्त हुए। वर्ष 1962 के तीसरे चुनाव में लोकसभा के 494 स्थानों में से इसको 29 स्थान प्राप्त हुए। वर्ष 1967 के चुनाव के समय इस दल का विभाजन हो चुका था जिस कारण इसको केवल 19 स्थान प्राप्त हुए। वर्ष 1971 के लोकसभा के चुनाव में इसको 543 स्थानों में से कुल 7 स्थान मिले। जनवरी, 1980 में लोकसभा के चुनाव में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को केवल 11 स्थान मिले। दिस्म्बर, 1984 के लोकसभा के चुनाव में इसे केवल 8 स्थान मिले और मार्च, 1985 में हुए 11 राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव में इसको कोई विशेष सफलता नहीं मिली। वर्ष 1989 के लोकसभा के चुनाव में पार्टी को केवल 12 सीटें मिली। मई-जून, 1991 में भारतीय साम्यवादी दल ने जनता जनता दल तथा अन्य वामपंथी दलों से मिलकर लोकसभा चुनाव लड़ा। साम्यवादी दल को केवल 13 स्थान मिले। अप्रैल-मई, 1996 का लोकसभा चुनाव पार्टी ने रामो-वामो के साथ मिलकर लड़ा और पार्टी को 12 स्थान प्राप्त हुए। यह पार्टी संयुक्त मोर्चे

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

के सहयोगी दल के रूप में पहली बार मंत्रिमण्डल में शामिल हुई। फरवरी-मार्च, 1998 में 12वीं लोकसभा चुनाव में पार्टी के केवल 9 स्थान प्राप्त हुए जबकि सितम्बर-अक्टूबर, 1999 में 13वीं लोकसभा में इस पार्टी को केवल 4 स्थान ही प्राप्त हो सके। वर्ष 2004 के लोकसभा चुनाव में इसे 15 सीटें मिलीं।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी

भारतीय साम्यवादी दल में फूट पड़ जाने के कारण वर्ष 1964 में इसके दो दल बन गए- भारतीय साम्यवादी दल और भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी)। वास्तव में भारतीय साम्यवादी दल की नीतियों में मतभेद स्वतंत्रता के पश्चात् ही दिखाई देने लग गए थे। स्वतंत्रता के पश्चात् साम्यवादी दल के कुछ नेता कांग्रेस के साथ सहानुभूति रखने के पक्ष में थे क्योंकि उनका विचार था कि कांग्रेस की नीतियाँ समाजवादी सिद्धांतों पर आधारित हैं और यह पार्टी रूढ़िवादी न होकर प्रगतिशील है। परन्तु पार्टी में कुछ नेता ऐसे भी थे जिनका विचार था कि कांग्रेस पूंजीपतियों, उद्योगपतियों तथा जमींदारों की पार्टी है। इन नेताओं के लिए पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा घोषित समाजवादी समाज की स्थापना का उद्देश्य एक दिखावे के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। अतः इन नेताओं के विचारानुसार कांग्रेस के साथ कोई सहयोग नहीं हो सकता था। पं. जवाहर लाल नेहरू ने रूसी नेताओं के साथ मित्रता स्थापित कर ली और रूसी नेता बुल्गानिन तथा ख्रुश्चेव भारत आए। इससे साम्यवादी दल के उन नेताओं की स्थिति दृढ़ हो गई जो कांग्रेस के साथ सहयोग करना चाहते थें

मार्क्सवादी विचारधाराः इसके अनुसार साम्यवादी समाज की स्थापना केवल क्रांति के द्वारा की जा सकती है। परन्तु रूसी नेताओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया और उनके विचारानुसार साम्यवादी समाज की स्थापना संवैधानिक तरीकों से भी की जा सकती है। चीनी नेताओं और उनके समर्थकों के अनुसार मार्क्सवाद मे कोई संशोधन नहीं किया जाना चाहिए और मार्क्स के विचारों का अनुसरण करके ही विश्व मे साम्यवादी समाज की स्थापना की जा सकती है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दो साम्यवादी गुट अस्तित्व में आए। भारत के साम्यवादी दल में दो गुट पहले ही विद्यमान थे। वर्ष 1962 मे जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो साम्यवादी दल ने एक प्रस्ताव पास करके चीन के आक्रमण की निन्दा की। परन्तु साम्यवादी दल के कुछ नेता ऐसा प्रस्ताव पास करने के पक्ष में नहीं थे। इस प्रकार साम्यवादी दल में आंतरिक फूट बढ़ती गई। अप्रैल, 1964 में भारतीय साम्यवादी दल के 106 सदस्यों मे से 32 सदस्य अलग हो गए और उन्होंने मार्क्सवादी साम्यवादी दल की स्थापना की। आजकल इस दल का साम्यवादी दल के मुकाबले से अधिक महत्व है। श्री पी. सुन्दरैय्या, श्री ज्योतिर्मय बसु, श्री बी.टी. रणदीवे आदि इस पार्टी के नेता हैं। 24 मार्च, 2002 को कम्युनिस्ट नेता हरिकिशन सिंह सुरजीत सर्वसम्मति से लगातार चौथी बार मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव चुने गए। आजकल प्रकाश कारत महासचिव हैं।

- वर्ष 1967 के आम चुनाव में मार्क्सवादी दल को लोकसभा में 505 स्थानों में से 19 स्थान प्राप्त हुए। केरल में इस दल के नेता श्री नम्बूदरीपाद ने वर्ष 1967 में वामपंथी दलों के मिले-जूले मंत्रिमण्डल का नेतृत्व किया। यह मंत्रिमण्डल वर्ष 1969 तक चला। पश्चिम बंगाल में वर्ष 1967 में वामपंथी दलों के मिले-जूले मंत्रिमण्डल मे मार्क्सवादी दल ने भाग लिया और इसके नेता ज्योतिर्मय बसु उप-मुख्यमंत्री नियुक्त हुए। इस मंत्रिमण्डल ने मार्च 1973 तक कार्य किया और जब मुख्यमंत्री अजय मुखर्जी ने त्यागपत्र दे दिया तो बंगाल मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। वर्ष 1971 में मध्यावधि चुनाव में इस दल को लोकसभा के 518 स्थानों में से 25 स्थान प्राप्त हुए और यह पार्टी लोकसभा में दूसरे स्थान पर थी।
- मार्च, 1977 में मार्क्सवादी दल ने जनता पार्टी के साथ मिलकर चुनाव लड़ा और इसको लोकसभा के 542 स्थानों में से 22 स्थान प्राप्त हुए। जून, 1977 के विधानसभा के चुनावों के बाद दल के नेता ज्योतिर्मय बसु के नेतृत्व में पश्चिम बंगाल में वामपंथी दलों का मिला-जुला मंत्रिमण्डल बना। जनवरी, 1980 के लोकसभा के चुनाव में मार्क्सवादी पार्टी को 35 स्थान मिले। मई, 1982 मे हुए चार राज्यों के विधानसभा के चुनावों में मार्क्सवादी मोर्चा को पश्चिम बंगाल मे तीन-चौथाई से भी अधिक स्थान मिले और मार्क्सवादी पार्टी के नेता ज्योतिर्मय बसु के नेतृत्व में सरकार बनी। केरल में मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में वामपंथी लोकतांत्रिक मोर्चा को 140 में से 63 स्थान मिले।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- दिसम्बर, 1984 के लोकसभा के चुनाव में पार्टी को केवल 20 स्थान मिले। मार्च, 1985 में हुए 11 राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव में इसको कोई विशेष सफलता नहीं मिली। मई-जून 1991 के लोकसभा चुनाव और विधानसभा चुनाव में मार्क्सवादी दल को लेकसभा में 35 स्थान मिले। पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी दल का अत्यधिक प्रभाव है और 28 वर्षों से मार्क्सवादी पार्टी की सरकार है। ग्याहरवीं लोकसभा अप्रैल-मई, 1996 के चुनाव पार्टी मे रामो-वामों के साथ मिलकर लड़े। इन चुनावों में पार्टी को लोकसभा के 32 स्थान प्राप्त हुए। पश्चिम बंगाल में पार्टी के नेता ज्योतिर्मय बसु के नेतृत्व मे लगातार पांचवी बार मार्क्सवादी पार्टी की सरकार बनी। केरल विधानसभा के चुनावों में भी पार्टी को अच्छी सफलता मिली और पार्टी ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर ई.के.नयनार के नेतृत्व में अपनी सरकार बनाई। यद्यपि पार्टी ने केन्द्र में संयुक्त मोर्चा सरकार मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन पार्टी ने सरकार मे सम्मिलित होने से इंकार कर दिया।
- फरवरी-मार्च, 1998 के लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को 32 तथा सितम्बर-अक्टूबर, 1999 के लोकसभा के चुनावों में 33 स्थान प्राप्त हुए। मई 2001 में चार राज्यों-असम, केरल, तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल और एक संघीय क्षेत्र (पाण्डिचेरी) की विधानसभा के चुनावों में मार्क्सवादी पार्टी को पश्चिम बंगाल की विधानसभाओं में छठी बार सफलता प्राप्त हुई और मार्क्सवादी नेता बुद्धदेव भट्टाचार्य के नेतृत्व में वाम मोर्चा की सरकार बनी। वर्ष 2004 के लोकसभा चुनाव में इसे पुनः 35 स्थान मिले।

बहुजन समाज पार्टी

बहुजन समाज पार्टी की स्थापना 14 अप्रैल, 1984 को कांशीराम ने डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जन्मदिन के अवसर पर उत्तर प्रदेश में की। इस पार्टी की स्थापना दो दबाव समूहों बामसैफ और डी.एम्स-4 ने मिलकर की थी। बहुजन समाज पार्टी जिसे बसपा कहा जाता है, का पहला नाम डी.एस.-4 था जिसका अर्थ है- दलित, शोषित समाज, संघर्ष समिति। यह पार्टी साहू महाराज, महात्मा फुले, महात्मा रामास्वामी नयकर, डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों के विचारों में आस्था रखती है। पार्टी के संस्थापक कांशीराम के अनुसार, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, शैक्षणिक तथा सामाजिक रूप से पिछड़े, वर्ग अल्प-संख्यक, कारीगर और वे सभी दलित जिनका पूंजीपतियों ने शोषण किया है बहुजन समाज है। बहुजन समाज की पार्टी की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक नीतियों एवं कार्यक्रमों के प्रति सहमति रखने वाला कोई भी व्यक्ति पार्टी का सदस्य बन सकता है। यह पार्टी सामाजिक परिवर्तन की समर्थक है। इस पार्टी पर जाति विशेष के आधार पर संगठित होने का आक्षेप लगाया जाता है लेकिन यह पार्टी सभी कमजोर वर्गों के प्रतिनिधित्व का दावा करती है। प्रारंभ में बहुजन समाज पार्टी का प्रभाव केवल पंजाब तक ही सीमित था लेकिन धीरे-धीरे इसका प्रभाव देश के अन्य राज्यों विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा आदि राज्यों में फैल गया। वर्ष 1994 से यह दल भारतीय राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित कर रहा है। चुनाव आयोग ने 25 नवम्बर, 1997 को बहुजन समाज पार्टी को राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान की। चुनाव आयोग के निर्णय के अनुसार बहुजन समाज पार्टी राष्ट्रीय पार्टी के रूप में असम, सिक्किम और पांडिचेरी को छोड़कर सभी राज्यो और केंद्र शासित प्रदेशों में अपने चुनाव चिन्ह 'हाथी' का प्रयोग कर सकेगी।

बहुजन समाज पार्टी दबाव समूह के रूप में

बहुजन समाज पार्टी ने दलितों के दबाव समूह के रूप में भारतीय राजनीति मे पदार्पण किया था। इस पार्टी का तीव्रता से विकास हुआ और इसका प्रभाव यह है कि यह पार्टी आज राष्ट्रीय राजनीति दल के रूप मे मान्यता प्राप्त कर चुकी है। इस पार्टी की पकड़ समाज के दलित वर्ग पर है। अनुसूचित जातियों तथा अति पिछड़े वर्गों के अधिकांश मतदाता जो पहले कांग्रेस पार्टी के समर्थक थे अब इस पार्टी के समर्थक बन गए है। इसलिए इस पार्टी के विकास से कांग्रेस को धक्का लगा है, क्योंकि कांग्रेस के एक बड़े वोट बैंक पर बसपा का कब्जा हो गया हैं।

बहुजन समाज पार्टी ने वर्ष 1985 मे पहली बार पंजाब विधानसभा के सभी स्थानों के लिए चुनाव लड़ा परन्तु इसे कोई भी स्थान नहीं मिला। वर्ष 1989 के लोकसभा चुनाव में पार्टी ने पंजाब में 1 स्थान प्राप्त किया और वर्ष 1992 में पंजाब विधानसभा के चुनाव में 12 स्थान प्राप्त किए। वर्ष 1993 में उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी ने समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर समाजवादी पार्टी के नेता मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में सरकार

बनाई 3 जून, 1995 को बहुजन समाज पार्टी की नेता सुश्री मायावती भारतीय जनता पार्टी के समर्थन से उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं। मायावती के नेतृत्व वाली सरकार 16 अक्टूबर, 1995 तक चली।

मई-जून, 1996 के 10वीं लोकसभा के चुनाव में बहुजन समाज पार्टी को 3 स्थान प्राप्त हुए। बहुजन समाज पार्टी ने वर्ष 1996 का दसवीं लोकसभा का चुनाव शिरोमणी अकाली दल के साथ मिलकर लड़ा था। इन चुनावों में बहुजन समाज पार्टी को 12 स्थान प्राप्त हुए। मार्च, 1997 में इस पार्टी ने भारतीय जनता पार्टी के साथ मिलकर कु. मायावती के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में तीसरी बार सरकार बनाई। इस पार्टी ने भारतीय जनता पार्टी के साथ समझौता किया था कि दोनों पार्टियों में से प्रत्येक का नेता छः माह की अवधि के लिए मुख्यमंत्री बनेगा। समझौते के अनुसार 20 सितम्बर, 1997 को मुख्यमंत्री मायावती ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और उसके स्थान पर भारतीय जनता पार्टी के नेता कल्याण सिंह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। यद्यपि कल्याण सिंह की सरकार में बहुजन समाज पार्टी के कई सदस्यों को सम्मिलित किया गया था, तथापि बहुजन समाज पार्टी ने कल्याण सिंह की सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। इसके परिणामस्वरूप बहुजन समाज पार्टी में फूट पड़ गई और इसके 12 विधायकों ने कल्याण सिंह सरकार को समर्थन किया।

अन्ना डी.एम.के.

वर्ष 1975 के आरम्भ में डी.एम.के. पार्टी में फूट पड़ गई और अक्टूबर, 1972 में डी.एम.के. के कोषाध्यक्ष प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता श्री रामचन्द्रन ने अपना अलग दल बना लिया और उसका नाम अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम रखा। तमिलनाडु विधानसभा के डिण्डीगल क्षेत्र में हुए प्रतिष्ठाजनक मध्यावधि चुनाव (मई, 1973) में अन्ना द्रमुक को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के नेता रामचन्द्रन ने करूणानिधि मंत्रिमण्डल के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोप लगाए और इस हेतु एक ज्ञापन केन्द्रीय सरकार को दिया। मुख्यमंत्री करूणानिधि ने तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को लिखा कि केन्द्र को तमिलनाडु के विरूद्ध जांच का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि संविधान संघात्मक है। जून, 1975 में आंतरिक आपात्कालीन घोषणा के पश्चात् तमिलनाडु की डी.एम.के. की सरकार पर केन्द्रीय सरकार द्वारा आरोप लगाया जाने लगा कि तमिलनाडु सरकार केन्द्र के आदेशों का पालन ठीक प्रकार से नहीं कर रही है। अतः 31 जनवरी को डी.एम के. की सरकार को भंग कर वहाँ पर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। वर्ष 1977 के चुनावों में अन्ना द्रमुक को भारी सफलता मिली।

मार्च, 1977 के लोकसभा चुनाव में अन्ना डी.एम.के. को 19 स्थान प्राप्त हुए और जून, 1977 के विधानसभा चुनाव में 126 स्थान मिले और दल के नेता एम.जी. रामचन्द्रन मुख्यमंत्री बने। अगस्त, 1979 में जब केन्द्र में चौधरी चरण सिंह प्रधानमंत्री बने तब इस दल ने उनका समर्थन किया और मंत्रिमण्डल में भी शामिल हुआ। जनवरी, 1980 में लोकसभा चुनाव में इस दल ने जनता पार्टी के साथ गठबंधन करके चुनाव लड़ा और इसे कोई सफलता नहीं मिली, परन्तु मई, 1980 में हुए तमिलनाडु विधानसभा के चुनाव में इसने 38.9 प्रतिशत मत प्राप्त कर 129 स्थान प्राप्त किए, अतः इस पार्टी के नेतृत्व में सरकार बनी। 25 दिसम्बर, 1987 को पार्टी के नेता रामचन्द्रन का देहान्त हो गया। जनवरी, 1988 में पार्टी दो गुटों में बंट गई। एक गुट की नेता जानकी रामचन्द्रन थीं और दूसरे गुट की नेता सुश्री जयललिता दोनों गुटों का फरवरी, 1989 में विलय हो गया। वर्ष 1991 के तमिलनाडु विधानसभा चुनाव में इसको भारी सफलता मिली और सुश्री जयललिता के नेतृत्व में इसकी सरकार बनी। अप्रैल-मई, 1996 में 11वीं लोकसभा और राज्य विधानसभा के चुनाव हुए। पार्टी ने कांग्रेस (इ) के साथ गठजोड़ करके चुनाव लड़ा। इन चुनावों में अन्ना द्रमुक और कांग्रेस (इ) गठजोड़ को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। लोकसभा में भी इसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। परन्तु फरवरी-मार्च, 1998 में 12वीं लोकसभा के चुनाव में इस पार्टी को 18 स्थान प्राप्त हुए। अन्ना द्रमुक पार्टी केन्द्र में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली भाजपा की सरकार में महत्वपूर्ण घटक दल बनी। इस पार्टी ने 14 अप्रैल, 1999 को अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार से अपना समर्थन वापस ले कर राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण पैदा कर दिया था। सितम्बर-अक्टूबर 1999 में हुए 13वीं लोकसभा के चुनाव में अन्नामुद्रक को केवल 10 स्थान ही प्राप्त हो सके। मई, 2001 में तमिलनाडु विधानसभा के चुनावों में अन्नामुद्रक को शानदार सफलता प्राप्त हुई और उसने 132 स्थान प्राप्त किए। 2004 के लोकसभा चुनाव में इसे पुनः मुँह की खानी पड़ी।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission

तेलुगू देशम

तेलुगू देशम आन्ध्र प्रदेश का एक क्षेत्रीय दल है। इस दल की स्थापना वर्ष 1982 में फिल्म अभिनेता एन.टी. रामाराव ने की। तेलुगू देशम की स्थापना कांग्रेस शासन के प्रतिक्रियास्वरूप हुई। आन्ध्र प्रदेश कांग्रेस पार्टी का गढ़ रहा है। वर्ष 1953 से लेकर दिसम्बर, 1982 तक आन्ध्र प्रदेश में कांग्रेस पार्टी का शासन रहा। परन्तु कांग्रेस पार्टी की गुटबन्दी, भ्रष्टाचार और केन्द्र द्वारा आंध्र प्रदेश की उपेक्षा से वहाँ की जनता कांग्रेस के शासन से ऊब गई थी और वह कुछ नया चाहने लगी। वर्ष 1982 में तेलुगू देशम की स्थापना करके फिल्म अभिनेता से नेता बने एन.टी. रामाराव ने जनता को विश्वास दिलाया कि वह सिनेमा के पर्दे पर ही नहीं बल्कि वास्तविक जीवन में भी उनके दुखों व समस्याओं को दूर करने के लिए वचनबद्ध हैं। जनता ने नयापन लाने के लिए और एन.टी. रामाराव की बातों पर विश्वास करके जनवरी, 1983 के विधानसभा के चुनाव मे तेलुगू देशम को भारी विजय दिलाई। तेलुगू देशम ने विधानसभा के 294 स्थानों मे से 289 स्थानों पर चुनाव लड़ा और इन्हें 202 स्थान प्राप्त हुए। तेलुगू देशम ने सत्ता में आकर इतिहास बना दिया। कांग्रेस पार्टी की बुरी तरह पराजय हुई। तेलुगू देशम पार्टी के नेता एन.टी. रामाराव मुख्यमंत्री बने। केन्द्र में सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी रामाराव को बर्खास्त नहीं कर पा रही थी और इस अवसर की तलाश में थी कि कब तेलुगू देशम की सरकार को बर्खास्त किया जा सके।

अत: 16 अगस्त, 1984 को आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल रामलाल ने एन.टी. रामाराव को मुख्यमंत्री के पद से बर्खास्त कर दिया और दल बदलू भास्कर राव को मुख्यमंत्री बना दिया। भास्कर राव ने कुछ दिन पहले ही 60-70 सदस्यों को साथ लेकर तेलुगू देशक को छोड़ा था। राज्यपाल ने यह कह कर एन. टी. रामाराव के मंत्रिमण्डल को बर्खास्त किया कि अब उसका विधानसभा में बहुमत नहीं रहा है। रामाराव विधानसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए केवल तीन दिन का समय माँग रहे थे जो उन्हें नहीं दिया गया। इसके विपरीत भास्कर राव को 30 दिन में अपना बहुमत सिद्ध करने का समय दिया गया। गैर-कांग्रेस दलों ने एकजुट होकर आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल के इस कार्य की कटु निन्दा की। राष्ट्रपति को ज्ञापन दिए गए और देश भर में कांग्रेस की आलोचना की गई। 16 सितम्बर, 1984 को रामाराव आन्ध्र प्रदेश के पुन: मुख्यमंत्री बने। 22 नवम्बर, 1984 को मुख्यमंत्री रामाराव की सिफारिश पर आन्ध्र प्रदेश की विधानसभा को भंग कर दिया गया। मार्च, 1985 में विधानसभा के चुनाव में दो-तिहाई से अधिक स्थान प्राप्त किए और एन.टी. रामराव की सरकार बनी। दिसम्बर, 1984 के लोकसभा के चुनाव में तेलुगू देशम को 28 स्थान प्राप्त हुए। इस प्रकार तेलुगू देश आठवीं लोकसभा का मुख्य विपक्षी दल बन गया। यह पहला अवसर था जब किसी क्षेत्रीय दल को लोकसभा में सभी विपक्षी दलों से अधिक स्थान प्राप्त हुए। 1988 में विपक्षी दलों ने कांग्रेस (इ) को सत्ता से हटाने के लिए राष्ट्रीय मोर्चा बनाया जिसके अध्यक्ष रामाराव थे।

तेलुगू देशम के नेता एन.टी. रामाराव ने विपक्षी दलों को इकट्ठा करने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विपक्षी दलों के राष्ट्रीय मोर्चे के अध्यक्ष एन.टी. रामाराव थे। राष्ट्रीय मोर्चे को नवम्बर, 1989 के लोकसभा के चुनाव मे काफी सफलता मिली। परन्तु तेलुगू देशम को लोकसभा के चुनाव व आन्ध्र प्रदेश की विधानसभा के चुनाव मे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। मई-जून, 1991 के दसवीं लोकसभा के चुनावों में इस दल को 13 स्थान प्राप्त हुए। दिसम्बर, 1994 में आन्ध्र प्रदेश विधानसभा के चुनावों में तेलुगू देशम पार्टी को भारी सफलता मिली। तेलुगू देशम पार्टी ने 249 स्थानों में से 2009 स्थान जीते और श्री एन. टी. रामाराव को आन्ध्र प्रदेश का मुख्यमंत्री बनाया गया। परन्तु अगस्त, 1995 में तेलुगू देश पार्टी मे फूट पड़ गई आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री एन.टी. रामाराव ने पाँच मंत्रियों को पार्टी विरोधी गतिविधियों के कारण पार्टी से निष्कासित कर दिया। परन्तु निष्कासित मंत्री चन्द्रबाबू नायडू के नेतृत्व में 173 पार्टी विधायकों ने पार्टी में विद्रोह कर दिया और चन्द्रबाबू नायडू को तेलुगू देशम पार्टी का अध्यक्ष और मुख्यमंत्री पद का दावेदार घोषित किया। राजयपाल कृष्णकांत ने मुख्यमंत्री एन.टी. रामाराव को 31 अगस्त, 1995 को विधानसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने को कहा। विधानसभा में हार के डर से श्री रामाराव ने नाटकीय रूप से अपने पद से तयागपत्र दे दिया और राज्यपाल ने चन्द्रबाबू नायडू को राज्य का मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया। इसके साथ ही उन्हें सात दिनों में अपना बहुमत सिद्ध करने का आदेश जारी कर दिया।

केन्द्र और राज्यों में बहुदलीय सरकारें

भारत में मिली-जुली सरकारों के निर्माण का इतिहास भी भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ ही जुड़ा है। मिली-जुली सरकार का साधारण अर्थ है-कई दलों द्वारा मिलकर सरकार का निर्माण करना। चुनावों से पूर्व या चुनावों के बाद कई दल मिलकर

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
IF YOU CAN DREAM IT, YOU CAN ACHIEVE IT

अपना साझा कार्यक्रम तैयार करते हैं। उसके आधार पर वे मिलकर चुनाव लड़ते हैं अथवा अपनी सरकार बनाते हैं। मिली-जुली सरकार का निर्माण प्राय: उस स्थिति में किया जाता है जब प्राय: किसी एक दल को चुनावों के बाद स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हुआ हो। तब दो या दो से अधिक दल मिलकर संयुक्त का निर्माण करते हैं। ऐसी सरकार में प्राय: सभी राजनीतिक दल अपने संकीर्ण व विशेष हितों को त्याग कर एक निश्चित कार्यक्रम पर अपनी सहमति प्रकट करते हैं। ऐसी सरकार में प्राय: सभी राजनीतिक दल अपने संकीर्ण व विशेष हितों को त्याग कर एक निश्चित कार्यक्रम पर अपनी सहमति प्रकट करते हैं। इन मिली-जुली सरकारों की अपनी कुछ विशेषताएं होती हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है:

- **समझौतावादी कार्यक्रम:** मिले-जुले मन्त्रिमण्डलों की पहली विशेषता यह है कि उनका राजनीतिक कार्यक्रम समझौतावादी होता है। सरकार निर्माण के कुछ दिन बाद ही मंत्रिमण्डल के घटक दलों के शीर्षस्थ नेता मिलकर मिली-जुली सरकार के लिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रम तैयार करते हैं। इसके सम्बन्ध में वह समझौता करते हैं जिसमें कि प्रत्येक दलों की बातें व कार्यक्रमों को ध्यान में रखा जाता है। अत: मिले-जुले मन्त्रिमण्डलों की पहली प्रवृत्ति अथवा विशेषता समझौतावादी है।
- **सर्वसम्मत नेता:** मिली-जुली सरकार के निर्माण से पूर्व सभी दल मिलकर अपने नेता का चुनाव करते हैं। नेता का चुनाव प्राय: सर्वसम्मत ढंग से किया जाता है। यद्यपि मिली जुली सरकार का एक सर्वसम्मत नेता होता है तथापि घटक दलों के नेता व उनके अस्तित्व को नजरअंदाज नहीं किया जाता। इसके कारण सरकार में एकता बनी रहती है।
- **सर्वसम्मत निर्णय:** मिली-जुली सरकार में शामिल दल किसी भी राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय समस्या का हल सर्वसम्मति से करते हैं। कोई भी राजनीतिक समस्या अथवा क्षेत्रीय समस्या का हल सर्वसम्मति से करते हैं। कोई भी राजनीतिक समस्या पैदा होने पर घटक दलों की संयुक्त बैठक बुलाई जाती है जिसमें उक्त समस्या पर घटक दलों की राय जानी जाती है। प्रत्येक दल द्वारा दिए गए सुझावों को विशेष महत्व दिया जाता है ताकि कोई दल यह महसूस न करे कि उसके अस्तित्व को अनदेखा कर दिया गया है।
- **मिल-जुलकर कार्य करना:** मिली-जुली सरकार में शामिल सभी घटक दल मिल-जुलकर कार्य करते हैं। प्रत्येक दल को कोई न कोई महत्वपूर्ण विभाग अवश्य सौंपा जाता है। इस विभाग की कुशलता आदि उस दल के ऊपर निर्भर करती है। एक दल द्वारा किया गया गलत कार्य सभी दलों द्वारा किया गया गलत कार्य समझा जाएगा। इसलिए सभी दल मिल-जुलकर कार्य करते हैं।

भारत में मिली-जुली सरकारों की राजनीति

भारतीय संविधान के द्वारा भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। बिना राजनीतिक दलों के लोकतांत्रिक प्रणाली की सफलता पर संदेह प्रकट किया जाता है। भारत में फ्रांस, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, जापान, रूस आदि की भांति बहु-दलीय प्रणाली को अपनाया गया है। प्रथम संसदीय चुनाव के समय सन् 1952 में चुनाव आयोग ने 14 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के रूप में मान्यता दी। इनमें से प्रमुख दल थे- कांग्रेस, प्रजा समाजवादी दल, साम्यवादी दल थे।

वर्ष 1952 से 1964 तक नेहरू कांग्रेस का चेहरा रहे जिससे लगातार सत्ता पर कांग्रेस ही काबिज रही। चीन युद्ध में हार से कांग्रेस का जनाधार खिसका तथा जनता अन्य दलों की ओर मुड़ने लगी व कांग्रेस में भी आपसी फूट पड़ने लगी थी। परन्तु पहले शास्त्री और बाद में इंदिरा गांधी कांग्रेस का चेहरा बनीं। जिससे केन्द्रीय सत्ता में कांग्रेस अभी भी बनी रहीं। लेकिन आगे के वर्षों में कांग्रेस को अन्य राष्ट्रीय दलों व क्षेत्रीय दलों से कड़ी चुनौती मिलने लगी थी। जिसके परिणामस्वरूप आपातकाल के बाद विभिन्न दलों ने मिलकर जनता पार्टी की सरकार बनाई। श्री मोरारजी देसाई को जनता पार्टी का अध्यक्ष और चौधरी चरण सिंह को उपाध्यक्ष चुना गया। मार्च, 1977 मे लोकसभा चुनाव हुए और इन चुनावों में कांग्रेस की ऐतिहासिक हार हुई। जनता पार्टी व उसके सहयोगी दलों को 300 से भी अधिक स्थान प्राप्त हुए। केन्द्र में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गैर-कांग्रेसी सरकार की स्थापना हुई। केन्द्र में यह मिली-जुली सरकार का पहला प्रयोग था। जनता पार्टी की सरकार में कांग्रेस संगठन, भारतीय लोकदल, जनसंघ, सोशलिस्ट पार्टी, विद्रोह कांग्रेस, अकाली दल, द्रमुक, आदि दल शामिल हुए। उसके पश्चात् कांग्रेस शासित राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया और बाद में चुनाव हुए। जून, 1977 में इन राज्यों में चुनाव हुए और कई राज्यों में मिली-जुली सरकारों का गठन हुआ।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

जून, 1978 में प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई और गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह व राजनारायण के मध्य मतभेद पैदा होने से जनता पार्टी की मिली-जुली सरकार के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया। प्रधानमंत्री ने 24 जून, 1978 को राजनारायण और गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह को मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिए। 15 जुलाई, 1978 को प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने त्यागपत्र दे दिया क्योंकि जनता पार्टी के कई सहयोगी सदस्यों ने पार्टी को छोड़ दिया था। राष्ट्रपति ने विपक्ष के नेता यशवन्तराव चह्वान को सरकार बनाने का निमंत्रण दिया। परन्तु यशवन्त ने सरकार बनाने में अपनी असर्थता प्रकट की और चौधरी चरण सिंह को बाहर से समर्थन देने की घोषणा की। राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री नियुक्त किया, परन्तु आपसी मतभेद के कारण शीर्घ ही उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र देकर लोकसभा भंग करवा दी और नये चुनाव करवाए। सन् 1980 सन् 1989 तक केंद्र में कांग्रेस की सरकार रही।

- **राष्ट्रीय मोर्चा सरकार 1989:** सन् 1989 में कांग्रेस (इ) के नेताओं ने पार्टी से त्यागपत्र देकर जनमोर्चा का गठन किया जिसका उद्देश्य कांग्रेस (इ) के विरूद्ध विपक्षी दलों का एक सशक्त विकल्प तैयार करना था। चौधरी देवी लाल ने विपक्षी दलों के विलय से एक नए दल के निर्माण के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अन्त में 11 अक्टूबर, 1988 को बंगलौर में 'जनता दल' की विधिवत् घोषणा कर दी गई। इस दल की स्थापना जनमोर्चा, जनता पार्टी तथा लोकदल (ब) के विलय से हुई। इसके निर्माण से पूर्व राष्ट्रीय मोर्चा और जनमोर्चा का आपस में गठबन्धन हो गया था। राष्ट्रीय मोर्चे में भी कई दल सम्मिलित थे, जैसे कि जनता पार्टी, कांग्रेस (स), डी.एम.के. तेलुगू देशम और असम गण परिषद्। श्री एन.टी.रामाराव को राष्ट्रीय मोर्चे का संयोजक व विश्वनाथ प्रताप सिंह को राष्ट्रीय मोर्चे का अध्यक्ष चुना गया। राष्ट्रीय मोर्चा और जनता दल ने मिलकर चुनाव लड़ा। इस चुनाव में राष्ट्रीय मोर्चे के सबसे महत्वपूर्ण घटक जनता दल को 141 स्थान प्राप्त हुए। परन्तु कांग्रेस (स), तेलुगू देश तथा डी.एम.के. को कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। विश्वनाथ प्रताप सिंह को राष्ट्रीय मोर्चा संसदीय दल का नेता चुना गया और उन्होंने केंद्र में दूसरी मिली-जुली सरकार का निर्माण किया।

भारतीय जनता पार्टी और वामपंथी दलों ने राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को बाहर से समर्थन दिया। परन्तु 23 अक्तूबर, 1990 को भारतीय जनता पार्टी द्वारा अपना समर्थन वापस लेने व जनता दल में विभाजन के कारण राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार को लोकसभा में विश्वास मत प्रदान नहीं हो सका और 7 नवम्बर, 1990 को प्रधानमंत्री वी.पी.सिंह ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। मई-जून, 1991 को लोकसभा के मध्यावधि चुनावों में यद्यपि किसी दल को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु कांग्रेस को लोकसभा में सबसे अधिक स्थान प्राप्त हुए और कांग्रेस ने अपनी अल्पमत सरकार बनाई और 1996 तक कांग्रेस सत्ता में रही।

- **संयुक्त मोर्चा सरकार 1996:** मार्च, 1996 मे चुनाव आयोग ने 11वीं लोकसभा के चुनाव के अवसर पर 8 राष्ट्रीय राजनीतिक दलों- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, भारतीय साम्यवादी दल, भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी), जनता दल, समता पार्टी, अखिल भारतीय इन्दिरा कांग्रेस (तिवारी) और जनता पार्टी को राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान की। इसके साथ ही चुनाव आयोग ने राज्य स्तरीय क्षेत्रीय दलों को भी मान्यता प्रदान की। इसके साथ ही चुनाव आयोग ने राज्य स्तरीय क्षेत्रीय दलों को भी मान्यता प्रदान की। अप्रैल-मई, 1996 के चुनावों में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। जिसके कारण मिली-जुली सरकार बनाने की संभावनाएं बहुत बढ़ गईं। इन चुनावों में भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभरी और उसे 161 स्थान प्राप्त हुए। दूसरे नम्बर पर कांग्रेस रही जिसको 140 स्थान प्राप्त हुए। कांग्रेस को इतने कम स्थान पहले कभी भी किसी भी लोकसभा चुनाव में प्राप्त नहीं था। जनता दल को 45 मार्क्सवादी पार्टी को 32, भारतीय साम्यवादी दल को 12, समता पार्टी को 8, कांग्रेस (ति.) को 4 और जनता पार्टी को कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इन चुनावों में क्षेत्रीय दलों को भारी सफलता प्राप्त हुई जिसमें डी.एम.के. को 17, तमिल मनीला कांग्रेस को 20, तेलुगू देश पार्टी को 16, समाजवादी पार्टी को 16, अकाली दल को 8 शिवसेना को 15, असम गण परिषद को 5, हरियाणा विकास पार्टी को 3, मध्य प्रदेश विकास कांग्रेस को 2 और बहुजन समाज पार्टी को 11 स्थान प्राप्त हुए जिसके कारण सरकार के निर्माण में क्षेत्रीय दलों की भूमिका बढ़ गई।

राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने 16 मई, 1996 को लोकसभा मे सबसे बड़े दल भारतीय जनता पार्टी को सरकार बनाने के लिए अमंत्रित किया। 16 मई, 1996 को भारतीय जनता पार्टी ने अपने सहयोगी दलों समता पार्टी, अकाली दल, शिव सेना और हरियाणा विकास पार्टी के सहयोग से मिली-जुली सरकार का गठन किया। परन्तु इससे पहले 11 मई, 1996 को राजनीतिक दलों जनता दल, भारतीय साम्यवादी दल, भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी), अखिल भारतीय इन्दिरा कांग्रेस (तिवारी), डी.एम.के. तमिल मनीला कांग्रेस, समाजवादी पार्टी, मध्य प्रदेश कांग्रेस, मुस्लिम लीग, जनता पार्टी ने मिलकर संयुक्त मोर्चे का निर्माण किया। 19 मई, 1996 को इस मोर्चे में असम गण परिषद् और तेलुगू देशम पार्टी भी शामिल हो गई। इस तरह 13 जनतांत्रिक गठबन्धन के 70 सदस्यीय मंत्रिमण्डल ने अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 13 अक्टूबर, 1999 को शपथ ग्रहण की। इस सरकार में अधिकतर क्षेत्रीय दल सम्मिलित थे। इन चुनावों ने भारतीय राजनीति में मिली-जुली सरकारों के युग का मार्ग प्रशस्त किया।

भारत के राज्यों मे मिली-जुली सरकारों की राजनीति

सन् 1950 से लेकर सन् 1966 तक केरल को छोड़कर शेष सभी राज्यों में कांग्रेस की सरकारें ही रहीं जिसके कारण राज्यों में मिली-जुली सरकारों की प्रवृत्ति उभर नहीं पाई। यद्यपि संविधान द्वारा भारत में बहु-दलीय प्रणाली को अपनाया गया है, तथापि सन् 1966 तक केन्द्र व राज्यों में (केरल को छोड़कर) कांग्रेस का ही प्रभुत्व रहा। इस समय कोई भी दल क्षेत्रीय स्तर पर इतना शक्तिशाली नहीं था कि वह अपने आधार पर ही राज्य मे सरकार का गठन कर सके। 29 सितम्बर, 2000 को चुनाव आयोग ने 44 दलों को राज्य स्तरीय दलों के रूप मे मान्यता प्रदान की। इनमें प्रमुख राजनीतिक दल हैं: अकाली दल, इण्डियन नेशनल लोकदल, नेशनल कांफ्रेस, द्रमुक, अन्ना द्रमुक, तेलुगू देशम, समाजवादी पार्टी, शिव सेना, असम गण परिषद् आदि। इन दलों मे से कुछ स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व अस्तित्व मे आए थे। इन क्षेत्रीय दलों के कारण ही भारतीय राज्यों में मिली-जुली सरकारों की राजनीति का आरंभ हुआ। भारतीय राज्यों में मिली-जुली सरकारों की राजनीति सन् 1967 के चौथे आम चुनावों के बाद आरंभ हुई। इसके उदय के निम्नलिखित कारण थे:

- **स्पष्ट बहुमत न मिलना:** राज्यों में मिली-जुली सरकारों के उदय का सबसे प्रमुख कारण यह था कि चौथे आम चुनावों के समय केरल, प. बंगाल, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पंजाब व गुजरात मे किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं थां अत: कई दलों ने आपस में मिलकर सरकारों का निर्माण किया।
- **कांग्रेस का विरोध करना:** राज्यों में मिली-जुली सरकारों के उदय का एक अन्य कारण था कि इन सरकारों का उद्देश्य कांग्रेस का विरोध करना तथा उसके एकाधिकार को समाप्त करके उससे सत्ता छीनना था। इसमें क्षेत्रीय दल सफल भी रहे।
- **केन्द्र-राज्य मतभेद:** राज्यों में मिली-जुली सरकारों के उदय का एक अन्य कारण केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों के मध्य कटुता की भावना का उदय होना भी रहा है। यदि कोई भी राज्य सरकार केन्द्र सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन नहीं करती थी तो उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाता था जिसके अन्तर्गत जनता द्वारा निर्वाचित सरकार को भंग कर दिया जाता और राष्ट्रपति उस राज्य का शासन अपने हाथों में ले लेता था। केंद्र और राज्यों के मध्य मतभेद पैदा होने के जनता द्वारा निर्वाचित सरकार को भंग कर दिया जाता और राष्ट्रपति उस राज्य का शासन अपने हाथों में ले लेता था। केंद्र और राज्यों के मध्य मतभेद पैदा होने के कुछ अन्य कारण भी थे। जिनमें राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति, केंद्रीय रिजर्व पुलिस, आर्थिक सहायता आदि प्रश्नों को लेकर उग्र मतभेद पैदा हो गए थे।
- **दल-बदल:** मिली-जुली सरकारों के उदय का एक प्रमुख कारण दल-बदल भी रहा है। यद्यपि सन् 1952 से सन् 1966 तक के मध्य भी 542 बार दल-बदल हुआ, यद्यपि यह दल-बदल कांग्रेस के पक्ष में रहा। परन्तु सन् 1967 के आम चुनावों मे एक वर्ष के भीतर ही 438 बाद सदस्यों ने दल-बदल किया। दल-बदल के केन्द्र व राज्यों की राजनीति तथा शासन में अस्थिरता ला दी और इसके कारण भारतीय राजनीति के शब्द कोष में 'आया राम-गया राम' नामक शब्द जुड़ गए। ऐसा प्रतीत होने लगा कि शायद भारत में ससदीय शासन प्रणाली चल नहीं सकेगी। हरियाणा में तो एक सदस्य ने एक दिन में चार बार दल-बदल कर एक रिकार्ड बना दिया। अत: स्पष्ट है कि मिली-जुली सरकारों के उदय के समय जितनी भारी मात्रा में दल-बदल हुआ उतना शायद कभी नहीं हुआ।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- **सत्ता का लोभ:** सत्ता प्राप्ति के लोभ ने भी मिली-जुली सरकारों के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। प्राय: उन नेताओं ने मिली-जुली सरकारों के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है जिन्हें कांग्रेस के शासन काल में सत्ता सुख प्राप्त।

आम चुनाव आरंभ से वर्तमान तक

प्रथम लोकसभा (1952)

अगस्त 1947 में स्वतंत्र होने और 26 जनवरी 1950 को अपना संविधान लागू करने के बाद 1951 में भारत का पहला आम चुनाव सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात देश में पहली बार 1952 में लोकसभा का गठन हुआ। इसमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (कांग्रेस) 364 सीटों के साथ सत्ता में आईं। इसके साथ, पार्टी ने कुल पड़े वोटों का 45 प्रतिशत प्राप्त किया था। पूरे भारत में 44.87 प्रतिशत की चुनावी भागीदारी दर्ज की गई। जवाहर लाल नेहरू देश के पहले निर्वाचित प्रधानमंत्री बने, उनकी पार्टी ने मतदान के 75.99: (47665951) मत प्राप्त करके विरोधियों को स्पष्ट रूप से हरा दिया। 17 अप्रैल 1952 को गठित हुई लोक सभा ने, 4 अप्रैल, 1957 तक का अपना कार्यकाल पूरा किया।

प्रथम आम चुनाव से ठीक पहले नेहरू के दो पूर्व कैबिनेट सहयोगियों ने कांग्रेस के वर्चस्व को चुनौती देने के लिए अलग राजनीतिक दलों की स्थापना कर ली थी। जहां एक ओर श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने अक्टूबर 1951 में जनसंघ की स्थापना की, वहीं दूसरी ओर दलित नेता भीमाराव अम्बेडकर ने अनुसूचित जाति महासंघ (जिसे बाद में रिपब्लिकन पार्टी का नाम दिया गया) को पुनर्जीवित किया। जो अन्य दल उस समय आगे आए उनमें आचार्य कृपालनी की किसान मजदूर प्रजा परिषद, राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व वाली समाजवादी पार्टी और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी शामिल हैं। हालांकि, इन छोटे दलों को पता था कि वे वास्तव में कांग्रेस के खिलाफ कहीं खड़े नहीं होते हैं।

पहली लोकसभा के अध्यक्ष श्री गणेश वासुदेव मावलंकर थे। पहली लोकसभा में 677 (3784 घंटे) बैठकें हुई, यह अब तक हुई बैठकों की उच्चतम संख्या है। इस लोक सभा ने 17 अप्रैल 1952 से 4 अप्रैल 1957 तक अपना कार्यकाल पूरा किया।

दूसरी लोकसभा (1957)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 1952 की अपनी सफलता की कहानी को 1957 में आयोजित हुए दूसरे लोकसभा चुनावों में भी दोहराने में कामयाब रही। कांग्रेस के 490 उम्मीदवारों में से 371 सीटें जीतने में कामयाब रहे। पार्टी ने कुल 57,579,589 मतों की जीत के साथ 47.78 प्रतिशत बहुमत सुरक्षित रखा। जवाहर लाल नेहरू अच्छे बहुमत के साथ सत्ता में वापस लौटे। 11 मई 1957 को, एम. अनंतशयनम आयंगर को सर्वसम्मति से नई लोक सभा का अध्यक्ष चुना गया।

इन चुनावों में कांग्रेस के सदस्य फिरोज गांधी का उदय भी देखा गया (जिन्होंने प्रधानमंत्री नेहरू की बेटी इंदिरा से विवाह किया)। उन्होंने उत्तर प्रदेश के रायबरेली निर्वाचन क्षेत्र से अपने निकटतम प्रतिद्वंद्वी, नंद किशोर को 29,000 से अधिक मतों के अंतर से हराया।

दिलचस्प बात यह रही कि 1957 के चुनावों में एक भी महिला उम्मीदवार मैदान में नहीं थी। 1957 में निर्दलीयों को मतदान का 19 प्रतिशत प्राप्त हुआ। दूसरी लोकसभा ने 31 मार्च 1962 तक का अपना कार्यकाल पूरा किया।

तीसरी लोकसभा (1962)

तीसरी लोकसभा अप्रैल 1962 में बनाई गई थी। उस समय पाकिस्तान के साथ संबंध खराब बने हुए थे। चीन के साथ 'दोस्ताना' संबंध भी अक्टूबर 1962 के सीमा युद्ध से एक मिथ्या ही साबित हुए। अपनी सरकार द्वारा सुरक्षा पर पर्याप्त ध्यान न देने के मुद्दे पर चारों ओर आलोचना होने के बाद, नेहरू को तत्कालीन रक्षा मंत्री कृष्ण मेनन को हटाने और अमेरिका की सैन्य सहायता लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। नेहरू का स्वस्थ्य तेजी से बिगड़ने लगा और वह वर्ष 1963 में स्वास्थ्य लाभ के लिए कश्मीर में कई महीने गुजारने के लिए बाध्य हो गए। वर्ष 1964 मई में उनके कश्मीर से लौटने पर, नेहरू सदमे से पीड़ित हुए और बाद में दिल का दौरा पड़ने से 27 मई 1964 को उनका निधन हो गया। विशेषज्ञों का कहना है कि 1962 में चीन के भारत की सीमाओं के आक्रमण और पाकिस्तान के साथ घरेलू मामलों ने नेहरू को कड़वाहट से भर दिया था।

वयोवृद्ध कांग्रेसी नेता गुलजारीलाल नंदा ने नेहरू की मृत्यु के बाद दो सप्ताह के लिए उनकी जगह ली। कांग्रेस द्वारा लाल

बहादुर शास्त्री को नया नेता चुने जाने तक उन्होंने कार्यवाहक प्रधानमंत्री के रूप में काम किया। शास्त्री प्रधानमंत्री पद के लिए एक संभावित विकल्प नहीं थे जिन्होंने, शायद अप्रत्याशित रूप से, वर्ष 1965 में पाकिस्तान पर जीत दिलाने में देश का नेतृत्व किया। शास्त्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति, मोहम्मद अयूब खान ने, पूर्व सोवियत संघ के ताशकंद में 10 जनवरी 1966 को एक शांति संधि पर हस्ताक्षर किए। हालांकि, शास्त्री अपनी जीत के फायदे देखने के लिए ज्यादा समय तक जीवित नहीं रहे।

शास्त्री की मृत्यु से उत्पन्न हुए रिक्त स्थान के कारण कांग्रेस ने एक बार पुनः नेता विहीन हो गयी। नेहरू की बेटी इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने से पहले एक बार फिर नंदा को एक महीने से कम समय के लिए कार्यवाहक प्रधानमंत्री बनाया गया। इंदिरा, शास्त्री जी के मंत्रिमंडल में सूचना एवं प्रसारण मंत्री के रूप काम करती थीं। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष के. कामराज ने 1966 में इंदिरा को प्रधानमंत्री बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। पूराने कांग्रेसी नेता मोरारजी देसाई से कड़े विरोध के बावजूद, इंदिरा गांधी 24 जनवरी 1966 को प्रधानमंत्री बनीं। कांग्रेस के लिए वास्तव में यह समय सबसे अच्छा नहीं था। पार्टी आंतरिक संकटों से जूझ रही थी और देश हाल में लड़े दो युद्धों के प्रभाव से उबर रहा था। अर्थव्यवस्था को नुकसान हुआ था और मनोबल काफी गिरा हुआ था। जिन अन्य मुद्दों ने लोक सभा को हिला कर रख दिया था उनमें मिजो आदिवासी बगावत, अकाल, श्रमिक अशांति और रुपया अवमूल्यन के मद्देनजर गरीबों की बदहाली शामिल थी। वहीं पंजाब में भी भाषाई और धार्मिक अलगाववाद के लिए आंदोलन चल रहा था।

चौथी लोकसभा (1967)

भारत अप्रैल 1967 में चौथे चुनाव की राजनैतिक गतिविधियों से गुजर रहा था। जिस कांग्रेस ने अब तक चुनावों में 73 प्रतिशत से कम सीटें नहीं जीती थीं, आगे आने वाला समय उसके लिए और बुरा साबित होने वाला था।

कांग्रेस के आंतरिक संकट का असर वर्ष 1967 के चुनाव के परिणामों में साफ दिखाई दिया। पहली बार, कांग्रेस ने निचले सदन में करीब 60 सीटों को खो दिया। उसे 283 सीटें पर जीत प्राप्त हुई। वर्ष 1967 तक, सबसे पुरानी पार्टी ने विधानसभा चुनावों में भी कभी 60 प्रतिशत से कम सीटें नहीं जीती थीं। यहाँ भी कांग्रेस को एक बड़ा झटका सहना पड़ा क्योंकि बिहार, केरल, उड़ीसा, मद्रास, पंजाब और पश्चिम बंगाल में गैर कांग्रेसी सरकारें स्थापित हुईं। इस सब के साथ, इंदिरा गांधी को, जो रायबरेली निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा के लिए चुने गयीं थी, 13 मार्च को प्रधानमंत्री के रूप में शपथ दिलाई गई। असंतुष्ट आवाजों के शांत रखने के लिए, उन्होंने मोरारजी देसाई को भारत का उपप्रधानमंत्री और भारत का वित्तमंत्री नियुक्त किया। मोरारजी देसाई ने नेहरू की मृत्यु के बाद इंदिरा को प्रधानमंत्री बनाए जाने का विरोध किया था।

कांग्रेस पार्टी के भीतर मतभेद बढ़ते रहे। कांग्रेस ने 12 नवम्बर 1969 अनुशासनहीनता के लिए मोरार जी देसाई को निष्कासित कर दिया। इस घटना ने कांग्रेस को दो भागों में विभाजित कर दिया। (1) कांग्रेस (ओ) – संगठन (आर्गेनाइजेशन) के लिए – जिसका नेतृत्व मोरारजी देसाई ने किया और (2) कांग्रेस (आई) (इंदिरा के लिए) जिसका नेतृत्व इंदिरा गांधी कर रही थीं। इंदिरा ने दिसंबर 1970 तक सीपीआई (एम) के समर्थन से एक अल्पमत वाली सरकार को चलाया। वह आगे अल्पमत की सरकार नहीं चलाना चाहती थीं, इसलिए उन्होंने चुनावों की अवधि से एक वर्ष पहले मधयावधि लोकसभा चुनवों की घोषणा कर दी।

पांचवीं लोकसभा (1971)

इंदिरा गांधी ने वर्ष 1971 में कांग्रेस को भारी बहुमत से जीत दिलाई। 'गरीबी हटाओ' के चुनावी नारे के साथ प्रचार करते हुए, वह 352 सीटों के साथ संसद में वापस आयीं। यह पिछले चुनावों की 283 सीटों के मुकाबले उल्लेखनीय सुधार था।

इंदिरा गांधी ने वर्ष 1971 में भारत पाकिस्तान युद्ध के दौरान साहसिक निर्णय लिया जिसके परिणामस्वरूप बांग्लादेश मुक्त हो गया। दिसंबर 1971 में भारत की जीत का सभी भारतीयों द्वारा स्वागत किया गया क्योंकि यह चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका से राजनयिक विरोधों का सामना करते हुए प्राप्त हुई थी। उस समय तत्कालीन सोवियत संघ और पूर्वी ब्लॉक के देशों को छोड़कर शायद ही किसी अन्य देश ने भारत का अंतर्राष्ट्रीय समर्थन किया था।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

इंदिरा और कांग्रेस दोनों के समक्ष कुछ अन्य समस्याएं भी थीं। भारत पाक युद्ध में आयी भारी आर्थिक लागत, दुनिया में तेल की कीमतों में वृद्धि और औद्योगिक उत्पादन में गिरावट ने आर्थिक कठिनाइयों को बढ़ा दिया था।

12 जून 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने चुनावी भ्रष्टाचार के आधार पर उनके वर्ष 1971 के चुनाव को अवैध ठहरा दिया। इस्तीफे के बजाय, इंदिरा गाँधी ने देश में आपातकाल की घोषणा की और पूरे विपक्ष को जेल में डाल दिया।

आपातकाल मार्च 1977 तक चला और वर्ष 1977 में आयोजित चुनावों में जन मोर्चा नाम के पार्टियों के गठबंधन से उन्हें हार का सामना करना पड़ा. ऐसा पहली बार हुआ था जब कांग्रेस को एक गंभीर हार का सामना करना पड़ा था।

छठवीं लोकसभा (1977)

कांग्रेस सरकार द्वारा आपातकाल की घोषणा वर्ष 1977 के चुनावों में मुख्य मुद्दा था। राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान 25 जून 1975 से 21 मार्च 1977 तक नागरिक स्वतंत्रताओं को समाप्त कर दिया गया था और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने विशाल शक्तियां अपने हाथ में ले ली थीं।

गांधी अपने इस निर्णय की वजह से काफी अलोकप्रिय हुई और चुनावों में उन्हें इसकी कीमत चुकानी पड़ी। 23 जनवरी को गांधी ने, मार्च में चुनाव कराने की घोषणा की और सभी राजनीतिक कैदियों को रिहा कर दिया। चार विपक्षी दलों, कांग्रेस (ओ), जनसंघ, भारतीय लोकदल और समाजवादी पार्टी ने 'जनता पार्टी' के रूप में मिलकर चुनाव लड़ने का फैसला किया।

जनता पार्टी ने मतदाताओं को आपातकाल के दौरान हुई ज्यादतियों और मानव अधिकारों के उल्लंघन की याद दिलाई जैसे अनिवार्य बंध्याकरण और राजनेताओं को जेल में डालना। जनता अभियान में कहा गया कि चुनाव तय करेगा कि भारत में 'लोकतंत्र होगा या तानाशाही'। कांग्रेस आशंकित दिख रही थी। कृषि और सिंचाई मंत्री बाबू जगजीवन राम ने पार्टी छोड़ दी और ऐसा करने वाले कई लोगों में से वे एक थे।

कांग्रेस ने एक मजबूत सरकार की जरूरत होने की बात कहकर मतदाताओं को लुभाने की कोशिश की लेकिन लहर इसके खिलाफ चल रही थी।

स्वतंत्र भारत में पहली बार कांग्रेस को चुनावों में हार का सामना करना पड़ा और जनता पार्टी ने 298 सीटें जीती। मोरार जी देसाई 24 मार्च को भारत के पहले गैर-कांग्रेसी प्रधानमंत्री बने, उन्हें चुनावों से दो महिने पहले ही जेल से रिहा किया गया था।

कांग्रेस की लगभग 200 सीटों पर हार हुई। इंदिरा गांधी और उनके बेटे संजय गांधी भी चुनाव हार गए।

सातवीं लोकसभा (1980)

जनता पार्टी, कांग्रेस और आपातकाल के खिलाफ जनता के गुस्से पर सवार होकर सत्ता में आयी लेकिन इसकी स्थिति कमजोर थी। लोकसभा में पार्टी की 270 सीटें थीं और सत्ता पर उसकी पकड़ मजबूत नहीं थी।

भारतीय लोक दल के नेता चौधरी चरण सिंह और जगजीवन राम, जिन्होंने कांग्रेस छोड़ दी थी, जनता गठबंधन के सदस्य थे, लेकिन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई से वे खुश नहीं थे।

आपातकाल के दौरान मानवाधिकार के हनन की जांच के लिए जो अदालतें सरकार ने गठित की थीं वे इंदिरा गांधी के खिलाफ प्रतिशोधी दिखाई पड़ीं, इंदिरा ने स्वयं को एक परेशान महिला के रूप में चित्रित करने का कोई मौका नहीं गवांया।

समाजवादियों और हिंदू राष्ट्रवादियों का मिश्रण जनता पार्टी, 1979 में विभाजित हो गई जब भारतीय जनसंघ (BJS) के नेता अटल बिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण आडवाणी ने पार्टी को छोड़ दिया और बीजेएस ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया।

देसाई ने संसद में विश्वास मत खो दिया और इस्तीफा दे दिया। चरण सिंह, जिन्होंने जनता गठबंधन के कुछ भागीदारों को बरकरार रखा था, उन्होंने प्रधानमंत्री के रूप में जून 1979 में शपथ ली।

कांग्रेस ने संसद में चौधरी चरण सिंह के समर्थन का वादा किया लेकिन बाद में पीछे हट गई। उन्होंने जनवरी 1980 में चुनाव की घोषणा कर दी और वे अकेले प्रधानमंत्री थे जो कभी संसद नहीं गए। जनता पार्टी के नेताओं के बीच की लड़ाई और देश में फैली राजनीतिक अस्थिरता ने कांग्रेस (आई) के पक्ष में काम किया, जिसने मतदाताओं इंदिरा गांधी की मजबूत सरकार की याद दिला दी।

कांग्रेस ने लोकसभा में 351 सीटें जीतीं और जनता पार्टी, या बचे हुए गठबंधन को 32 सीटें मिलीं।

जनता पार्टी का साल दर साल विभाजन होता रहा लेकिन ये देश के राजनैतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ। यह एक गठबंधन था और इसने यह साबित कर दिया कि कांग्रेस को हराया जा सकता है।

आठवीं लोकसभा (1984-1985)

31 अक्टूबर 1984 को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या ने, कांग्रेस के लिए सहानुभूति मत बनाए। इंदिरा गांधी की मृत्यु के बाद लोकसभा को भंग कर दिया गया और राजीव गांधी ने अंतरिम प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ली।

नवंबर 1984 के लिए चुनाव की घोषणा कर दी गई और चुनाव प्रचार के दौरान राजीव ने लोगों को अपने परिवार के योगदान की याद दिलाई।

कांग्रेस ने भारी बहुमत से जीत हासिल की. इसने 409 लोकसभा सीटें और लोकप्रिय मतों का 50 फीसदी अपने नाम किया, यह पार्टी का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन था। तेलुगू देशम पार्टी 30 सीटों के साथ संसद में दूसरी सबसे बड़ी पार्टी बन गई। यह भारतीय संसद के इतिहास के उन दुर्लभ रिकार्डों में एक है जिसमें कोई क्षेत्रीय पार्टी मुख्य विपक्षी दल के रूप में उभरी।

नवीं लोकसभा (1989)

9वीं लोकसभा के चुनाव भारतीय चुनावी राजनीति में कई मायनों में ऐतिहासिक घटना रहे। इन चुनावों ने राजनेताओं के मतदाता से वोट मांगने के तरीके को बदल दिया। अब जाति और धर्म के आधार पर वोट मांगना केंद्र बिंदु बन गया।

यद्यपि वर्ष 1989 के आम चुनाव कई संकटों से जूझ रहे युवा राजीव के साथ लड़े गए किन्तु कांग्रेस सरकार अपनी विश्वसनीयता और लोकप्रियता खो रही थी। बोफोर्स कांड, पंजाब में बढ़ता आतंकवाद, एलटीटीई और श्रीलंका सरकार के बीच गृह युद्ध उन समस्याओं में से कुछ थी जो राजीव गांधी की सरकार के सामने थीं। राजीव के सबसे बड़े आलोचक विश्वनाथ प्रताप सिंह थे जिन्होंने सरकार में वित्त मंत्रालय और रक्षा मंत्रालय का कामकाज संभाला रखा था। रक्षा मंत्री के रूप में सिंह के कार्यकाल के दौरान यह अफवाह थी कि उनके पास बोफोर्स रक्षा सौदे से संबंधित ऐसी जानकारी थी जो राजीव गांधी की प्रतिष्ठा को बर्बाद कर सकती थी।

लेकिन सिंह को शीघ्र ही मंत्रिमंडल से बर्खास्त कर दिया गया और फिर उन्होंने कांग्रेस और लोक सभा में अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने अरुण नेहरू और आरिफ मोहम्मद खान के साथ जन मोर्चा का गठन किया और इलाहाबाद से लोकसभा में प्रवेश किया।

11 अक्टूबर 1988 को, जन मोर्चा, जनता पार्टी, लोकदल और कांग्रेस (एस) के विलय से जनता दल की स्थापना हुई ताकि सभी दल एक साथ मिलकर राजीव गांधी सरकार का विरोध करें। जल्द ही, द्रमुक, तेदेपा और अगप सहित कई क्षेत्रीय दल जनता दल से मिल गए और नेशनल फ्रंट की स्थापना की। पांच पार्टियों वाला नेशनल फ्रंट, भारतीय जनता पार्टी और दो कम्यूनिस्ट पार्टियों- भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी- मार्क्सवादी (सीपीआई-एम) और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (सीपीआई) के साथ मिलकर 1989 के चुनाव मैदान में उतरा।

लोकसभा में 525 सीटों के लिए यह चुनाव 22 नवम्बर और 26 नवम्बर 1989 को दो चरणों में आयोजित हुए। नेशनल फ्रंट को लोकसभा में आसान बहुमत प्राप्त हुआ और उसने वाम मोर्चे और भारतीय जनता पार्टी के बाहरी समर्थन से सरकार बनाई। राष्ट्रीय मोर्चे की सबसे बड़े घटक जनता दल ने 143 सीटें जीतीं, इसके अलावा माकपा और भाकपा ने क्रमशः 33 और 12 सीटें हासिल कीं। निर्दलीय और अन्य छोटे दल 59 सीटें जीतने में कामयाब रहे।

हालांकि, कांग्रेस अभी भी 197 सांसदों के साथ लोकसभा में अकेली सबसे बड़ी पार्टी थी। भाजपा 1984 के चुनावों में दो सीटों के मुकाबले इस बार के चुनावों में 85 सांसदों के साथ सबसे ज्यादा फायदे में रही। विश्वनाथ प्रताप सिंह भारत के 10वें प्रधानमंत्री बने और देवीलाल उप प्रधानमंत्री बने। उन्होंने 2 दिसम्बर 1989 से 10 नवम्बर 1990 तक कार्यालय संभाला। भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी द्वारा राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद मुद्दे पर रथ यात्रा शुरू किए जाने और बिहार के मुख्यमंत्री लालू यादव द्वारा बिहार में गिरफ्तार किए जाने के बाद पार्टी ने वी.पी. सिंह सरकार से समर्थन वापस ले लिया। वीपी सिंह ने विश्वास मत हारने के बाद इस्तीफा दे दिया।

चंद्रशेखर 64 सांसदों के साथ जनता दल से अलग हो गए और उन्होंने 'समाजवादी जनता पार्टी' बनाई। उन्हें बाहर से कांग्रेस का समर्थन मिला और वे भारत के 11वें प्रधानमंत्री बने। उन्होंने आखिरकार 6 मार्च 1991 को इस्तीफा दे दिया, जब कांग्रेस ने आरोप लगाया कि सरकार राजीव गांधी पर जासूसी कर रही है।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission

दसवीं लोकसभा (1991)

10 वीं लोकसभा के चुनाव मध्यावधि चुनाव थे क्योंकि पिछली लोकसभा को सरकार के गठन के सिर्फ 16 महीने बाद भंग कर दिया गया था। यह चुनाव विपरीत वातावरण में हुए और दो सबसे महत्वपूर्ण चुनावी मुद्दों, मंडल आयोग की सिफारिसें लागू करने और राम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद विवाद के चलते इन्हें 'मंडल-मंदिर' चुनाव भी कहा जाता है।

जहां एक ओर वी.पी. सिंह सरकार द्वारा लागू मंडल आयोग की रिपोर्ट में सरकारी नौकरियों में अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) को 27 प्रतिशत आरक्षण दिया गया था, जिसके कारण बड़े पैमाने पर हिंसा हुई और सामान्य जातियों के लोगों ने देश भर में इसका विरोध किया, वहीं दूसरी ओर मंदिर अयोध्या के विवादित बाबरी मस्जिद ढांचे का प्रतिनिधित्व करता था जिसे भारतीय जनता पार्टी अपने प्रमुख चुनावी मुद्दे के रूप में उपयोग कर रही थी।

मंदिर मुद्दे के फलस्वरुप देश के कई हिस्सों में दंगे हुए और मतदाताओं का जाति और धार्मिक आधार पर ध्रुवीकरण हो गया। राष्ट्रीय मोर्चे में फैली अव्यवस्था ने कांग्रेस की वापसी के संकेत दे दिए थे।

चुनाव तीन चरणों में 20 मई 12 जून और 15 जून 1991 आयोजित किए गए। यह कांग्रेस, भाजपा और राष्ट्रीय मोर्चा-जनता दल (एस)- वामपंथियों मोर्चे के गठबंधन के बीच एक त्रिकोणीय मुकाबला था।

मतदान के पहले दौर के एक दिन बाद 20 मई को, पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की तमिल ईलम लिबरेशन टाइगर द्वारा श्रीपेरंबदूर में चुनाव प्रचार करते हुए हत्या कर दी गई। चुनाव के शेष दिनों को जून के मध्य तक के लिए स्थगित कर दिए गया और अंत में मतदान 12 जून और 15 जून को हुआ। इस बार के संसदीय चुनावों में अब तक का सबसे कम मतदान हुआ, इसमें केवल 53 प्रतिशत मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया।

इन चुनावों के परिणामों से एक त्रिशंकु संसद बनी, जिसमें 232 सीटों के साथ कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी और 120 सीटों के साथ भाजपा दूसरे स्थान पर रही। जनता दल सिर्फ 59 सीटों के साथ तीसरे स्थान पर रहा।

21 जून को, कांग्रेस के पी वी नरसिंह राव ने प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ली। राव, नेहरू-गांधी परिवार के बाहर दूसरे कांग्रेसी प्रधानमंत्री थे। नेहरू-गांधी परिवार के बाहर पहले कांग्रेसी प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री थे।

ग्यारवीं लोकसभा (1996)

11 वीं लोकसभा के लिए हुए चुनाव के परिणामों से एक त्रिशंकु संसद का गठन हुआ और दो वर्ष तक राजनैतिक अस्थिरता रही जिसके दौरान देश के तीन प्रधानमत्री बने।

प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव की कांग्रेस (आई) सरकार ने सुधारों की एक श्रृंखला को लागू किया जिसने विदेशी निवेशकों के लिए देश की अर्थव्यवस्था को खोल दिया। राव के समर्थकों ने उन्हें देश की अर्थव्यवस्था को बचाने और देश की विदेश नीति को स्फूर्ति देने का श्रेय दिया लेकिन उनकी सरकार अप्रैल से मई में चुनाव से पहले से अनिश्चित और कमजोर थी।

मई 1995 में, वरिष्ठ नेता अर्जुन सिंह और नारायण दत्त तिवारी ने कांग्रेस छोड़ दी और अपनी पार्टी का गठन किया। हर्षद मेहता घोटाले, राजनीति के अपराधीकरण पर वोहरा की रिपोर्ट, जैन हवाला कांड और 'तंदूर हत्याकांड' मामले ने राव सरकार की विश्वसनीयता को क्षतिग्रस्त किया।

भाजपा व उसके सहयोगी दल और संयुक्त मोर्चा, वाम मोर्चा और जनता दल का गठबंधन, चुनावों में कांग्रेस के मुख्य प्रतिद्वंद्वी थे।

तीन सप्ताह के अभियान के दौरान, राव ने अपने द्वारा लागू किए गए आर्थिक सुधारों को मुद्दा बनाकर मतदाताओं को आकर्षित किया और भाजपा ने हिंदुत्व और राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दों पर मतदाताओं को रिझाया।

मतदाता किसी भी पार्टी से प्रभावित नहीं लगते थे। भाजपा ने 161 सीटें जीती और कांग्रेस ने 140। संसद की सीटों की आधी संख्या 271 थी।

राष्ट्रपति ने भाजपा नेता अटल बिहारी वाजपेयी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया, चूंकि वे संसद में सबसे बड़ी पार्टी के मुखिया थे।

वाजपेयी ने 16 मई को प्रधानमंत्री के रूप में पदभार संभाला और संसद में क्षेत्रीय दलों से समर्थन पाने की कोशिश की। वह इस काम में विफल रहे और 13 दिनों के बाद उन्होंने इस्तीफा दे दिया।

जनता दल के नेता एच डी देवेगौड़ा ने 1 जून को एक संयुक्त मोर्चा गठबंधन सरकार का गठन किया। उनकी सरकार 18 महीने चली।

देवेगौड़ा के विदेश मंत्री इंद्रकुमार गुजराल ने प्रधानमंत्री के रूप में अप्रैल 1997 में पदभार संभाला जब कांग्रेस बाहर से एक नई संयुक्त मोर्चा सरकार का समर्थन करने के लिए सहमत हो गई। लेकिन गुजराल केवल एक कामचलाऊ व्यवस्था के रूप में थे। देश में 1998 में फिर से चुनाव होना तय था।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOUNDER PROP.

बारहवीं लोकसभा (1998)

11वीं लोकसभा का जीवन छोटा था, यह मुश्किल से डेढ़ साल चली। अल्पमत वाली इंद्र कुमार गुजराल की सरकार (मई 1996 के आम चुनावों से 18 महीनों के भीतर संयुक्त मोर्चा की दूसरी सरकार), 28 नवम्बर 1997 को गिर गई जब सीताराम केसरी के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने राजीव गांधी की हत्या में द्रमुक नेताओं के शामिल होने के विवाद के चलते सरकार से समर्थन वापस ले लिया।

नए चुनावों की घोषणा की गई और 10 मार्च 1998 को 12 वीं लोकसभा का गठन हुआ और वरिष्ठ भाजपा नेता अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाले गठबंधन को नौ दिन बाद शपथ दिलाई गई। 12 वीं लोकसभा केवल 413 दिन चली, जो उस तिथि तक का सबसे कम समय था।

एक व्यवहार्य विकल्प के अभाव के कारण तब विघटन हो गया जब 13 महीने पुरानी भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार को 17 अप्रैल को केवल एक मत से बेदखल कर दिया गया। ऐसा पांचवीं बार हुआ था जब लोकसभा को अपना कार्यकाल पूरा करने से पहले भंग कर दिया गया।

4 दिसम्बर 1997 को लोक सभा के विघटन के बाद समय से पहले ही सभी लोकसभा सीटों के लिए चुनाव हुए।

चुनाव पश्चात गठबंधन की रणनीति ने भाजपा के नेतृत्व वाले गठबंधन को 265 सीटों का कार्यकारी बहुमत प्रदान किया। इस संदर्भ में 15 मार्च को, राष्ट्रपति के आर नारायणन ने वाजपेयी को अगली सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। 19 मार्च को वाजपेयी ने प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ली।

तेरहवीं लोकसभा (1999)

17 अप्रैल 1999 को, वाजपेयी ने लोकसभा में विश्वास मत खो दिया और इसके फलस्वरूप उनकी गठबंधन सरकार ने इस्तीफा दे दिया। उन्होंने इसका कारण अपने 24 पार्टी वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन द्धराजग) में सामंजस्य की कमी होना बताया। भाजपा, गठबंधन की अपने सहयोगी जयललिता के नेतृत्व वाली अन्नाद्रमुक के पीछे हटने के कारण मतदान में एक वोट से हार गई थी।

जयललिता अपनी मांगे पूरी ना होने पर लगातार समर्थन वापस लेने की धमकी दे रही थीं, इन मांगों में विशेष रूप से तमिलनाडु सरकार से बर्खास्त करना शामिल था जिसका नियंत्रण वे तीन साल पहले खो चुकी थीं। भाजपा ने आरोप लगाया कि जयललिता भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच से बचने की मांग कर रहीं थीं और पार्टियों के बीच कोई समझौता नहीं किया जा सका जिससे सरकार की हार हुई।

मुख्य विपक्षी पार्टी कांग्रेस, क्षेत्रीय और वामपंथी समूहों के साथ मिलकर बहुमत वाली सरकार बनाने के लिए पर्याप्त समर्थन नहीं पा सकी। 26 अप्रैल को, भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने लोकसभा भंग कर दी और जल्दी चुनाव करने की घोषणा कर दी। भाजपा ने मतदान होने तक एक अंतरिम प्रशासन के रूप में शासन करना जारी रखा, चुनाव आयोग द्वारा चुनावों की तिथि 4 मई घोषित की गई थी।

चूंकि पिछले चुनाव 1996 और 1998 में आयोजित हुए थे, इसलिए 1999 के चुनाव 40 महीने में तीसरी बार हो रहे थे। चुनावी धोखाधड़ी और हिंसा को रोकने के लिए देश के 31 राज्यों व केंद्र शासित प्रदेशों में सुरक्षा बलों को तैनात करने हेतु ये चुनाव पांच सप्ताह तक चले थे। कुल मिलाकर 45 पार्टियों ने (छह राष्ट्रीय, शेष क्षेत्रीय) 543 लोकसभा सीटों पर चुनाव लड़ा।

लंबे चुनाव अभियान के दौरान, भाजपा और कांग्रेस ने आम तौर पर आर्थिक और विदेश नीति के मुद्दों पर सहमति व्यक्त की, इसमें पाकिस्तान के साथ कश्मीर सीमा विवाद का निपटारा भी शामिल था। उनकी प्रतिद्वंद्विता केवल कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी और वाजपेयी के बीच के व्यक्तिगत टकराव के रूप में ही अधिक प्रकट हुई।

सोनिया गांधी को वर्ष 1998 में काफी कम उम्र में पार्टी के अध्यक्ष पद के लिए निर्वाचित किया गया, सोनिया की जन्मभूमि इटली होने की बात को मुद्दा बनाकर महाराष्ट्र के कांग्रेसी नेता शरद पवार ने सोनिया के चयन को चुनौती दी। इस कारण से कांग्रेस में आतंरिक संकट पैदा हो गए और भाजपा ने प्रभावी रूप से एक चुनावी मुद्दे के रूप में इसका प्रयोग किया।

वाजपेयी द्वारा कारगिल युद्ध से निपटने का सकारात्मक दृष्टिकोण भी एक मुद्दा था जो भाजपा के पक्ष में काम कर रहा था। यह युद्ध चुनावों से कुछ महीने पहले ही समाप्त हुआ था और इसने कश्मीर में भारत की स्थिति को मजबूत किया था। इसके अलावा, पिछले दो वर्षों में भारत ने आर्थिक उदारीकरण और वित्तीय सुधारों के चलते आर्थिक रूप से काफी वृद्धि तैनात की थी, इसके साथ-साथ मुद्रास्फीति की दरें कम और औद्योगिक विकास की दरें भी उच्च थीं।

PARAMOUNT IAS
FOREVER ABOVE ESTD. 2005
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

अन्य दलों के साथ मजबूत और व्यापक गठजोड़ के मध्यम से राजनैतिक विस्तार के आधार पर, 1991, 1996 और 1998 के चुनावों में भाजपा और उसके सहयोगियों ने लगातार विकास किया था और क्षेत्रीय विस्तार के कारण राजग प्रतिस्पर्धी बन गया और यहां तक कि उसने कांग्रेस की बहुलता वाले क्षेत्रों जैसे उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और असम में भी सबसे ज्यादा वोट प्राप्त किए थे। ये कारक 1999 के चुनाव परिणामों में निर्णायक साबित हुए।

6 अक्टूबर को आए परिणाम में राजग को 298 सीटें मिलीं, कांग्रेस और उसके सहयोगियों को 136 सीटों पर विजय प्राप्त हुई। वाजपेयी ने 13 अक्टूबर को प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ली।

चौदहवीं लोकसभा (2004)

भाजपा के नेतृत्व वाली राजग सरकार ने 2004 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की देखरेख में अपने शासन के पांच साल पूरे किये और 20 अप्रैल से 10 मई 2004 के बीच चार चरणों के चुनाव हुए।

अधिकांश विश्लेषकों का मानना था कि राजग, ''फील गुड फैक्टर'' और अपने प्रचार अभियान ''भारत उदय'' की मदद से, सत्ता विरोधी लहर को हरा देगी और स्पष्ट बहुमत प्राप्त करेगी। भाजपा शासन के दौरान अर्थव्यवस्था में लगातार वृद्धि दिखाई दी थी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विनिवेश को पटरी पर लगाया गया था। भारत के विदेशी मुद्रा भंडार में 100 अरब डॉलर से अधिक राशि जमा थी (दुनिया में सातवें सबसे बड़ा और भारत के लिए एक रिकॉर्ड)। सेवा क्षेत्र ने भी ढेरों नौकरियां उपलब्ध उत्पन्न हुई थीं।

1990 के दशक के अन्य सभी लोकसभा चुनावों की तुलना में इन चुनावों में, दो व्यक्तित्वों का टकराव (वाजपेयी और सोनिया गांधी) अधिक देखा गया क्योंकि वहां कोई तीसरा व्यवहार्य विकल्प मौजूद नहीं था। भाजपा और इसके सहयोगियों का झगड़ा एक तरफ था और कांग्रेस और उसके सहयोगियों का झगड़ा दूसरी तरफ। हालांकि, क्षेत्रीय मतभेद राष्ट्रीय परिदृश्य पर उभरे थे।

भाजपा ने राजग के सदस्य के रूप में चुनाव लड़ा, हालांकि इसके सीटों के बंटवारे को लेकर इसके समझौते राजग के बाहर कुछ मजबूत क्षेत्रीय दलों के साथ भी थे जैसे आंध्र प्रदेश में तेलुगू देशम पार्टी और तमिलनाडु में अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम पार्टी।

कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्तर का विपक्षी मोर्चा बनाने की कोशिश भी हुई। अंत में, कोई समझौता नहीं हो पाया, लेकिन क्षेत्रीय स्तर पर कई राज्यों में कांग्रेस और क्षेत्रीय पार्टियों के गठबंधन हो गया। यह पहली बार था कि कांग्रेस ने संसदीय चुनावों में इस तरह के गठबंधन के साथ चुनाव लड़ा था।

वामपंथी दलों, विशेषकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) और कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, ने अपने मजबूत क्षेत्रों जैसे पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा और केरल में अपने दम पर चुनाव लड़ा और कांग्रेस और राजग दोनों का सामना किया। अन्य राज्यों जैसे पंजाब और आंध्र प्रदेश में उन्होंने कांग्रेस के साथ सीटें बांटी। तमिलनाडु में वे द्रमुक के नेतृत्व वाले जनतांत्रिक प्रगतिशील गठबंधन का हिस्सा थे।

बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी पार्टी ने कांग्रेस या भाजपा दोनों में से किसी के साथ भी जाने से इंकार कर दिया। ये दोनों भारत के सर्वाधिक आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश में आधारित हैं।

हालांकि चुनाव पूर्व भविष्यवाणियों में भाजपा के लिए भारी बहुमत की बात कही गई थी, लेकिन एग्जिट पॉल (चुनाव के तुरंत बाद और गिनती शुरू होने से पहले) में त्रिशंकु संसद की भविष्यवाणी हुई। यह भी आम धारणा है कि जैसे ही भाजपा ने यह मानना आरंभ किया की चुनाव पूरी तरह से उसके पक्ष में नहीं हुए हैं, इसने भाजपा के अभियान का ध्यान इंडिया शाइनिंग से हटाकर स्थिरता के मुद्दों पर केंद्रित कर दिया। जिस कांग्रेस को भाजपा ने 'पुराने ढ़ंग वाली' का नाम दिया था उसे मुख्यत: गरीबों, ग्रामीणों, निचली जातियों और अल्पसंख्यक मतदाताओं का भारी समर्थन मिला जिससे कांग्रेस ने बड़ी जीत हासिल की। इन लोगों को एक विशालकाय मध्यमवर्ग को जन्म देने वाली विगत वर्षों की आर्थिक वृद्धि का कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ।

चुनाव पूर्व भविष्यवाणियों में पराजय के लिए विभिन्न कारणों को जिम्मेदार माना जाता है। राष्ट्रीय मुद्दों की बजाय लोग अपने आसपास के मुद्दों, जैसे पानी की कमी, सूखा, आदि, के बारे में ज्यादा चिंतित थेय और भाजपा के सहयोगी सत्ता विरोधी भावनाओं का सामना कर रहे थे।

13 मई को, भाजपा ने हार को स्वीकार किया और कांग्रेस अपने सहयोगियों की मदद और सोनिया गांधी के मार्गदर्शन में

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

543 में से 335 सदस्यों (बसपा, सपा, एमडीएमके और वाम मोर्चा के बाहरी समर्थन सहित) का बहुमत प्राप्त करने में सफल रही। चुनाव के बाद हुए इस गठबंधन को संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन कहा गया।

सोनिया गांधी ने प्रधानमंत्री बनने से इनकार कर लगभग सभी को हैरान कर दिया। इसके बजाय पूर्व वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह से यह दायित्व उठाने के लिए कहा गया। डॉ. सिंह इससे पहले नरसिंह राव की सरकार में 1990 के दशक की शुरूआत में अपनी सेवाएं दे चुके थे, जहाँ उन्हें भारत की ऐसी पहली आर्थिक उदारीकरण नीति के रचयिताओं में से एक माना जाता था जिसने आसन्न राष्ट्रीय मौद्रिक संकट से उबरने में मदद की थी।

पंद्रहवी वीं लोकसभा (2009)

मई 2009 में, 15वीं लोकसभा के चुनाव के परिणामों की घोषणा की गई। पुनः कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की सरकार बनी। श्रीमती मीरा कुमार लोक सभा अध्यक्ष बनीं।

❑❑❑

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

1. दलीय व्यवस्था के उदभव पर प्रकाश डालिए।

(200 शब्द)

2. किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में दलीय व्यवस्था के योगदान को दर्शाइए।

(200 शब्द)

3. विभिन्न राजनीतिक दलों का उद्‌भव राजनीतिक असंतोष का परिणाम होता है। इस कथन से आप क्या समझते है।

(200 शब्द)

4. वर्ष 1952 और उसके पश्चात् विभिन्न चुनावों में दलीय व्यवस्था के योगदान को चिन्हित कीजिए। इसने किस प्रकार लोकतांत्रिक ढांचे को मजबूत किया।

(300 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अध्याय

6

नेहरू के बाद का काल (1964-84)

परिचय

मई 1964 में नेहरू के निधन ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को पहचानने का एक अवसर उपस्थित किया। देश के अंदर और विदेशों में भी ऐसे कई लोग थे, जो इसके गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो जाने और उत्तराधिकार के सवाल पर कांग्रेस के अंदर गुटबंदी के तूफान से उसके पूरी तरह टूट जाने की भविष्यवाणी किया करते थे। परन्तु सत्ता हस्तांतरण बहुत ही परिपक्व, गरिमापूर्ण और निर्विघ्न तरीके से संपन्न हो गया। इसने भारतीय जनवाद की ताकत को साफतौर पर उजागर कर दिया। शायद नेहरू को भारतीय जनवाद पर इतना विश्वास था, इसलिए उन्होंने अपने उत्तराधिकार का नामजद करने से इनकार कर दिया था।

कांग्रेस संसदीय दल के नेतृत्व, यानी प्रधानमंत्री के पद के लिए दो प्रमुख दावेदार थे-मोरारजी देसाई और लाल बहादुर शास्त्री। देसाई एक वरिष्ठ, अधिक अनुभवी, कुशल प्रशासन एवं नियमनिष्ठ ईमानदार व्यक्ति थे। परंतु अपने दृष्टिकोण से वे अनम्य और कठोर थे। उनके विषय में यह धारणा थी कि वे एक दंभी, अक्खड़, अहसनशील और दक्षिणपंथी व्यक्ति हैं। इसके अलावा वे पार्टी के एक बड़े तबके में बहुत ही अलोकप्रिय थे। इनके मुकाबले शास्त्री सौम्य, व्यवहार कुशल और लचीलेपन स्वभाव के व्यक्ति थे। वे व्यक्तिगत रूप से ईमानदार और अत्यधिक सम्मान प्राप्त व्यक्ति थे।

- उत्तराधिकारी का चुनाव कांग्रेसी नेताओं के एक गुट के निर्देशन में हुआ, जिन्हें सामूहिक रूप से सिंडिकेट के नाम से जाना जाता है। वर्ष 1963 में बने इस गुट में कांग्रेस अध्यक्ष के कामराज और पार्टी के प्रादेशिक क्षेत्रों, जैसे- बंगाल के अतुल्य घोष, बंबई के ए.के.पाटिल, आंध्र प्रदेश के एन. सजीव रेड्डी और मैसूर (कर्नाटक) के एस. निजलिंगप्पा शामिल थे।
- देसाई उनके लिए बिल्कुल अवांछनीय थे। उन्होंने पार्टी में उन्हें ऐसा व्यापक समर्थन हासिल था, जो पार्टी को एकजुट रख सकता था। उन्हें यह आशा भी थी कि शास्त्री उनकी इच्छाओं के प्रति अधिक लचीले होंगे और पार्टी में उनके नेतृत्व को चुनौती नहीं देंगे।
- इस गुट के अलावा अन्य पार्टी नेता भी किस्म के ऐसे कलह से बचना चाहते थे, जिससे पार्टी में मौजूद गुटबाजी और न भड़क पाए। कामराज ने यह पता लगाने की कोशिश की कि किस उम्मीदवार के इर्द-गिर्द पार्टी सांसदों की सबसे व्यापक आम सहमति होगी और यह घोषणा कर दी कि शास्त्री आमतौर पर अधिक स्वीकार्य हैं।
- हालांकि देसाई ने निजी तौर पर यह कहा कि सिंडिकेट ने जोड़-तोड़ से यह निर्णय करवाया है, फिर भी उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया और एक गरिमापूर्ण तरीके से इस प्रतियोगिता से बाहर हो गए। शास्त्री पार्टी सांसदों द्वारा निर्विरोध संसदीय नेता चुन लिए गए और 2 जून, 1964 यानी नेहरू के देहांत के एक सप्ताह के अंदर ही प्रधानमंत्री के रूप में पदासीन कर दिए गए।

शास्त्री काल

अपने राजनीतिक शासन देश के सीमित चरित्र को सुलझाते हुए शास्त्री ने नेहरू के मंत्रिमंडल मे कोई महत्वपूर्ण फेरबदल नहीं किया, सिवाए नेहरू की पुत्री इंदिरा गांधी को यह आग्रह करने के लिए वह सूचना और प्रसारण मंत्री के रूप में मंत्रिमंडल में

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission

शामिल हो जाएं। शास्त्री के अधीन कैबिनेट मंत्रीगण अधिक स्वायत्तता पूर्ण तरीके से कार्य कर रहे थे। उन्होंने पार्टी मामलों या राज्य सरकारों के क्रियाकलाप में भी कोई हस्तक्षेप नहीं किया। अपने प्रशासन के अंतिम दिनों को छोड़कर मोटे तौर पर उन्होने एक छोटा राजनीतिक कद बनाए रखा।

हालांकि उस समय देश को कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा था, परंतु शास्त्री सरकार उनसे निर्णायक तरीके से नहीं निबट सकी। इसके बजाय किसी तरह धारा में बने रहने की नीति का ही पालन किया गया। वर्ष 1965 के आरंभ राजभाषा के रूप में अंग्रेजी बनाम हिंदी का संघर्ष काफी भड़क उठा था। लेकिन केंद्र सरकार इसे प्रभावशाली तरीके से संभालने में नाकामयाब रही और स्थिति को बदतर हो जाने दिया। यद्यपि वर्ष 1966 के आरंभ में इस समस्या को अंततः सुलझा लिया गया, इसी तरह पंजाबी सूबे की मांग तथा गोवा का महाराष्ट्र के साथ विलय का मुद्दा भी सुलगते रहने दिया गया।

भारत-पाक युद्ध एवं अर्थव्यवस्था

पिछले कुछ वर्षों से भारतीय अर्थव्यवस्था कुंठित हो रही थी। औद्योगिक विकास दर में भी कमी आ रही थी और विदेशी मुद्रा भुगतान संतुलन बदतर होता जा रहा था। परन्तु उस समय सबसे कठिन समस्या खाद्यान्नों का भारी अभाव था। कृषि उत्पादन कम हो रहा था, और 1965 में कई राज्य गंभीर सूखे की चपेट में आए गए थे। खाद्यान्नो का आपातकालीन भंडार खतरनाक सीमा तक कम हो गया था। यह बिल्कुल स्पष्ट था कि इस स्थिति से निपटने के लिए दीर्घकालीन उपायों की जरूरत थी। परंतु ऐसे प्रयास नहीं किए जा रहे थे। खासतौर पर खाद्यान्न संपन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने सहयोग करने से साफ इनकार कर दिया था। भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद अमरीका द्वारा खाद्य सहायताएं निलंबित कर दिए जाने के बाद वैधानिक राशन प्रणाली लागू करने के लिए मजबूर होना पड़ा। परंतु इसमें मात्र 7 बड़े शहरों को ही शामिल किया जा सका। जनवरी 1965 में सरकार ने राज्य खाद्य व्यापार निगम का गठन किया। परंतु इसे भी बड़ी मात्रा में अनाज जमा करने मे सफलता नहीं मिल पाई। हालांकि हरित-क्रांति योजना का का शुभारंभ एक सकारात्मक घटना थी, जिसका उद्देश्य कृषि उत्पादन में वृद्धि और दीर्घकालीन रूप से अनाजों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल करना था। लेकिन बाद में इंदिरा गांधी के शासनकाल में ही इस योजना पर जोर-शोर से काम शुरू हो पाया।

- आमतौर पर पार्टी के अंदर और बाहर आलोचकों ने शास्त्री पर अपने 'अनिर्णय के बंदी' होने, सरकारी नीतियों को दिशा देने में असफल होने और यहां तक कि अपने मंत्रिमंडल के साथियों पर भी नियंत्रण रखने में असमर्थ होने का आरोप लगाया।
- सरकारी कामकाज के दबाव और अपने आलोचकों की टिप्पणी से वे इतना अनिश्चित और असमर्थ महसूस करने लगे थे कि जनवरी 1965 के आरंभिक दिनों में उन्होंने एक पत्रकार के साथ अपनी निजी बातचीत में यह शंका जाहिर की कि 'क्या प्रधानमंत्री पद के लिए अपने को उपलब्ध करा कर उन्होंने उचित किया था और क्या इस पद की जिम्मेदारियों को वहन करने की उनमें क्षमता मौजूद थी?
- हालांकि वक्त गुजरने के साथ-साथ शास्त्री अधिक से अधिक स्वाधीन होने लगे थे और अपनी शक्ति का उपयोग करने लगे थे और यह इस हद तक बढ़ गया कि कामराज यह शिकायत करने लगे थे कि महत्वपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया में शास्त्री अकसर उनकी अनदेखी कर देते हैं।
- उत्तरी वियतनाम पर अमरीका बमबारी का विरोध करने वाले पहले देशों की पंक्ति में भारत सरकार शामिल थी। शास्त्री ने अपना एक प्रधानमंत्री सचिवालय अपने प्रमुख निजी सचिव एल.के.झा के नेतृत्व में गठित किया जो मंत्रालयों से स्वतंत्र होकर नीतिगत मामलों में प्रधानमंत्री को सलाह और उसके लिए सूचना के स्त्रोत का कार्य कर सकें यह सचिवालय, जो पी.एम.ओ. (प्रधानमंत्री कार्यालय) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।
- धीरे-धीरे सरकारी नीतियों के निर्माण एवं कार्यान्वयन के मामले में काफी प्रभाव और शक्ति हासिल करने लगा। बाद में इंदिरा गांधी के शासनकाल में यह वस्तुतः एक वैकल्पिक और स्वतंत्र कार्यकारी संस्था के रूप में उभरा। हालांकि अगस्त-सितंबर 1965 के अल्पकालीन भारत-पाक युद्ध के दौरान शास्त्री का वास्तविक क्षण उपस्थित हुआ।

देश के आंतरिक स्थिति

वर्षों से कश्मीर का मुद्दा उबल रहा था, क्योंकि पाकिस्तान इस प्रश्न को फिर से खोलने की मांग कर रहा था और भारत यह मानता था कि भारत का एक अंग होने के कारण यह तय हो चुका मसला था। वर्ष 1965 के शेख अब्दुल्ला के अनुयायियों एवं अन्य असंतुष्ट नेताओं ने कश्मीर की घाटी में अशांति पैदा की।

पाकिस्तान नेतृत्व ने समझा कि हस्तक्षेप के लिए वही सही समय है। खासतौर से चूंकि पाकिस्तान ने अमरीका से हाल में ही अत्याधुनिक सैन्य उपकरण प्राप्त किया था, इसलिए वह अपने को हथियारों के मामले में श्रेष्ठ समझता था। शायद पाकिस्तान सरकार वर्ष 1962 की पराजय के बाद भारत द्वारा अपनी सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत करने के प्रयासों से पहले ही-जो अभी तक अधूरा पड़ा हुआ था- भारतीय सेना का सामना करना चाहती थी।

- पाकिस्तान ने सबसे पहले एक छोटी कार्रवाई द्वारा इस फैसले को परखने की कोशिश की। अप्रैल, 1965 में गुजरात और अरब सागर की सीमा पर कच्छ के रन के दलदल इलाकों मे एक विवादास्पद और असीमांकित इलाके के एक हिस्से पर सैनिक कार्रवाई द्वारा अधिकार जमाकर पाकिस्तान ने भारत की प्रक्रिया जांचने की कोशिश की। वहां एक सैनिक संघर्ष हुआ। लेकिन इस इलाके की जमीनी हालात के कारण भारत का सैनिक जवाब कमजोर और हिचकिचाहटपूर्ण था। ब्रिटेन के हस्ताक्षेप के बाद दोनों पक्ष इस विवाद को अंतर्राष्ट्रीय समझौते के लिए प्रस्तावित करने को सहमत हो गए। दुर्भाग्यवश कच्छ के रन के संघर्ष ने पाकिस्तानी शासकों को एक गलत संकेत दिया। उन्होनें यह निष्कर्ष निकाला कि भारत सरकार और उसकी सेनाएं अभी भी युद्ध के लिए तैयार नहीं हुई है। शास्त्री द्वारा सेना प्रमुख जनरल जे.एन.चौधरी के साथ सलाह मशविरा के बाद दिए गए वक्तव्य पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया कि जब भी भारत-युद्ध के लिए तैयार होगा, तो वह अपनी पंसद के समय और स्थान पर होगा।
- अगस्त में पाकिस्तानी सरकार ने कश्मीर घाटी में अच्छी तरह प्रशिक्षित घुसपैठियों को इस आशा के साथ भेजना शुरू किया कि यहां पाकिस्तान समर्थक विद्रोह खड़ा कर लेने में उन्हें सफलता मिलेगी इसके बाद सैनिक हस्तक्षेप के लिए माहौल तैयार हो जाएगा। पाकिस्तान समर्थित इस घुसपैठ की गंभीरता को समझते हुए शास्त्री ने सेना को यह आदेश दिया कि वह युद्ध विराम रेखा को पार कर जाए और उन दर्रो को बंद कर दे जिनके रास्ते घुसपैठी आकर कारगिल, उरी और हाजी पीर जैसे सामरिक चौकियों पर अपना अधिकार जमाना चाहते थे। इसके साथ ही, 1962 से बिल्कुल भिन्न इस बार पूरा देश सरकार के पीछे हो गया।
- इसके जबाव में 1 सितंबर को पाकिस्तान ने दक्षिण-पश्चिम जम्मू कश्मीर के छंब सेक्टर में टैंक और पैदल सैनिकों से जोरदार हमला किया, जिससे भारत को कश्मीर से जोड़ने वाला एकमात्र सड़क मार्ग खतरे में पड़ गया। शास्त्री ने तत्काल भारतीय सेना को न केवल कश्मीर की सुरक्षा करने, बल्कि पाकिस्तान की सीमा पर लाहौर और सियालकोट तक बढ़ने का आदेश दिया। इस प्रकार दोनों देश एक अघोषित युद्ध में उलझ गए। अमरीका और ब्रिटेन ने तुरंत दोनों देशों को हथियार, खाद्य पदार्थ एवं अन्य प्रकार की आपूर्तियां बंद कर दी। चीन ने भारत को आक्रमणकारी घोषित किया और धमकी भरे शोर मचाएँ। हालांकि भारत के प्रति सहानुभूतिपूर्ण सोवियत संघ ने चीन को पाकिस्तान की मदद के लिए जाने से हतोत्साहित किया।

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा के दबाव के अंदर दोनों ही प्रतिद्वंदी युद्धविराम के लिए सहमत हो गए, जो 23 सितंबर को प्रभाव में आया। युद्ध अधूरा रह गया, जिसमें दोनों ही पक्ष यह विश्वास कर रहे थे कि उन्होंने महत्वपूर्ण जीत हासिल की और दूसरे को भारी क्षति पहुंचाई। इसका एकमात्र प्रभावकारी परिणाम यह हुआ कि कश्मीर घुसपैठ के सहारे अतिक्रमण को नाकाम कर दिया। साथ ही साथ तीन सप्ताह की इस लड़ाई ने दोनों देशों की अर्थव्यवस्थाओं को भारी क्षति पहुंचाई, जो असंख्य जानों और महंगे सैनिक साज-सम्मान की क्षति के अलावा भी बहुत कुछ था। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक संसाधन बर्बाद हो गए और दोनों ही देशों के सैनिक बजट फिर से बढ़ने लगे।

- हालांकि भारत के लोग भारतीय सेना के इस प्रदर्शन पर भारी उल्लास में थे, जिन्होंने उनके उस सम्मान, प्रतिष्ठा और आत्मविश्वास को फिर से वापस किया जो 1962 में भारत-चीन युद्ध के दौरान खो गया था। इसके अतिरिक्त इस लड़ाई के बाद भारत राजनीतिक रूप से कहीं अधिक मजबूत और एकबद्ध होकर उभरा। इसके अलावा भी कई अन्य संतोषजनक पहलू थे। उन घुसपैठियों को कश्मीरी जनता का समर्थन प्राप्त करने में सफलता नहीं मिली और 1947-48 के बाद भारतीय धर्मनिरपेक्षता अपनी पहली महत्वपूर्ण परीक्षा में सफल हुई थी।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- युद्ध के दौरान कोई सांप्रदायिक समस्या नहीं खड़ी हुई; भारतीय मुसलमानों ने तहेदिल से युद्ध की तैयारियों में अपना समर्थन दिया और सेना के अंदर मुसलमानों ने हिंदू, सिख और ईसाई दोस्तों के साथ मिलकर बहादुरीपूर्वक लड़ते हुए पाकिस्तान को निराश किया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप शास्त्री एक राष्ट्रीय हीरो और कद्दावर राजनीतिक हस्ती के रूप में उभरे।
- युद्ध विराम संधि के बाद सोवियत संघ की मध्यस्थता में पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल अयूब खान और शास्त्री 4 जनवरी, 1966 को सोवियत संघ के ताशकंद में मिले और ताशकंद घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किए। इस घोषणापत्र के अनुसार दोनों ही पक्ष सभी हथियाएँ गए इलाकों में वापस होकर युद्ध-पूर्व की स्थिति में फिर से चले जाने के लिए सहमत हो गए।
- भारत के संदर्भ मे इसका अर्थ सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हाजी पीर दर्रा से पीछे हट जाना था, जिसके माध्यम से पाकिस्तानी घुसपैठिए फिर कश्मीर घाटी में आ सकते थे तथा कश्मीर में अन्य सामरिक लाभ छोड़ना शामिल था। शास्त्री इन गैर फायदेमंद शर्तो पर भी तैयार हो गए क्योंकि दूसरा विकल्प दोनों पक्षों के लिए तबाही भरे युद्ध को फिर से शुरू करना ही बचा था।
- इसका अर्थ कश्मीर के मुद्दे पर संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सोवियत संघ का समर्थन खोना एवं उनसे कई प्राकर के सैन्य साज-सामान खासतौर पर मिग हवाई जहाज तथा मध्यम और भारी टैंकों की आपूर्ति से हाथ धोना होता।
- ताशकंद सम्मेलन का अंत बड़ा ही दु:खद हुआ। शास्त्री की, जिन्हें हृदय की बीमारी पहले से थी, ताशकंद में अचानक हृदय गति के रूक जाने से 10 जनवरी को मृत्यु हो गई। उन्होंने मात्र 19 महीने ही प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया था।
- शास्त्री की मृत्यु ने एक बार फिर उत्तराधिकार के मुद्दें को सामने ला खड़ा किया था, दो वर्षों के अंदर यह दूसरा नेतृत्व परिवर्तन था। जो फिर आसानी से पूरा हो गया और इसने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की सुदृढ़ता को साबित कर दिया।
- मोरारजी देसाई एक बार फिर मैदान में थे। कामराज और सिंडिकेट की नापसंदगी कम नहीं हुई थी और उन्होंने अपने आसपास एक ऐसे उम्मीदवार की खोज शुरू की जो देसाई को तो पराजित कर दे पर उनके साए में बना रहे। उन्हें इंदिरा गांधी पसंद आई। वह नेहरू की बेटी थी। उनकी एक अखिल भारतीय अपील तथा एक प्रगतिशील छवि थी और किसी एक राज्य, क्षेत्र, जाति अथवा धर्म की प्रतिनिधि के रूप में नहीं पहचानी जाती थी।
- उन्होंने यह भी सोचा कि इंदिरा गांधी एक गैर अनुभवी, युवा महिला एवं पार्टी के अंदर कोई खास पकड़ नहीं रखने के कारण कहीं अधिक आज्ञाकारी और मननशील होगी। कामराज ने ही इनके चुनाव का मंच संचालन किया।
- दरअसल चुनाव का फैसला उसी समय हो गया था जब 14 मुख्यमंत्रियों में से 12 मुख्यमंत्रियों ने अपना समर्थन फैसला प्रकट कर दिया। उन्हें यह आशा थी कि अपने राज्य को चलाने के लिए इससे कहीं अधिक शक्ति प्राप्त हो जाएगी और इंदिरा गांधी की जनछवि को भुनना तथा उसके साथ नेहरू के नाम के जुड़े होने के कारण आगामी चुनावों में मतदाताओं को आकर्षित करने में मदद मिलेगी।

इस बार आम सहमति की प्रक्रिया नहीं लागू हो पाई क्योंकि देसाई ने चुनाव कराने पर जोर दिया। उन्हें यह विश्वास था कि अपनी वरिष्ठता और पार्टी में अपने स्थान के कारण वे जरूर जीतेंगे। खासतौर पर इसलिए भी कि उनकी विरोधी, जैसा कि उन्होंने खुद कहा, 'एन निरी छोकरी' थी। कांग्रेस संसदीय पार्टी की बैठक 19 जनवरी, 1996 को हुई जिसमें गुप्त मतदान हुआ और इंदिरा गांधी ने देसाई को 169 के मुकाबले 355 वोटों से हराया। उनका औरत होना कोई बाधा नहीं बनी क्योंकि स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं ने काफी सक्रिय भूमिका निभाई थी और हजारों की संख्या में जेल गई थी। उसमें से कइयों ने अध्यक्ष पद समेत कांग्रेस में काफी ऊंचा स्थान प्राप्त किया था। स्वतंत्रता के बाद भी उन्होंने गवर्नर तथा राज्यों एवं केन्द्र मे कैबिनेट मंत्री तक का ऊंचा पद प्राप्त किया था। इसमें खासतौर पर भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री पद भी शामिल था।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOUT IAS

इंदिरा गांधी: आरंभिक वर्ष

इंदिरा गांधी सरकार ने कई ऐसी गंभीर समस्याओं का सामना किया जो लंबे समय से चली आ रही थी। जिस पर तत्काल ध्यान और उनके समाधान की जरूरत थी। पंजाब उफान पर था तथा नागा एवं मीजो क्षेत्र बगावत कर रहे थे। उन्होंने इन समस्याओं को प्रभावशाली तरीके से निबटाने के लिए पंजाबी सूबा की मांग स्वीकार कर ली और नागा एवं मीजो बागियों के साथ दृढ़ता के साथ निबटते हुए समझौता करने तथा नागा विद्रोहियों की स्वायत्तता को स्वीकार करने की इच्छा दिखाई।

- हालांकि आर्थिक स्थिति काफी जटिल थी। अर्थव्यवस्था में काफी मंदी थी और वह तेजी से गिरावट की तरफ जा रही थी। औद्योगिक उत्पाद और निर्यात दोनों ही कम हो रहे थे। वर्ष 1966 में दूसरे वर्ष लागतार बारिश नहीं हुई और वर्ष 1965 के मुकाबले में भी कहीं अधिक गंभीर सूखा पड़ा था। इसके परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति उछाल ले रही थी और गंभीर खाद्य संकट पैदा हो रहा था। देश के बड़े हिस्से में खासकर बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में सूखे की स्थिति बनी हुई थी।
- वर्ष 1962 और वर्ष 1965 के युद्धों तथा पाकिस्तान-चीन सैनिक सहयोग के कारण सैनिक खर्चे में तीखी वृद्धि हुई थी, जिससे बहुत सारा संसाधन नियोजन एवं आर्थिक विकास से बाहर हो गया था। बजट घाटा बढ़ रहा था। जिससे चौथी पंचवर्षीय योजना खतरे में पड़ गई थी। इस स्थिति मे बहुत ही कठोर निर्णयो की आवश्यकता थी और उन्हें दृढ़ता से लागू किया जाना जरूरी था। परंतु सरकार ढुलमुल, निर्णय लेने में धीमी और उससे भी ज्यादा उन्हें लागू करने में बहुत ही अप्रभावी एवं अकुशल थी।
- खासतौर पर यह अपना विशाल, फैला हुआ प्रशासनिक खर्च कर्म नहीं कर पा रही थी, जिसकी ऐसी वित्तीय स्थिति में सख्त जरूरत थी।
- हालांकि सरकार सूखा और अकाल से निबटने से प्रशसंनीय तरीके से सफल रही। खाद्यान्नों की वसूली और वितरण तथा अकाल से होने वाली मौतों को रोकने का काम युद्ध स्तर पर किया गया। उपनिवेशीय काल में इससे भी कम तीव्रता के अकाल एवं सूखों में लाखों लोगों की मृत्यु की तुलना में इस बार काफी कम मृत्यु हुई। यह भारतीय जनवाद के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

आर्थिक स्थिति

आर्थिक स्थिति में गिरावट से निबटने तथा खाद्यान्नों के आयात को बढ़ावा देने के लिए सरकार द्वारा उठाया गया एक निर्णायक कदम उल्टा साबित हुआ और श्रीमती गांधी द्वारा लिए गए कुछ आरंभिक निर्णयों में कुछ विवादास्पद साबित हुए। भारत का निर्यात बढ़ नहीं रहा था उस समय होने वाले निर्यातों पर भी केंद्रीय खजाने से भारी सब्सिडी दी जाती थी। इंदिरा गांधी के सलाहकारों ने यह तर्क दिया कि ऐसा रूपए के बहुत अधिक मूल्य निर्धारित किए जाने के कारण था। और यदि रूपए का अवमूल्यन कर दिया जाए, तो अति आवश्यक विदेशी पूंजी का वृहत्तर प्रवाह आना शुरू हो जाएगा। भारत अपने खाद्य सुरक्षा के लिए पी-एल 480 सहायता कार्यक्रम के अंतर्गत अमरीका से आयात किए जाने वाले गेहूं पर भारी रूप से आश्रित था। इसके अलावा विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से उस आर्थिक मदद को फिर से शुरू करने की तत्काल आवश्यकता थी जो भारत-पाक युद्ध के दौरान रोक दी गई। अमरीका विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने रूपए के अवमूल्यन करने पर जोर डाला। फलस्वरूप भारत सरकार ने छह जून को रूपए का 35.5 प्रतिशत अवमूल्यन कर दिया। इस समय श्रीमती गांधी को सत्ता में आए सिर्फ चार महीने हुए थे।

निर्णय का प्रतिरोध

इस निर्णय के खिलाफ पूरे देश में गुस्से से भरे विरोध प्रदर्शन हुए। हर प्रकार के राजनीतिक विचार रखने वालों ने इस कदम का विरोध किया। सबसे तीखी आलोचना वामपंथी समूह और दलों ने की। ज्यादातर बुद्धि जीवियों ने भी इसका विरोध किया। कामराज ने इस तथ्य पर भी नाराजगी जताई कि इस निर्णय को लेने से पहले उनसे सलाह नहीं ली गई। कांग्रेस पार्टी के अंदर के आलोचकों ने यह महसूस किया कि ऐसा विवादास्पद और अलोकप्रिय निर्णय चुनावों के वर्ष में नहीं लिया जाना चाहिए था।

इस बात पर भी व्यापक असंतोष था कि सरकार ने विदेशी दबाव में आकर काम किया। ऊपर से विसंगति यह कि अवमूल्यन निर्यात बढ़ाने तथा विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के अपने घोषित लक्ष्य को भी पूरा करने मे असफल रहा। इसने खाद्य पदार्थ और विदेशी सहायता को भी महत्वपूर्ण रूप से नहीं बढ़ाया। कई वर्षो बाद वर्ष 1980 में श्रीमती गांधी ने यह स्वीकार किया कि 'अवमूल्यन करना एक गलत चीज थी और उसने हमें बहुत क्षति पहुंचाई'।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE

विदेश नीति

सत्ता में आने के कुछ महीनों बाद श्रीमती गांधी ने विदेशी मामलों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम उठाए। चूंकि अमरीका गेहूं वित्तीय सहायता और पूंजी निवेश की तत्काल सख्त जरूरत थी, इसलिए उन्होंने सबसे पहले संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ दोस्ती बढ़ाने की बहुत कोशिश की। खासतौर पर मार्च 1996 में उनके वाशिंगटन दौरे मे ऐसे प्रयास किए गए। राष्ट्रपति जॉनसन ने वादा किया कि वे भारत को पी.एल.-480 के तहत 35 लाख टन अनाज भेजेंगे ओर साथ ही नौ सौ मिलियन डॉलर की सहायता भी देंगे। परंतु भारत को वास्तव में भेजा जाने वाला अनाज अनियमित रूप से और छोटी किश्तों में आता रहा।

- इसके अलावा अमरीकी राष्ट्रपति ने भेजी जाने वाली अनाज की मात्रा और समय को 'टन-दर-टन' के आधार पर अपने नियंत्रण मे बनाए रखा और इस प्रकार यह निश्चित करना चाहा कि 'भारत अपनी कृषि नीति बदले' और साथ ही वियतनाम पर अपनी स्थिति भी। इंदिरा गांधी ने अमरीका के इस 'जहाज से मुंह तक' की नीति से बहुत ही अपमानित महसूस किया और इस प्रकार के खुलेआम दबाव तथा घटिया व्यवहार के सामने झुकने से इनकार कर दिया।
- उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया कि इस नाजुक स्थिति से जितनी जल्दी संभव हो, निकलना चाहिए। दरअसल भारत ने इसके बाद फिर अमरीका से इतने कठिन शर्तों पर निकट आने की कभी कोई कोशिश नहीं की।
- इंदिरा गांधी की अमरीका के साथ हुई निराशा की अभिव्यक्ति विदेशनीति के स्तर पर हुई। उन्होंने अपने को उस देश से दूर रखना शुरू कर दिया। मार्च-अप्रैल 1966 में अपनी वांशिंगटन यात्रा के दौरान वे वियतनाम मुद्दें पर चुप रहीं। परंतु अब जुलाई 1966 में उन्होंने उत्तर वियतनाम और इसकी राजधानी हनोई पर अमरीका की बमबारी की भर्त्सना करते हुए वक्तव्य दिया। जुलाई के उत्तरार्ध में उन्होंने मास्को में सोवियत संघ के साथ एक संयुक्त वक्तव्य पर हस्ताक्षर किए जिसमें तत्काल और बिना किसी शर्त अमरीकी बमबारी को समाप्त करने की मांग की गई ओर वियतनाम में अमरीकी कार्रवाई को 'साम्राज्यवादी आक्रमण' की संज्ञा दी गई।
- वाशिंगटन में श्रीमती गांधी अमरीका द्वारा एक 'इंडो-अमेरिकन एजुकेशन फंड' की स्थापना के लिए सहमत हो गई थीं, जिसे पी.एल.-480 के तहत जमा रूपए कोष से 300 मिलियन डॉलर तक की राशि का इस्तेमाल करते हुए चलाया जा सकता था उन्होनें अब इस प्रस्ताव का परित्याग कर दिया, जितना आंशिक रूप से एक कारण यह भी था कि भारतीय बुद्धिजीवियों के एक बड़े तबके खासकर कांग्रेस के अंदर और बाहर के वामपंथियों ने इसकी बहुत कटु आलोचना की, क्योंकि इसे अमरीका द्वारा भारत की उच्च शिक्षा और शोध कार्यो में घुसपैठ एवं नियंत्रण करने की कोशिश के रूप में देखा जा रहा था।
- श्रीमती गांधी ने मिस्र के नासिर और यूगोस्लाविया के टीटो के साथ निकट संबंध विकसित किए ओर गुटनिरपेक्ष देशों द्वारा आपस में राजनीतिक और आर्थिक सहयोग बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर देना शुरू किया ताकि अमरीका और पश्चिमी देशो से खड़े नव-उपनिवेशवाद के खतरे का मुकाबला किया जा सके।
- सोवियत संघ द्वारा पाकिस्तान के साथ दोस्ती बढ़ाने और भारत एवं पाकिस्तान दोनों से समान दूरी बनाए रखने के सोवियत रवैये से चिंतित होकर श्रीमती गांधी ने सोवियत नेताओं को भारत की तरफ से एक मैत्री के लिए आश्वस्त किया। उन्होंने चीन के साथ ही बातचीत शुरू करने की इच्छा जताई, परंतु इस समय तक चीन-भारत संबंधों में आई कटुता पिछला नहीं पाई थी। आमतौर पर वाशिंगटन असफलता के बाद उन्होंने विदेशी मामलों में एक कठोर स्वतंत्रता की नीति का पालन किया।

देश की आंतरिक स्थिति

जिस समय इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री के रूप में शपथ दिलाई जा रही थी, उस समय जन आंदोलनों-प्रदर्शन, छात्र हड़ताल, दंगे, सरकारी कर्मचारियों द्वारा आंदोलन की एक लहर सी चल रही थी। ये आंदोलन अक्सर हिंसक हो उठते थे। बंद के आयोजनों के रूप मे एक नई चीज सामने आई, जो शहरों, महानगरों या संपूर्ण राज्य के काम-काज ठप्प करने की कोशिश करती थी। आंदोलनकारी भीड़ लाठी लिए पुलिस वालों के साथ अक्सर उलझकर कानून और व्यवस्था तोड़ देती थी कई बार सेना बुलानी पड़ी। इन लाठी चार्जो और पुलिस फायरिंग ने प्रशासन को और भी बदनाम कर दिया।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- शिक्षकों और अन्य मध्यवर्गीय पेशेवर लोग, जैसे डॉक्टर और इंजीनियर भी हड़तालियों और आंदोलनकारियों की कतार में शामिल होने लगे, जिनकी मांगे कीमतों मे अचानक वृद्धि का मुकाबला करने के लिए ऊंचा वेतन तथा महंगाई भत्ता आदि से संबंधित होती थी। प्रशासन एवं सत्ताधारी राजनीतिक नेतृत्व में जनता का विश्वास घटता ही जा रहा था।
- विपक्षी पार्टियां, खासकर सीपीएम, समाजवादी और जनसंघ ने जनता की इस मनोदशा का पूरा फायदा उठाते हुए सरकार के लिए लगातार परेशानी पैदा करते रहे और उन्होंने बंद तथा अन्य प्रकार के आंदोलनो को संगठित करने में अग्रणी भूमिका निभाई।
- उनमें से कुछ लोगों का यह विश्वास था कि प्रशासनिक ढांचे के ध्वस्त हो जाने से बनी परिस्थिति उन्हें चुनाव अथवा गैर-संसदीय या गैर संवैधानिक उपायों से सत्ता में आने में मदद करेगी। परिणामस्वरूप अक्सर वे जनतांत्रिक सीमाओं और संवैधानिक मर्यादाओं को लांघ जाते थे।
- वर्ष 1966 का वर्ष एक संस्था के रूप में संसद के पतन की शुरूआत का गवाह भी बना। संसद के अंदर विपक्ष के कुछ सदस्य संदीय शिष्टाचार और आचरणों को पूरी तरह से ताक पर रखते हुए लगातार व्यवधान उत्पन्न करते और अनुशासनहीनता दिखाते रहे।
- कई बार युवा प्रधानमंत्री को पद के अनुरूप सम्मान प्रदान नहीं किया जाता था। उन्हें अक्सर कई तरीके से परेशान और तंग किया जाता था। उन पर गंदे व्यक्तिगत आक्षेप और अनैतिक टिप्पणियां की जाती थीं, जिसमे पुरूषवादी अहंकार, कामुक संकेत और निराधार अरोप भरे होते थे। डॉ. राममनोहर लोहिया उनका मजाक उड़ाने का कोई अवसर नहीं चूकते थे और उन्हें 'गूंगी गुड़िया' कहा करते थे।

यहां तक कि पार्टी के अंदर भी उन्हें काफी मुसीबत भरी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। इसके अलावा कांग्रेस के जनसमर्थन का काफी क्षय हो चुका था, पार्टी का पतन हो रहा था और यह निष्क्रिय होती जा रही थी। पार्टी में गुटबाजी लगातार बढ़ रही थी और हरेक स्तर पर गुटों के बीच प्रतिद्वंद्विता शुरू हो गई थी, जिसके कारण करीब-करीब हरेक राज्य मे विक्षुब्ध गुटों का निर्माण हो रहा था। स्वयं श्रीमती गांधी की स्थिति पार्टी के अंदर कमजोर और असुरक्षित बनी हुई थी। प्रधानमंत्री बनने के बाद वह अपनी पसंद से अपने मंत्रिमंडल का चुनाव तक नहीं कर पाई थी और सभी महत्वपूर्ण मंत्रालय-गृह, रक्षा, वित्त, विदेश और खाद्य उन्हें ज्यों-का-त्यों बिना किसी परिवर्तन के छोड़ देना पड़ा। पार्टी अध्यक्ष के कामराज एवं सिंडिकेट लगातार प्रधानमंत्री के विरूद्ध पार्टी संगठन की महत्ता पर जोर डाल रहे थे। वे पार्टी के नीति-निर्धारण और अनुपालन के लिए की जाने वाली कार्रवाइयों में श्रीमती गांधी की स्वतंत्रता को सीमित करना चाहते थे। उन्होने पार्टी के अंदरूनी मामलों एवं संसदीय चुनावों के लिए उम्मीदवारों के चयन में भी उन्हें कोई खास महत्व नहीं दिया। इंदिरा गांधी को यह सब बर्दास्त करना पड़ा क्योंकि 1967 एक चुनाव वर्ष था। इसके अलावा एक राजनीतिक नेता के रूप में उनकी दो मुख्य कमजोरियां थी: वह एक नेता के रूप मे बिल्कुल प्रभावहीन थी और उनके विरोधी संसदीय पार्टी यहां तक कि मंत्रिमंडल के अंदर उन्हें अलग-थलग करने में अक्सर सफल हो जाते थे। और दूसरा उनमें 'विचारधारात्मक धड़ों' की कमी थी।

वर्ष 1967 के आम चुनाव एवं प्रादेशिक गठबंधन

फरवरी 1967 मे लोकसभा एवं प्रदेश विधानसभाओं के लिए हुए चौथे आम चुनावों का भारतीय राजनीति पर मूलगामी प्रभाव पड़ा। चुनावों की तैयारियां और चुनाव कई महत्वपूर्ण विशेषताओं से भरे थे।

कांग्रेस पार्टी अपना जनादेश खो चुकी थी और समाजिक एवं संस्थागत परिवर्तन की पार्टी के रूप में उसका चरित्र और प्रेरणा चुक गई थी। बड़े पैमाने पर इससे लोगों का मोहभंग हो चुका था जिसका कारण खासतौर से इसे बड़े नेताओं के बीच भ्रष्टाचार एवं उनकी विलासितापूर्ण जीवन शैली थी। क्षेत्रीय एवं स्थानीय कांग्रेस के मठाधीशों में कई ऐसे थे, जिनके बारे में लोग यह महसूस करते थे कि वे सिफ कुर्सी के पुजारी हैं जो हमेशा राजनीतिक जोड़-तोड़ और गुटबाजी मे लीन रहते हैं। इसके साथ ही लोग इसलिए भी ज्यादा निराशा महसूस करते थे, क्योंकि कोई भी पार्टी नहीं थी, जो कांग्रेस की जगह ले सके। विपक्षी पार्टियों ने चुनाव प्रचार के दौरान किसी मूलभूत सामाजिक मुद्दें को नहीं उठाया। उन्होंने मूलरूप से कांग्रेस को हराने के प्रश्न पर अपना

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

प्रश्न चलाया। हालांकि लोगों के अंदर जब महान राजनीतिक जागृति आ चुकी थी। वर्ष 1967 में मतदाताओं का 61.1 प्रतिशत हिस्सा वोट डालने आया, जो अब तक का सबसे अधिक प्रतिशत माना जा सकता है।

विपक्षी दलों का उद्‌य

वर्ष 1967 के चुनाव की सबसे बड़ी विशेषता विपक्षी दलों का एक जगह आना था। उनमें से कुछ ने कुछ राज्यों में कांग्रेस विरोधी मोर्चे का गठन किया। कुछ अन्य मामलों में उन्होंने सीटों और तालमेल और आपसी प्रतियोगिताओं को दरकिनार कर कई प्रकार से चुनावी समझौते किए। अक्सर कांग्रेस पार्टी के विक्षुब्ध नेता और अन्य समूहों ने इस प्रक्रिया मे हिस्सा लिया। परंतु करीब-करीब मामलो में ये पार्टियां विचारधारा और कार्यक्रम के आधार पर एक दूसरे से भारी विरोध रखती थी। उन्हें आपस में जोड़ने वाली एकमात्र चीज कांग्रेस को पराजित करने की इच्छा मात्र ही थी। इस मामले में लोहियावादी समाजवादी सबसे अधिक असयंमी थे। वे सांप्रदायिक जनसंघ और दक्षिणपंथी स्वतंत्र पार्टी से भी हाथ मिलाने से भी बिलकुल नहीं हिचकिचाए। इसी प्रकार अन्य राज्यों में धर्मनिरपेक्ष स्वतंत्र पार्टी और सांप्रदायिक जनसंघ ने हाथ मिलया। कुछ राज्यों मे कम्युनिस्टों और दक्षिणपंथियों के बीच की खाई भी पट गई थी। तमिलनाडु में स्वतंत्र, सीपीएम, मुसलिम लीग तथा जाति अहंकारवादी डीएमके सहयोगी बने। केरल में सीपीएम और मुसलिम लीग ने हाथ मिलाया जबकि पंजाब में जनसंघ, अकाली और सीपीएम थे।

- चुनाव के नतीजे बहुत नाटकीय थे और कांग्रेस को भारी झटका लगा। हालांकि लोकसभा पर नियंत्रण इसने बनाए रखा और 520 में से 284 सीटें हासिल की, परन्तु इसका बहुमत काफी कम हो गया। वर्ष 1962 में 228 सीटों के मुकाबले अब बहुमत 48 सीटों का रह गया। पश्चिम बंगाल और केरल को छोड़कर, जहां वामपंथी दलों को फायदा हुआ था, बाकी सभी जगहों पर कांग्रेस के ह्रास का फायदा सांप्रदायिक, सामंती, दक्षिणपंथी और क्षेत्रीय दलों को हुआ।
- कांग्रेस ने 8 राज्यों - बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मद्रास और केरल की विधानसभाओं में अपना बहुमत खो दिया। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश ओर हरियाणा में जनसंघ, उड़ीसा, राजस्थान, आंध्र प्रदेश और गुजरात में स्वतंत्र पार्टी तथा बिहार में एसएसपी एवं पश्चिम बंगाल तथा केरल में कम्युनिस्ट मुख्य विपक्षी दल उभरे।

नक्सलवाद

सीपीएम संयुक्त सीपीआई से सन् 1964 में मूलत: क्रांतिकारी राजनीति (अक्सर जिसका अर्थ सशस्त्र संघर्ष से लगाया जाता था) और सुधारवादी संसदीय राजनीति के मुद्दों के आधार पर अलग हो गई थी। परंतु व्यवहार में मौजूदा राजनीतिक सच्चाइयों को समझते हुए सीपीएम ने भी संसदीय राजनीति में जमकर हिस्सा लिया और सशस्त्र संघर्ष को उस दिन के लिए टाल दिया गया जिस दिन देश में क्रांतिकारी परिस्थिति तैयार हो जाएगी। परिणामस्वरूप उसने वर्ष 1967 के चुनावों में हिस्सा लिया और प. बंगाल में बंगाल कांग्रेस के साथ मिलकर एक गठबंधन सरकार का गठन किया, जिसमें सीपीएम के नेता ज्योति बसु गृहमंत्री बने। फलस्वरूप पार्टी में फूट पड़ गई।

- पार्टी के एक हिस्से, जिसमें चीन में चलने वाली संस्कृति क्रांति से प्रभावित इसके युवा कार्यकर्ता मौटे तौर पर शामिल थे, ने पार्टी के नेतृत्व पर यह आरोप लगाया कि वह भी सुधारवाद और संसदीयवाद के शिकार हो गए हैं और इसलिए क्रांति के साथ गद्‌दारी कर रहे हैं। उन्होंने यह दलील दी कि पार्टी को इसके बदले तत्काल की ग्रामीण इलाकों मे सशस्त्र कृषक विद्रोहों की शुरूआत करनी चाहिए जिसके परिणामस्वरूप मुक्त क्षेत्रों का गठन होगा और धीरे-धीरे संपूर्ण देश में सशस्त्र संघर्ष फैल जाएगा। अपनी राजनीतिक समझ को लागू करने के लिए बागी सीपीएम नेताओं ने उत्तरी पश्चिम बंगाल के एक छोटे से नक्सलबाड़ी इलाके में किसान विद्रोह की शुरूआत की। सीपीएम नेतृत्व में तत्काल बागी नेताओं को यह आरोप लगाते हुए निष्कासित कर दिया कि वे वामपंथी दुस्साहसवाद के शिकार हो गए हैं।

सीपीएम एवं नक्सलवादी

सीपीएम ने पार्टी संगठन और सरकारी मशीनरी का उपयोग नक्सलवादी विद्रोह को दबाने के लिए किया। सीपीएम के इन बागी नेताओं को नक्सलाइट के नाम से जाना गया, जिसमें शीघ्र ही पूरे देश में सीपीएम के ऐसे अनेक गुट शामिल हो गए। नक्सलाइट आंदोलन ने अनेक ऐसे युवकों, खासतौर से कॉलेज और विश्वविद्यालयों के छात्रों को आकर्षित किया, जो मौजूदा राजनीति से असंतुष्ट थे और वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों से नाराजगी महसूस करते थे तथा उग्र सुधारवादी नक्सलवादी नारों की तरफ आकर्षित हो रहे थे।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in

चारू मजुमदार एवं कम्युनिस्ट

वर्ष 1969 में चारू मजूमदार के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी लेनिनवादी का गठन हुआ। आंध्र, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब और केरल में भी इसी प्रकार की पार्टियों और गुटों की स्थापना हुई। सीपी (एमएल) एवं अन्य नक्सलवादी गुटों ने यह दलील दी कि भारत में जनवाद मात्र एक ढोंग है, भारतीय राजसत्ता फॉसिस्ट है, भारत के कृषक संबंध फलतः अभी तक सामंती ही है, भारत के बड़े पूंजीपति मात्र दलाल पूंजीपति है।

- भारत पर अमरीका, ब्रिटेन और सोवियत साम्राज्यवाद का आर्थिक और राजनीतिक वर्चस्व है, भारतीय आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का अभी तक उपनिवेशवादी है, भारतीय क्रांति अभी तक अपने सम्राज्यवाद विरोधी सामंतवाद विरोधी चरण में है और चीनी मॉडल के आधार पर चलाए जाने वाला दीर्घकालीन गुरिल्ला युद्ध में भारत में क्रांति का स्वरूप होगा।
- नक्सलवादी को चीनी सरकार से राजनीतिक और विचारधारात्मक समर्थन प्राप्त था, परंतु वे सीपी (एमएल) द्वारा दिए गए नारे- ''चीन का चेयरमैन (माओत्से-तुंग) हमारा चेयरमैन है'' ऊपर बहुत नाराज थे।
- सीपी (एमएल) एवं अन्य नक्सल गुट कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में सशस्त्र कृषक दस्ता संगठित करने और पुलिस कर्मियों एवं प्रतिद्वंदी कम्युनिस्टों के ऊपर शासक वर्ग के एजेंट कहकर हमला करने में सफल रहे। हालांकि सरकार इन्हें कुचल डालने और उनका प्रभाव के कुछ छोटे हिस्सों तक सीमित करने में सफल रही।
- सरकारी दमन का सामना न कर सकने के कारण नक्सलवादी शीघ्र ही कई छोटे-छोटे गुटों और समूहों में बंट गए परंतु उनकी असफलता का मुख्य कारण भारतीय यथार्थ में अपने क्रांतिकारी तेवर की बुनियाद रखने की असफलता तथा भारतीय समाज और राजनीति के असली चरित्र को न समझने, किसानों और उग्र सुधारवादी मध्यवर्गीय युवाओं के बीच अपने सामाजिक आधार को विस्तार दे पाना ही था।
- वर्ष 1960-1970 के दशकों की सांस्कृतिक क्रांति तथा माओवाद की नीतियों की उत्तर-माओवादी चीनी नेतृत्व द्वारा अस्वीकृति भी भारतीय राजनीति के अंदर एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में नक्सलवादी आंदोलन के धाराशायी हो जाने के कारण बना।

आपातकाल की पृष्ठभूमि

वर्ष 1967 के बाद से भारतीय राजनीति में जो बदलाव आ रहे थे। इंदिरा गांधी एक कद्दावर नेता के रूप में उभरी थीं और उनकी लोकप्रियता अपने चरम पर थी। इस दौर में दलगत प्रतिस्पर्धा कहीं ज्यादा तीखी और ध्रुवीकृत हो चली थी। इस अवधि में न्यायपालिका और सरकार के आपसी रिश्तों में भी तनाव आए। सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार की कई पहलकदमियों को संविधान के विरुद्ध माना। कांग्रेस पार्टी का मानना था कि अदालत का यह रवैया लोकतंत्र के सिद्धांतों और संसद की सर्वोच्चता के विरुद्ध है। कांग्रेस ने यह आरोप भी लगाया कि अदालत एक यथास्थितिवादी संस्था है और यह संस्था गरीबों को लाभ पहुंचाने वाले कल्याण-कार्यक्रमों को लागू करने की राह में रोड़े अटका रही है। कांग्रेस के विपक्ष में जो दल थे, उन्हें लग रहा था कि सरकारी प्राधिकार को निजी प्राधिकार मानकर इस्तेमाल किया जा रहा है और राजनीति हद से ज्यादा व्यक्तिगत होती जा रही है। कांग्रेस की टूट से इंदिरा गांधी और उनके विरोधियों के बीच मतभेद गहरे हो गए थे।

आर्थिक संदर्भ

वर्ष 1971 के चुनाव में कांग्रेस ने 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया था। बहरहाल, वर्ष 1971-72 के बाद के सालों में भी देश की सामाजिक-आर्थिक दशा में खास सुधार नहीं हुआ। बांग्लादेश के संकट से भारत की अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ पड़ा था। लगभग 80 लाख लोग पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पार करके भारत आ गए थे। इसके बाद पाकिस्तान से युद्ध भी करना पड़ा। युद्ध के बाद अमेरिका ने भारत को हर तरह की सहायता देना बंद कर दिया। इसी अवधि में अंतर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतों में कई गुना बढ़ोत्तेरी हुई। इससे विभिन्न चीजों की कीमतें भी तेजी से बढ़ीं। वर्ष 1973 में चीजों की कीमतों में 23 फीसदी और वर्ष 1974 में 30 फीसदी का इजाफा हुआ। इस तीव्र मूल्यवृद्धि में लोगों को भारी कठिनाई हुई।

- औद्योगिक विकास की दर बहुत कम थी और बेरोजगारी बहुत बढ़ गई थी। ग्रामीण इलाकों में बेरोजगारी बेतहाशा बढ़ी थी। खर्चे को कम करने के लिए सरकार ने अपने कर्मचारियों के वेतन को रोक लिया। इससे सरकारी कर्मचारियों में बहुत असंतोष पनपा।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

- वर्ष 1972-73 के वर्ष में मानसून असफल रहा। इससे कृषि की पैदावार में भारी गिरावट आई। खाद्यान्न का उत्पादन 8 प्रतिशत कम हो गया। आर्थिक स्थिति की बदहाली को लेकर पूरे देश में असंतोष का माहौल था। इस स्थिति में गैर-कांग्रेसी पार्टियों ने बड़े कारगर तरीके से जन-विरोध की अगुवाई की।
- वर्ष 1960 के दशक से ही छात्रों के बीच विरोध के स्वर उठने लगे थे। ये स्वर इस अवधि में और ज्यादा प्रबल हो उठे। संसदीय राजनीति में विश्वास न रखने वाले कुछ मार्क्सवादी समूहों की सक्रियता भी इस अवधि में बढ़ी। इन समूहों के मौजूदा राजनीतिक प्रणाली और पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म करने के लिए हथियार उठाया तथा राज्यविरोधी तकनीकों का सहारा लिया।
- ये समूह मार्क्सवादी-लेनिनवादी (अब माओवादी) अथवा नक्सलवादी के नाम से जाने गये। ऐसे समूह पश्चिम बंगाल में सबसे ज्यादा सक्रिय थे। पश्चिम बंगाल की सरकार ने इन्हें दबाने के लिए कठोर कदम उठाए।

गुजरात और बिहार के आंदोलन

गुजरात और बिहार दोनों ही राज्यों में कांग्रेस की सरकार थी। यहां के छात्र-आंदोलन ने इन दोनों प्रदेशों की राजनीति पर गहरा असर तो डाला ही, राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर भी इसके दूरगामी प्रभाव हुए। वर्ष 1974 के जनवरी माह में गुजरात के छात्रों ने खाद्यान्न, खाद्य तेल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमत तथा उच्च पदों पर जारी भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया। छात्र-आंदोलन में बड़ी राजनीतिक पार्टियां भी शरीक हो गई और इस आंदोलन ने विकराल रूप धारण कर लिया। ऐसे में गुजरात में राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया। विपक्षी दलों ने राज्य की विधानसभा के लिए दोबारा चुनाव कराने की मांग की। कांग्रेस (ओ) के प्रमुख नेता मोरारजी देसाई ने कहा कि अगर राज्य में नए सिरे से चुनाव नहीं करवाए गए तो मैं अनियतकालीन भूख-हड़ताल पर बैठ जाऊंगा। मोरारजी अपने कांग्रेस के दिनों में इंदिरा गांधी के मुख्य विरोधी रहे थे। विपक्षी दलों द्वारा समर्थित छात्र-आंदोलन के गहरे दबाव में वर्ष 1975 के जून में विधानसभा के चुनाव हुए। कांग्रेस इस चुनाव में हार गई।

संसद मार्च (जयप्रकाश नारायण)

आंदोलन का प्रभाव राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ना शुरू हुआ। जयप्रकाश नारायण चाहते थे कि यह आंदोलन देश के दूसरे हिस्सों में भी फैले। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन के साथ ही साथ रेलवे के कर्मचारियों ने भी एक राष्ट्रव्यापी हड़ताल का आह्वान किया। इससे देश के रोजमर्रा के कामकाज के ठप्प हो जाने का खतरा पैदा हो गया। 1975 में जे.पी. ने जनता के 'संसद-मार्च' का नेतृत्व किया। देश की राजधानी में अब तक इतनी बड़ी रैली नहीं हुई थी। जयप्रकाश नारायण को अब भारतीय जनसंघ, कांग्रेस (ओ), भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी जैसे गैर-कांग्रेसी दलों का समर्थन मिला। इन दलों ने जे.पी. को इंदिरा गांधी के विकल्प के रूप में पेश किया। बहरहाल जे.पी. के विचारों और उनके द्वारा अपनाई गई जन-प्रतिरोध की रणनीति की आलोचनाएं भी मुखर हुई। गुजरात और बिहार, दोनों ही राज्यों के आंदोलन को कांग्रेस विरोधी आंदोलन माना गया। कहा गया कि वे आंदोलन राज्य सरकार के खिलाफ नहीं बल्कि इंदिरा गांधी के नेतृत्व के खिलाफ चलाए गए हैं। इंदिरा गांधी का मानना था कि वे आंदोलन उनके प्रति व्यक्तिगत विरोध से प्रेरित हैं।

- वर्ष 1974 के मार्च माह में बढ़ती हुई कीमतों, खाद्यान्न के अभाव, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार के खिलाफ बिहार में छात्रों ने आंदोलन छेड़ दिया। आंदोलन के क्रम में उन्होंने जयप्रकाश नारायण (जे.पी.) को बुलावा भेजा। जे.पी. तब सक्रिय राजनीति छोड़ चुके थे और सामाजिक कार्यों में लगे हुए थे। छात्रों ने अपने आंदोलन की अगुवाई के लिए जयप्रकाश नारायण को बुलावा भेजा था।
- जे.पी. ने छात्रों का निमंत्रण इस शर्त पर स्वीकार किया कि आंदोलन अहिंसक रहेगा और अपने को सिर्फ बिहार तक सीमित नहीं रखेगा। इस प्रकार छात्र-आंदोलन ने एक राजनीतिक चरित्र ग्रहण किया और उसके भीतर राष्ट्रव्यापी अपील आई।
- जीवन के हर क्षेत्र के लोग अब आंदोलन से आ जुड़े। जयप्रकाश नारायण ने बिहार की कांग्रेस सरकार को बर्खास्त करने की मांग की। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दायरे में 'संपूर्ण क्रांति' का आह्वान किया ताकि उन्हीं के शब्दों में 'सच्चे लोकतंत्र' की स्थापना की जा सके। बिहार की सरकार के खिलाफ लगातार घेराव, बंद और हड़ताल का एक सिलसिला चल पड़ा। बहरहाल, सरकार ने इस्तीफा देने से इनकार कर दिया।

PARAMOUNT Mission IAS
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

न्यायपालिका से संघर्ष

न्यायपालिका के साथ इस दौर में सरकार और शासक दल के गहरे मतभेद पैदा हुए। इस क्रम में तीन संवैधानिक मसले उठे थे: क्या संसद मौलिक अधिकारों में कटौती कर सकती है? सर्वोच्च न्यायालय का जवाब था कि संसद ऐसा नहीं कर सकती। दूसरा यह कि क्या संसद संविधान में संशोधन करके संपत्ति के अधिकार में काट-छांट कर सकती है? इस मसले पर भी सर्वोच्च न्यायालय का यही कहना था कि सरकार, संविधान में इस तरह संशोधन नहीं कर सकती कि अधिकारों की कटौती हो जाए। तीसरे, संसद ने यह कहते हुए संविधान में संशोधन किया कि वह नीति-निर्देशक सिद्धांतों को प्रभावकारी बनाने के लिए मौलिक अधिकारों में कमी कर सकती है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रावधान को भी निरस्त कर दिया। इससे सरकार और न्यायपालिका के बीच संबंधों में तनाव आया। आपको याद होगा कि इस संकट की परिणति केशवानंद भारती के मशहूर मुकदमे के रूप में सामने आई।

- इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि संविधान का एक बुनियादी ढांचा है और संसद इन ढांचागत विशेषताओं में संशोधन नहीं कर सकती है।
- दो और बातों ने न्यायपालिका और कार्यपालिका के संबंधों में तनाव बढ़ाया। वर्ष 1973 में केशवानंद भारती के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फैसला सुनाने के तुरंत बाद भारत के मुख्य न्यायाधीश का पद खाली हुआ। सर्वोच्च न्यायालय के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश को भारत का मुख्य न्यायाधीश बनाने की परिपाटी चली आ रही थी, लेकिन 1973 में सरकार ने तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों की अनदेखी करके न्यायमूर्ति ए.एन. रे को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया।
- यह निर्णय राजनीतिक रूप से विवादास्पद बन गया क्योंकि सरकार ने जिन तीन न्यायाधीशों की वरिष्ठता की अनदेखी इस मामले में की थी उन्होंने सरकार के इस कदम के विरुद्ध फैसला दिया। ऐसे में संविधान की व्याख्या और राजनीतिक विचारधाराओं का बड़ी तेजी से घालमेल हुआ।
- जो लोग प्रधानमंत्री के नजदीकी थे वे एक ऐसी 'प्रतिबद्ध' न्यायपालिका तथा नौकरशाही की जरूरत के बारे में बाते करने लगे जो विधायिका और कार्यपालिका की सोच के अनुकूल आचरण करे। इस संघर्ष का चरमबिंदु तब आया जब एक उच्च न्यायालय ने इंदिरा गांधी के निर्वाचन को अवैध घोषित कर दिया।
- 12 जून, 1975 के दिन इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जगमोहन लाल सिन्हा ने एक फैसला सुनाया। इस फैसले में उन्होंने लोकसभा के लिए इंदिरा गांधी के निर्वाचन को अवैधानिक करार दिया। न्यायमूर्ति ने यह फैसला समाजवादी नेता राजनारायण द्वारा दायर एक चुनाव याचिका के मामले में सुनाया था।
- राजनारायण, इंदिरा गांधी के खिलाफ वर्ष 1971 में बतौर उम्मीदवार चुनाव में खड़े हुए थे। याचिका में इंदिरा गांधी के निर्वाचन को चुनौती देते हुए तर्क दिया गया था कि उन्होंने चुनाव-प्रचार में सरकारी कर्मचारियों की सेवाओं का इस्तेमाल किया था।
- उच्च न्यायालय के इस फैसले का मतलब यह था कि कानूनन अब इंदिरा गांधी सांसद नहीं रहीं और अगर अगले छह महीने की अवधि में दोबारा सांसद निर्वाचित नहीं होतीं, तो प्रधानमंत्री के पद पर कायम नहीं रह सकतीं।
- 24 जून, 1975 को सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के इस फैसले पर आंशिक स्थगनादेश सुनाते हुए कहा कि जब तक इस फैसले को लेकर की गई अपील की सुनवाई नहीं होती तब तक इंदिरा गांधी सांसद बनी रहेंगी, लेकिन वे लोकसभा की कार्यवाई में भाग नहीं ले सकती हैं।

संकट और सरकार का फैसला

एक बड़े राजनीतिक संघर्ष के लिए अब मैदान तैयार हो चुका था। जेयप्रकाश नारायण की अगुवाई में विपक्षी दलों ने इंदिरा गांधी के इस्तीफे के लिए दबाव डाला। इन दलों ने 25 जून, 1975 को दिल्ली के रामलीला मैदान में एक विशाल प्रदर्शन किया। जयप्रकाश नारायण ने इंदिरा गांधी से इस्तीफे की मांग करते हुए राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह की घोषणा की। जे.पी. ने सेना, पुलिस और सरकारी कर्मचारियों का आह्वान किया कि वे सरकार के अनैतिक और अवैधानिक आदेशों का पालन न करें। इससे भी सरकारी कामकाज के ठप्प हो जाने का अंदेशा पैदा हुआ। देश का राजनीतिक मिजाज अब पहले से कहीं ज्यादा कांग्रेस के खिलाफ हो गया।

- सरकार ने इन घटनाओं के मद्देनजर जवाब में 'आपातकाल' की घोषणा कर दी। 25 जून, 1975 के दिन सरकार ने घोषणा की कि देश में गड़बड़ी की आशंका है और इस तर्क के साथ उसके संविधान के अनुच्छेद-352 को लागू

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE

कर दिया। इस अनुच्छेद के अंतर्गत प्रावधान किया गया है कि बाहरी अथवा अंदरूनी गड़बड़ी की आशंका होने पर सरकार आपातकाल लागू कर सकती है। सरकार का निर्णय था कि गंभीर संकट की घड़ी आन पड़ी है और इस वजह से आपातकाल की घोषणा जरूरी हो गई है। तकनीकी रूप से देखें तो ऐसा करना सरकार की शक्तियों के दायरे में था क्योंकि हमारे संविधान में सरकार को आपातकाल की स्थिति में विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं।

- आपातकाल की घोषणा के साथ ही शक्तियों के बंटवारे का संघीय ढांचा व्यावहारिक तौर पर निष्प्रभावी हो जाता है और सारी शक्तियां केंद्र सरकार के हाथ में चली आती हैं। दूसरे, सरकार चाहे तो ऐसी स्थिति में किसी एक अथवा सभी मौलिक अधिकारों पर रोक लगा सकती है अथवा उनमें कटौती कर सकती है। संविधान के प्रावधान में आए शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आपातकाल को वहां एक असाधारण स्थिति के रूप में देखा गया है जब सामान्य लोकतांत्रिक राजनीति के कामकाज नहीं किए जा सकते। इसी कारण सरकार को आपातकाल की स्थिति में विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं।
- 25 जून, 1975 की रात में प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से आपातकाल लागू करने की सिफारिश की। राष्ट्रपति ने तुरंत यह उद्घोषणा कर दी। आधी रात के बाद सभी बड़े अखबारों के दफ्तर की बिजली काट दी गई। तड़के सबेरे बड़े पैमाने पर विपक्षी दलों के नेताओं और कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी हुई। 26 जून की सुबह 6 बजे एक विशेष बैठक में मंत्रिमण्डल को इन बातों की सूचना दी गई, लेकिन तब तक बहुत कुछ हो चुका था।

आपातकाल के परिणाम

सरकार के इस फैसले से विरोध-आंदोलन एकबारगी रुक गया। हड़तालों पर रोक लगा दी गई। अनेक विपक्षी नेताओं को जेल में डाल दिया गया। राजनीतिक माहौल में तनाव भरा एक गहरा सन्नाटा छा गया। आपातकालीन प्रावधानों के अंतर्गत प्राप्त अपनी शक्तियों पर अमल करते हुए सरकार ने प्रेस की आजादी पर रोक लगा दी। समाचारपत्रों को कहा गया कि कुछ भी छापने से पहले अनुमति लेना जरूरी है। इसे प्रेस सेंसरशिप के नाम से जाना जाता है। सामाजिक और सांप्रदायिक गड़बड़ी की आशंका के मद्देनजर सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर.एस.एस.) और जमात-ए-इस्लामी पर प्रतिबंध लगा दिया। धरना, प्रदर्शन और हड़ताल की भी अनुमति नहीं थी। सबसे बड़ी बात यह हुई कि आपातकालीन प्रावधानों के अंतर्गत नागरिकों के विभिन्न मौलिक अधिकार निष्प्रभावी हो गए। उनके पास अब यह अधिकार भी नहीं रहा कि मौलिक अधिकारों की बहाली के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाएं।

- सरकार ने निवारक नजरबंदी का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया। इस प्रावधान के अंतर्गत लोगों को गिरफ्तार इसलिए नहीं किया जाता कि उन्होंने कोई अपराध किया है बल्कि इसके विपरीत, इस प्रावधान के अंतर्गत लोगों को इस आशंका से गिरफ्तार किया जाता है कि वे कोई अपराध कर सकते हैं।
- सरकार ने आपातकाल के दौरान निवारण नजरबंदी अधि नियमों का प्रयोग करके बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां कीं। जिन राजनीतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया। वे बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का सहारा लेकर अपनी गिरफ्तारी को चुनौती भी नहीं दे सकते थे।
- गिरफ्तार लोगों अथवा उनके पक्ष से किन्हीं और ने उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में कई मामले दायर किये, लेकिन सरकार का कहना था कि गिरफ्तार लोगों को गिरफ्तारी का कारण बताना कतई जरूरी नहीं है।
- अनेक उच्च न्यायालयों ने फैसला दिया कि आपातकाल की घोषणा के बावजूद अदालत किसी व्यक्ति द्वारा दायर की गई ऐसी बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को विचार के लिए स्वीकार कर सकती है जिसमें उसने अपनी गिरफ्तारी को चुनौती दी हो।
- वर्ष 1976 के अप्रैल माह में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने उच्च न्यायालयों के फैसले को उलट दिया और सरकार की दलील मान ली। इसका आशय यह था कि सरकार आपातकाल के दौरान नागरिक से जीवन और आजादी का अधिकार वापस ले सकती है। सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से नागरिकों के लिए अदालत के दरवाजे बंद हो गए। इस फैसले को सर्वोच्च न्यायालय के सर्वाधिक विवादास्पद फैसलों में एक माना गया।

- आपातकाल की मुखालफत और प्रतिरोध की कई घटनाएं घटीं। पहली लहर में जो राजनीतिक कार्यकर्ता गिरफ्तारी से बच गए थे वे 'भूमिगत' हो गए और उन्होंने सरकार के खिलाफ मुहिम चलायी। 'इंडियन एक्सप्रेस' और 'स्टेट्समैन' जैसे अखबारों ने प्रेस पर लगी सेंसरशिप का विरोध किया। जिन समाचारों को छापने से रोका जाता था उनकी जगह ये अखबार खाली छोड़ देते थे।
- 'सेमिनार' और 'मेनस्ट्रीम' जैसी पत्रिकाओं ने सेंसरशिप के आगे घुटने टेकने की जगह बंद होना मुनासिब समझा। सेंसरशिप को धत्ता बताते हुए गुपचुप तरीके से अनेक न्यूजलेटर और लीफलेट्स निकले।
- पद्मभूषण से सम्मानित कन्नड़ लेखक शिवराम कारंत और पद्मश्री से सम्मानित हिंदी लेखक फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने लोकतंत्र के दमन के विरोध में अपनी-अपनी पदवी लौटा दी। बहरहाल, मुखालफत और प्रतिरोध के इतने प्रकट कदम कुछ ही लोगों ने उठाए।
- संसद ने संविधान के सामने कई नयी चुनौतियां खड़ी की। इंदिरा गांधी के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले की पृष्ठभूमि में संविधान में संशोधन हुआ। इस संशोधन के द्वारा प्रावधान किया गया कि प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के निर्वाचन को अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती। आपातकाल के दौरान ही संविधान का 42वां संशोधन पारित हुआ।
- इस संशोधन के जरिए संविधान के अनेक हिस्सों में बदलाव किए गए। 42वें संशोधन के जरिए अनेक बदलावों में एक था- देश की विधायिका के कार्यकाल को 5 से बढ़ाकर 6 साल करना। यह व्यवस्था मात्र आपातकाल की अवधि भर के लिए नहीं की गई थी। इसे आगे के दिनों में भी स्थायी रूप से लागू किया जाना था।
- इसके अतिरिक्त अब आपातकाल के दौरान चुनाव को एक साल के लिए स्थगित किया जा सकता था। इस तरह देखें तो 1971 के बाद अब चुनाव 1976 के बदले 1978 में करवाए जा सकते थे।

आपातकाल के संदर्भ में विवाद

आपातकाल भारतीय राजनीति का सर्वाधिक विवादास्पद प्रकरण है। इसका एक कारण है आपातकाल की घोषणा की जरूरत को लेकर विभिन्न दृष्टिकोणों का होना। दूसरा कारण यह है कि सरकार ने संविधान प्रदत्त अधिकारों का इस्तेमाल करके व्यावहारिक तौर पर लोकतांत्रिक कामकाज को ठप्प कर दिया था। आपातकाल के बाद शाह आयोग ने अपनी जांच में पाया कि इस अवधि में बहुत सारी 'अति' हुई। इसके अतिरिक्त भारत में लोकतंत्र पर अमल के लिहाज से आपातकाल से क्या-क्या सबक सीखे जा सकते हैं, इस पर भी अलग-अलग राय मिलती है।

क्या 'आपातकाल' नितांत आवश्यक था?

आपातकाल की घोषणा के कारण का उल्लेख करते हुए संविधान में बड़े सादे ढंग से 'अंदरूनी गड़बड़ी' जैसे शब्द का व्यवहारिक उपयोग किया गया है। वर्ष 1975 से पहले कभी भी 'अंदरूनी गड़बड़ी' को आधार बनाकर आपातकाल की घोषणा नहीं की गई थी। देश के कई हिस्सों में विरोध-आंदोलन चल रहे थे। क्या इसे आपातकाल लागू करने का पर्याप्त कारण माना जा सकता है? सरकार का तर्क था कि भारत में लोकतंत्र है और इसके अनुकूल विपक्षी दलों को चाहिए कि वे निर्वाचित शासक दल को अपनी नीतियों के अनुसार शासन चलाने दें। सरकार का मानना था कि बार-बार का धरना-प्रदर्शन और सामूहिक कार्यवाही लोकतंत्र के लिए ठीक नहीं है। इंदिरा गांधी के समर्थक यह भी मानते थे कि लोकतंत्र में सरकार पर निशाना साधने के लिए लगातार गैर-संसदीय राजनीति का सहारा नहीं लिया जा सकता। इससे अस्थिरता पैदा होती है और प्रशासन का ध्यान विकास के कामों से भंग हो जाता है। सारी ताकत कानून-व्यवस्था की बहाली पर लगानी पड़ती है। इंदिरा गांधी ने शाह आयोग को चिट्ठी में लिखा कि विनाशकारी ताकतें सरकार के प्रगतिशील कार्यक्रमों में अड़ंगे डाल रही थीं और मुझे गैर-संवैधानिक साधनों के बूते सत्ता से बेदखल करना चाहती थीं।

- कुछ अन्य दलों, मसलन सी.पी.आई. (इसने आपातकाल के दौरान कांग्रेस को समर्थन देना जारी रखा था) का विश्वास था कि भारत एक एकता के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय साजिश की जा रही है।
- सी.पी.आई. का मानना था कि ऐसी सूरत में विरोध पर एक हद तक प्रतिबंध लगाना उचित है। सी.पी.आई. का मानना था कि जे.पी. ने जिस जन आंदोलन की अगुवाई की, वह मुख्यतया मध्यम वर्ग का आंदोलन था और यह मध्यम वर्ग कांग्रेस की परिवर्तनकारी नीतियों के विरोध में था। आपातकाल के बाद सी.पी.आई. ने महसूस किया कि उसका मूल्यांकन गलत था और आपातकाल का समर्थन करना एक गलती थी।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- दूसरी तरफ, आपातकाल के आलोचकों का तर्क था कि आजादी के आंदोलन से लेकर लगातार भारत में जन आंदोलन का एक सिलसिला रहा है। जे.पी. सहित विपक्ष के अन्य नेताओं का ख्याल था कि लोकतंत्र में लोगों को सार्वजनिक तौर पर सरकार के विरोध का अधिकार होना चाहिए। बिहार और गुजरात में चले विरोध-आंदोलन ज्यादातर समय अहिंसक और शांतिपूर्ण रहे। जिन लोगों को गिरफ्तार किया गया था, उन पर कभी भी राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों में लिप्त रहने का मुकदमा नहीं चला।
- अधिकतर बंदियों के खिलाफ कोई मुकदमा दर्ज नहीं हुआ था। देश के अंदरूनी मामलों की देख-रेख का जिम्मा गृह मंत्रालय का होता है। गृह मंत्रालय ने भी कानून व्यवस्था की बाबत कोई चिंता नहीं जतायी थी।
- अगर कुछ आंदोलन अपनी हद से बाहर जा रहे थे, तो सरकार के पास अपनी रोजमर्रा की अमल में आने वाली इतनी शक्तियां थीं कि वह ऐसे आंदोलनों को हद में ला सकती थी। लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली को ठप्प करके 'आपातकाल' लागू करने जैसे अतिचारी कदम उठाने की जरूरत कतई न थी।
- दरअसल खतरा देश की एकता और अखण्डता को नहीं, बल्कि शासक दल और स्वयं प्रधानमंत्री को था। आलोचक कहते हैं कि देश को बचाने के लिए बनाए गए संवैधानिक प्रावधान का दुरुपयोग इंदिरा गांधी ने निजी ताकत को बचाने के लिए किया।

आपातकाल के दौरान क्या-क्या हुआ?

आपातकाल का वास्तविक क्रियान्वयन भी अपने-आप में विवाद का एक मुद्दा रहा है। क्या सरकार ने अपनी आपातकालीन शक्तियों का दुरुपयोग किया? क्या इस दौरान सत्ता का दुरुपयोग हुआ और उसके बूते ज्यादतियां की गईं? सरकार ने कहा कि वह आपातकाल के जरिए कानून व्यवस्था को बहाल करना चाहती थी, कार्यकुशलता बढ़ाना चाहती थी और गरीबों के हित के कार्यक्रम लागू करना चाहती थी। इस उद्देश्य से सरकार ने एक बीस-सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की और इसे लागू करने का अपना दृढ़ संकल्प दोहराया। बीस-सूत्री कार्यक्रम में भूमि-सुधार, भू-पुनर्वितरण, खेतिहार मजदूरों के पारिश्रमिक पर पुनर्विचार, प्रबंधन में कामकारों की भागीदारी, बंधुआ मजदूरी की समाप्ति, आदि मसले शामिल थे।

आपातकाल की आलोचना

आपातकाल के आलोचकों ने ध्यान दिलाया है कि सरकार के ज्यादातर वायदे पूरे नहीं हुए। आलोचकों का कहना है कि सरकार अपने वायदों की ओट लेकर ज्यादतियों से लोगों का ध्यान हटाना चाहती थी। आलोचकों ने निवारक नजरबंदी के बड़े पैमाने के इस्तेमाल पर भी सवाल उठाए। आपातकाल के दौरान अनेक प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था। दरअसल, कुल 676 नेताओं की गिरफ्तारी हुई थी। शाह आयोग का आकलन था कि निवारक नजरबंदी के कानूनों के तहत लगभग एक लाख ग्यारह हजार लोगों को गिरफ्तार किया गया। प्रेस पर कई तरह की पाबंदी लगाई गई। इसमें कई पाबंदियां गैर-कानूनी थीं। शाह आयोग ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि दिल्ली बिजली आपूर्ति निगम के महाप्रबंधक को दिल्ली के लेफ्टिनेंट-गवर्नर के दफ्तर से 26 जून, 1975 की रात 2 बजे मौखिक आदेश मिला कि सभी अखबारों की बिजली आपूर्ति काट दी जाए। अखबारों को बिजली आपूर्ति दो-तीन दिन बाद फिर बहाल की गई, लेकिन तब तक सेंसरशिप का पूरा ढांचा खड़ा किया जा चुका था।

- आपातकाल की घोषणा के बाद, शुरुआती महीनों में मध्यम वर्ग इस बात से बड़ा खुश था कि विरोध-आंदोलन समाप्त हो गया और सरकारी कर्मचारियों पर अनुशासन लागू हुआ। गरीब और ग्रामीण जनता को भी उम्मीद थी कि सरकार जिन कल्याण कार्यक्रमों को लागू करने के वायदे कर रही है, उन्हें अब कारगर तरीके से लागू किया जाएगा। समाज के विभिन्न वर्गों की अलग-अलग अपेक्षाएं थीं और इस कारण आपातकाल को लेकर उनके दृष्टिकोण भी अलग-अलग थे।
- इसके आलावा कुछ और भी गंभीर आरोप ऐसे लोगों को लेकर लगे थे जो किसी आधिकारिक पद पर नहीं थे, लेकिन सरकारी ताकत का इन लोगों ने इस्तेमाल किया था। प्रधानमंत्री के छोटे बेटे संजय गांधी उस वक्त किसी आधिकारिक पद पर नहीं थे। फिर भी, प्रशासन पर उनका असर था और आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने सरकारी कामकाज में दखल दिया। दिल्ली में झुग्गी बस्तियों को हटाने तथा जबरन नसबंदी करने की मुहिम में उनकी भूमिका को लेकर बड़े विवाद उठे।

PARAMOUNT Mission IAS
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in

- राजनीतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तारी और प्रेस पर लगी पाबंदी के अतिरिक्त, आपातकाल का बुरा असर आमलोगों को भी भुगतना पड़ा। आपातकाल के दौरान पुलिस हिरासत में मौत और यातना की घटनाएं घटीं।
- गरीब लोगों को मनमाने ढंग से एक जगह से उजाड़कर दूसरी जगह बसाने की भी घटनाएं हुईं। जनसंख्या नियंत्रण के अति उत्साह में लोगों को अनिवार्य रूप से नसबंदी के लिए मजबूर किया गया। इन उदाहरणों से समझा जा सकता है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया के ठप्प पड़ने पर लोगों पर क्या गुजरती है।

आपातकाल के बाद की राजनीति

जैसे ही आपातकाल का अंत और लोकसभा के चुनावों की घोषणा हुई, वैसे ही आपातकाल का सबसे जरूरी और कीमती सबक राजव्यवस्था ने सीख लिया। वर्ष 1977 के चुनाव एक तरह से आपातकाल के अनुभवों के बारे में जनमत-संग्रह थे। उत्तर भारत में तो खासतौर पर क्योंकि यहां आपातकाल का असर सबसे ज्यादा महसूस किया गया था। विपक्ष ने 'लोकतंत्र बचाओ' के नारे पर चुनाव लड़ा। जनादेश निर्णायक तौर पर आपातकाल के विरुद्ध था। सबक एकदम साफ था और कई राज्यों के विधानसभा चुनावों में भी स्थिति यही रही। जिन सरकारों को जनता ने लोकतंत्र-विरोधी माना उसे मतदाता के रूप में उसने भारी दण्ड दिया। इस अर्थ में देखें तो वर्ष 1975-77 के अनुभवों की एक परिणति भारतीय लोकतंत्र की बुनियाद को पुख्ता बनाने में हुई।

दूसरे, आपातकाल का वास्तविक क्रियान्वयन पुलिस और प्रशासन के जरिए हुआ। ये संस्थाएं स्वतंत्र होकर काम नहीं कर पाईं। उन्हें शासन दल ने अपना राजनीतिक औजार बनाकर इस्तेमाल किया। शाह कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार पुलिस और प्रशासन राजनीतिक दबाव की चपेट में आ गए थे। यह समस्या आपातकाल के बाद भी खत्म नहीं हुई।

लोकसभा के चुनाव वर्ष 1977

18 महीने के आपातकाल के बाद वर्ष 1977 के जनवरी माह में सरकार ने चुनाव कराने का फैसला किया। इसी के मुताबिक सभी नेताओं और राजनीतिक कार्यकर्ताओं को जेल से रिहा कर दिया गया। वर्ष 1977 के मार्च में चुनाव हुए। ऐसे में विपक्ष को चुनावी तैयारी का बड़ा कम समय मिला, लेकिन राजनीतिक बदलाव की गति बड़ी तेज थी। आपातकाल लागू होने के पहले ही बड़ी विपक्षी पार्टियां एक-दूसरे के नजदीक आ रही थीं। चुनाव के ऐन पहले इन पार्टियों ने एकजुट होकर जनता पार्टी नाम से एक नया दल बनाया। नयी पार्टी ने जयप्रकाश नारायण का नेतृत्व स्वीकार किया। कांग्रेस के कुछ नेता भी, जो आपातकाल के खिलाफ थे, इस पार्टी में शामिल हुए। कांग्रेस के कुछ अन्य नेताओं ने जगजीवन राम के नेतृत्व में एक नयी पार्टी बनाई। इस पार्टी का नाम 'कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी' था और बाद में यह पार्टी भी जनता पार्टी में शामिल हो गई।

आपातकाल के सबक

आपातकाल से एकबारगी भारतीय लोकतंत्र की ताकत और कमजोरियां उजागर हो गई। हालांकि बहुत से पर्यवेक्षक मानते हैं कि आपातकाल के दौरान भारत लोकतांत्रिक नहीं रह गया था, लेकिन यह भी ध्यान देने की बात है कि थोड़े ही दिनों के अंदर कामकाज फिर से लोकतांत्रिक ढर्रे पर लौट आया। इस तरह आपातकाल का एक सबक तो यही है कि भारत में लोकतंत्र को विदा कर पाना बहुत कठिन है।

दूसरे, आपातकाल से संविधान में वर्णित आपातकाल के प्रावधानों के कुछ अर्थगत उलझाव भी प्रकट हुए, जिन्हें बाद में सुधार लिया गया। अब 'अंदरूनी' आपातकाल सिर्फ 'सशस्त्र विद्रोह' की स्थिति में लगाया जा सकता है। इसके लिए यह भी जरूरी है कि आपातकाल की घोषणा की सलाह मंत्रिपरिषद् राष्ट्रपति को लिखित में दे।

तीसरे, आपातकाल से हर कोई नागरिक अधिकारों के प्रति ज्यादा सचेत हुआ। आपातकाल की समाप्ति के बाद अदालतों ने व्यक्ति के नागरिक अधिकारों की रक्षा में सक्रिय भूमिका निभाई। न्यायपालिका आपातकाल के वक्त नागरिक अधिकारों की कारगर तरीके से रक्षा नहीं कर पाई थी। इसे महसूस करके अब वह नागरिक अधिकारों की रक्षा में तत्पर हो गई। आपातकाल के बाद नागरिक अधिकारों के कई संगठन वजूद में आए।

बहरहाल, आपातकाल के संकटपूर्ण वर्षों ने कई ऐसे सवाल छोड़े हैं जिन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। लोकतांत्रिक सरकार ने रोजमर्रा के कामकाज और विभिन्न दलों और समूहों के निरंतर जारी राजनीतिक विरोध के बीच तनाव की स्थिति बनती है। ऐसे में दोनों के बीच एक सधा हुआ संतुलन क्या हो सकता है?

PARAMOUNT

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS

- वर्ष 1977 के चुनावों को जनता पार्टी ने आपातकाल के ऊपर जनमत संग्रह का रूप दिया। इस पार्टी ने चुनाव-प्रचार में शासन के अलोकतांत्रिक चरित्र और आपातकाल के दौरान की गई ज्यादतियों पर जोर दिया। हजारों लोगों की गिरफ्तारी और प्रेस की सेंसरशिप की पृष्ठभूमि में जनमत कांग्रेस के विरुद्ध था। जनता पार्टी के गठन के कारण यह भी सुनिश्चित हो गया कि गैर-कांग्रेसी वोट एक ही जगह पड़ेंगे। बात बिल्कुल साफ भी कि कांग्रेस के लिए अब बड़ी मुश्किल आ पड़ी थी।

लोकसभा चुनाव में कांग्रेस की हार

लेकिन चुनाव के अंतिम नतीजों ने सबको चौंका दिया। आजादी के बाद पहली बार ऐसा हुआ कि कांग्रेस लोकसभा का चुनाव हार गई। कांग्रेस को लोकसभा की मात्र 154 सीटें मिली थीं। उसे 35 प्रतिशत से भी कम वोट हासिल हुए। जनता पार्टी और उसके साथी दलों को लोकसभा की कुल 542 सीटों से से 330 सीटें मिलीं।

स्वयं जनता पार्टी अकेले 295 सीटों पर जीत गई थी और उसे स्पष्ट बहुमत मिला था। उत्तर भारत में चुनाव माहौल कांग्रेस के एकदम खिलाफ था। कांग्रेस बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा और पंजाब में एक भी सीट न पा सकी। राजस्थान और मध्य प्रदेश में उसे महज एक-एक सीट मिली। इंदिरा गांधी रायबरेली से और उनके पुत्र संजय गांधी अमेठी से चुनाव हार गए।

- अगर हम उस समय के चुनावी नतीजों पर नजर दौड़ाएं, तो पाएंगे कि कांग्रेस देश में हर जगह चुनाव नहीं हारी थी। महाराष्ट्र, गुजरात और ओडीशा में उसने कई सीटों पर अपना कब्जा बरकरार रखा था और दक्षिण भारत के राज्यों में तो एक तरह से उसकी चुनावी विजय का चक्का बेरोक-टोक चला था। इसके कई कारण रहे।
- पहली बात तो यह था कि आपातकाल का प्रभाव हर राज्य पर एकसमान नहीं पड़ा था। लोगों को जबरन उजाड़ने और विस्थापित करने अथवा जबरन नसबंदी करने का काम ज्यादातर उत्तर भारत के राज्यों में हुआ था, लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण बात यह भी कि उत्तर भारत में राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता की प्रकृति में दूरगामी बदलाव आए थे।
- उत्तर भारत का मध्य वर्ग कांग्रेस से दूर जाने लगा था और मध्यम वर्ग के कई तबके जनता पार्टी को एक मंच के रूप में पाकर इससे आ जुड़े। इस अर्थ में देखें, तो 1977 के चुनाव सिर्फ आपातकाल की कथा नहीं कहते हैं, बल्कि इसके आगे की भी कुछ बातों का संकेत करते हैं।

जनता दल की सरकार

वर्ष 1977 के चुनावों के बाद बनी जनता पार्टी की सरकार में कोई खास तालमेल नहीं था। चुनाव के बाद नेताओं के बीच प्रधानमंत्री के पद के लिए होड़ मची। इस होड़ में मोरारजी देसाई, चरण सिंह और जगजीवन राम शामिल थे। मोरारजी देसाई 1966-67 से ही इंदिरा गांधी के प्रतिद्वंद्वी थे। चरण सिंह, भारतीय लोकदल के प्रमुख और उत्तर प्रदेश के किसान नेता थे। जगजीवन राम को कांग्रेसी सरकारों में मंत्री पद पर रहने का विशाल अनुभव था। बहरहाल मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने, लेकिन इससे जनता पार्टी के भीतर सत्ता की खींचतान खत्म न हुई।

- आपातकाल का विरोध जनता पार्टी को कुछ ही दिनों के लिए एकजुट रख सका। इस पार्टी के आलोचकों ने कहा कि जनता पार्टी के पास किसी दिशा, नेतृत्व अथवा एक साझे कार्यक्रम का अभाव था। जनता पार्टी की सरकार कांग्रेस द्वारा अपनाई गई नीतियों में कोई बुनियादी बदलाव नहीं ला सकी।
- जनता पार्टी बिखर गई और मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाली सरकार ने 18 माह में ही अपना बहुमत खो दिया। कांग्रेस पार्टी के समर्थन पर दूसरी सरकार चरण सिंह के नेतृत्व में बनी। लेकिन बाद में कांग्रेस पार्टी ने समर्थन वापस लेने का फैसला किया। इस वजह से चरण सिंह की सरकार मात्र चार महीने तक सत्ता में रही।
- वर्ष 1980 के जनवरी में लोकसभा के लिए नए सिरे से चुनाव हुए। इस चुनाव में जनता पार्टी बुरी तरह परास्त हुई। जनता पार्टी को उत्तर भारत में करारी शिकस्त मिली, जबकि वर्ष 1977 के चुनाव में उत्तर भारत में इस पार्टी को जबरदस्त सफलता मिली थी। इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी ने वर्ष 1980 के चुनाव में एक बार फिर वर्ष 1971 के चुनावों वाली कहानी दुहराते हुए भारी सफलता हासिल की।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- कांग्रेस पार्टी को 353 सीटें मिलीं और वह सत्ता में आई। वर्ष 1977-79 के चुनावों ने लोकतांत्रिक राजनीति का एक और सबक सिखाया- सरकार अगर अस्थिर हो और उसके भीतर कलह हो, तो मतदाता ऐसी सरकार को कड़ा दण्ड देते हैं।

कांग्रेस की प्रकृति में आए बदलाव

वर्ष 1977 और वर्ष 1980 के चुनावों के बीच दलगत प्रणाली में नाटकीय बदलाव आए। वर्ष 1969 के बाद से कांग्रेस का सबको समाहित करके चलने वाला स्वभाव बदलना शुरू हुआ। वर्ष 1969 से पहले तक कांग्रेस विविध विचारधारात्मक गति-मति के नेताओं और कार्यकर्ताओं को एक में समेट कर चलती थी। अपने बदले हुए स्वभाव में कांग्रेस ने स्वयं को विशेष विधारधारा से जोड़ा। उसने अपने को देश की एकमात्र समाजवादी और गरीबों की हिमायती पार्टी बताना शुरू किया। इस तरह वर्ष 1970 के दशक के शुरुआती सालों से कांग्रेस की सफलता इस बात पर निर्भर रही कि वह गहरे सामाजिक और विचारधारात्मक विभाजन के आधार पर लोगों को अपनी तरफ कितना खींच पाती है। इसके साथ-साथ यह पार्टी अब एक नेता यानी इंदिरा गांधी की लोकप्रियता पर भी निर्भर हुई। कांग्रेस की प्रकृति में आए बदलावों के मद्देनजर अन्य विपक्षी दल 'गैर-कांग्रेसवाद' की राजनीति की तरफ मुड़े। विपक्ष के नेताओं को अब यह बात साफ-साफ नजर आने लगी कि चुनावों में गैर-कांग्रेसी वोट बिखरने नहीं चाहिए। इस चीज ने वर्ष 1977 के चुनावों में एक बड़ी भूमिका निभाई।

- अप्रत्यक्ष रूप से वर्ष 1977 के बाद पिछड़े वर्गों की भलाई का मुद्दा भारतीय राजनीति पर हावी होना शुरू हुआ। वर्ष 1977 के चुनाव-परिणामों पर पिछड़ी जातियों के मतदान का असर पड़ा था, खासकर उत्तर भारत में। लोकसभा के चुनावों के बाद, वर्ष 1977 में कई राज्यों में विधानसभा के भी चुनाव हुए।
- इसमें भी उत्तर भारत के राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं। इन सरकारों के बनने में पिछड़ी जाति के नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बिहार में 'अन्य पिछड़ी जातियों' के आरक्षण के सवाल पर बहुत शोर मचा। इसके बाद केन्द्र की जनता पार्टी की सरकार ने मण्डल आयोग नियुक्त किया। आपातकाल के बाद हुए चुनावों ने दलीय व्यवस्था के भीतर इस बदलाव की प्रक्रिया शुरू कर दी।
- आपातकाल और इसके आसपास की अवधि को संवैधानिक संकट की अवधि के रूप में भी देखा जा सकता है। संसद और न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र को लेकर छिड़ा संवैध ानिक संघर्ष भी आपातकाल के मूल में था। दूसरी तरफ यह राजनीतिक संकट का भी दौर था। सत्ताधारी पार्टी के पास पूर्ण बहुमत था। फिर भी, इसके नेतृत्व ने लोकतंत्र को ठप्प करने का फैसला किया। भारतीय
- संविधान के निर्माताओं को विश्वास था कि सभी राजनीतिक दल लोकतांत्रिक मानकों का पालन करेंगे। उन्हें यह भी विश्वास था कि आपातकाल की स्थिति में भी सरकार अपनी असाधारण शक्तियों का इस्तेमाल विधि के शासन के दायरे में रहते हुए ही करेगी।
- इसी उम्मीद में सरकार को आपातकाल से जुड़े प्रावधानों के अंतर्गत व्यापक और चहुंमुखी शक्तियां दे दी गईं। इन शक्तियों का आपातकाल के दौरान दुरुपयोग हुआ। यह राजनीतिक संकट तत्कालीन संवैधानिक संकट से कहीं ज्यादा संगीन था।
- इस दौर में एक और महत्वपूर्ण मसला संसदीय लोकतंत्र में जन आंदोलन की भूमिका और उसकी सीमा को लेकर उठा। स्पष्ट ही इस दौर में संस्था आधारित लोकतंत्र और स्वत:स्फूर्त जन-भागीदारी पर आधारित लोकतंत्र में तनाव नजर आया।

इंदिरा गांधी का पुनः आगमन, 1977-84

जनवरी 1977 में जेल से बाहर आने के तुरंत बाद विपक्षी नेताओं ने कांग्रेस (ओ), जनसंघ भारतीय लोकदल (बीएलडी) और सोशलिस्ट पार्टी के एक नई जनता पार्टी मे विलय की घोषणा की। 2 फरवरी, 1977 को जगजीवन राम, एच.एन.बहुगुणा और नंदिनी सत्पथी के अचानक दलबदल से कांग्रेस को भारी धक्का लगा। जिन्होंने कांग्रेस और डेमोक्रेसी (सीएफडी) का गठन किया, डीएमके, अकाली दल और सीपीएम के साथ इन लोगों ने जनता पार्टी से मिलकर एक साझा मोर्चे का गठन किया ताकि कांग्रेस और उसके सहयोगियों-सीपीआई और एआईडीएमके को मार्च में होने वाली लोकसभा चुनावों में सीधी टक्कर दी जा सके।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE

विपक्षी मोर्चे ने आपातकाल और उसकी ज्यादतियों, खासतौर पर जघन्य नसबंदी और नागरिक अधिकारों के हनन को चुनाव प्रचार में अपना मुख्य मुद्दा बनाया। लोगों ने इस चुनाव को आपातकाल पर जनमत संग्रह की तरह ही लिया। अपने पक्ष में जन-उभार के जनता पार्टी और इसके सहयोगी दल 542 में से 330 सीटों पर विलय हुए। कांग्रेस मात्र 154 सीटें लेकर काफी पीछे रही और इसकी सहयोगी सीपीआई को मात्र 7 एवं एआईडीएमके को 21 सीटें हासिल हुई। वस्तुतः उत्तर भारत में कांग्रेस का सफाया हो गया-सात उत्तरी राज्यों की 234 सीटों में से इसे मात्र दो सीटें प्राप्त हुई। इंदिरा गांधी और संजय दोनों ही चुनाव हार गए। हालांकि पश्चिम बंगाल में चुनावी जनादेश मिश्रित था। आश्चर्यजनक रूप से दक्षिण भारत में जहां आपातकालीन दमन कुछ कम हुआ था और जहां गरीबों के पक्ष में 20 सूत्री कार्यक्रमों को बेहतर लागू किया गया था, कांग्रेस ने अपना प्रदर्शन बेहतर किया था। वर्ष 1971 में मिली 70 सीटों के मुकाबले उसे 92 सीटें प्राप्त हुई थीं जनता पार्टी दक्षिणी राज्यों में मात्र छह स्थानों पर जीत पाई थी। चुनावों के ठीक बाद कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी का जनता पार्टी मे विलय हो गया।

- प्रधानमंत्री के प्रश्न पर तीन उम्मीदवारों-मोरारजी देसाई, चरण सिंह और जगजीवन राम के बीच एक संकट सा पैदा हो गया। इस मसले को बुजुर्ग नेताओं- जयप्रकाश नारायण और जे.बी.कृपलानी के पास विचार के लिए भेज दिया गया, जिन्होंने 81 वर्षीय देसाई के पक्ष में अपना मत दिया। वे 23 मार्च को प्रधानमंत्री के रूप में सत्तारूढ़ हुए।
- नई सरकार ने सबसे पहला एक काम राज्यों के ऊपर अपनी पकड़ मजबूत बनाने के लिए किया। यह तर्क दिया गया कि चूंकि कांग्रेस राष्ट्रीय चुनाव हार चुकी है, इसलिए उसने राज्य स्तर पर भी शासन करने का जनादेश खो दिया है। सरकार ने नौ कांग्रेस शासित सरकारों को बर्खास्त कर उनकी विधानसभाओं के लिए ताजा चुनाव के आदेश दे दिए।
- जून 1977 मे हुए विधानसभा चुनावों में जनता पार्टी और इसके सहयोगी, तमिलनाडु को छोड़कर बाकी सभी राज्यों में जीतकर आए। तमिलनाडु में एआईडीएमके ने फिर से जीत हासिल की। पश्चिम बंगाल में जनता पार्टी के एक सहयोगी सीपीएम ने संपूर्ण बहुमत प्राप्त कर लिया।
- संसद एवं विधानसभा दोनों के ऊपर पूर्ण नियंत्रण पा लेने के कारण जनता पार्टी अपने उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी को संघ के राष्ट्रपति के रूप में जुलाई 1977 मे निर्विरोध निर्वाचित करवा लेने मे सफल रही।
- जनता सरकार ने आपातकालीन शासन व्यवस्था के दौरान बनाई गई निरंकुश शासन प्रणाली को तोड़ने तथा उदारवादी जनवाद को फिर से बहार करने के लिए तत्काल कदम उठाया। इसने मौलिक अधिकारों और प्रेस, राजनीतिक पार्टियों और व्यक्तियों को संपूर्ण नागरिक अधिकार बहाल किए।
- संविधान के 44वें संशोधन के माध्यम से इसने आपातकाल के दौरान पारित किए गए 42वें संशोधन में ऐसा फेर-बदल किया, जिससे संविधान को विकृत करने वाले प्रावधानों को वापस लिया जा सके। सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय को केंद्र एवं राज्यों द्वारा बनाए गए कानूनों की वैधता को परखने से संबंधित अधिकार भी फिर से वापस दे दिया गया।

जनता पार्टी में संकट

जनता शासन व्यवस्था का राजनीतिक समर्थन शीघ्र ही पतन की ओर बढ़ने लगा और प्रशासन विकास संबंधी नीतियों के कार्यान्वयन एवं सामाजिक न्याय को पूरा करने में उनकी असफलता के कारण जल्दी ही लोगों का मोहभंग होने लगा। वर्ष 1977 के अंत तक यह शासन-व्यवस्था अपना राजनीतिक आवेग खो चुकी थी और एक विषम गठबंधन के रूप में जनता पार्टी का विखंडन शुरू हो गया। हालांकि सरकार सत्ता में जुलाई 1979 तक बनी रही। उस समय तक इनके शासन करने की क्षमता मे विश्वास की कमी, कई कारणों से गुस्से में तब्दील हो चुकी थी। पहला, जनता पार्टी ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ते हुए उन सामाजिक तनावों से निपटने में असक्षम साबित हो रही थी, जिनकी अभिव्यक्ति ग्रामीण गरीबों ओर अनुसूचित जातियों के ऊपर बढ़ते हुए अत्याचारों के रूप में हो रही थी। स्वयं जनता पार्टी का उत्तर भारत में अपना सामाजिक आधार मूलतया धनी एवं मध्यम दर्जे के किसानों ने, जो ज्यादातर मध्यवर्ती जातियों के थे और ऊंची जातियों के भू-स्वामियों ने यह महसूस किया कि केंद्र और राज्यों में जनता दल की सरकार होने के साथ-साथ उन लोगों ने समुचे देश पर और खासतौर से ग्रामीण क्षेत्रों में सत्ता पर अधिकार पा लिया है।

- दूसरी तरफ ग्रामीण गरीब विशेषता अनुसूचित जातियों से ज्यादातर आने वाले बहुसंख्यक भूमिहीन मजदूर भी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो चुके थे और लंबे समय से सक्रिय जनवाद एवं वयस्क मताधिकार के कारण काफी मुखर हो गए थे।
- वे भी अपने अधिकारों की सुरक्षा कर रहे थे तथा 20 सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत जो सुविधाएं उन्हें मिली थी, उन्हें बनाए रखने के लिए दबाव दे रहे थे। कई राज्यों में भूस्वामी उन्हे दी गई जमीनों को जबरन वापस लेने की कोशिश कर रहे थे और सूदखोर महाजन आपातकाल के दौरान खारिज किए गए कर्जों को फिर से मांग रहे थे।
- परिणाम यह हुआ कि अनुसूचित जातियों के ऊपर हिंसक आक्रमण हुए तथा चारों तरफ जातिवादी तनाव फैलने लगा। इसका सबसे आंरभिक उदाहरण जुलाई 1977 मे बिहार के बेलछी नामक जगह पर हरिजनों को जिंदा जलाने और मारने की घटनाओं के रूप में सामने आया।
- बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक हिंसा फिर से फैलने लगी। साथ ही प्रदर्शन, अशांति और हिंसा फिर से बढ़ रही थी, जो खासतौर से कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को प्रभावित कर रही थी जिसके परिणामस्वरूप अक्सर इन्हें बंद करना पड़ता था।
- वर्ष 1979 के मध्य हड़तालों और पुलिस वालों एवं अर्ध सैनिक बलों द्वारा बगावतों का एक दौर फिर से देखा गया। जनता शासन व्यवस्था ने विशाल पैमाने के उद्योगों, आधुनिक कृषि तथा उन्नत विज्ञान एवं तकनीक पर आधारित द्रुत आर्थिक विकास की नेहरूवादी दृष्टि को खुलेआम ठुकरा दिया। परंतु यह आर्थिक और राजनीतिक विकास का कोई वैकल्पिक प्रारूप या रणनीति विकसित करने तथा आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या से निबटने में भी असफल रहा।

जनता पार्टी की आर्थिक नीति

जनता पार्टी की आर्थिक नीति ने ग्रामीण विकास को उद्योगोन्मुख विकास के विरोधी रूप में प्रस्तुत किया। इनकी नीति मूल रूप से तीन स्तंभों पर आधारित थी: पहला, श्रम आधारित छोटे पैमाने के उद्योग, जो बड़े पैमाने के उद्योगों के पूरक के रूप में नहीं, बल्कि उनके स्थान पर विकल्प के रूप में देखे जा रहे थे। दूसरा, राष्ट्रीय नियोजन की जगह विकेंद्रीकरण और तीसरा, धनी किसानों के नेतृत्व मे उदार सब्सिडी, भूमि लगान में कमी, संसाधनों को उद्योगों से बड़े पैमाने पर हटाकर ग्रामीण क्षेत्र में लगाए जाने आदि कदमों के आधार पर कृषि विकास की रूपरेखा। आर्थिक नीतियों में यह परिवर्तन निम्न अथवा शून्य आर्थिक विकास के लिए एक सुनिश्चित फार्मूला था।

जनता पार्टी ने भूमि सुधार तथा खेतिहार मजदूरों को अधिक मजदूरी अदा करने के अपने पहले की रैडिकल मांगों को पूरा करने का कोई प्रयास भी नहीं किया। जनता सरकार ने एक सकारात्मक आर्थिक कदम जो उठाया था, वह 'काम के बदले अनाज' कार्यक्रम के माध्यम से ग्रामीण बेरोजगारी को रोजगार मुहैया कराने के प्रयासों से संबंधित था। इस कार्यक्रम का उपयोग सड़कों, स्कूल के भवनों जैसे ग्रामीण आधारभूत ढांचे को बेहतर बनाने के लिए किया गया। खासतौर पर यह कार्यक्रम सबसे अधिक कुशलता से पश्चिम बंगाल में सीपीएम द्वारा लागू किया गया।

- जनता शासन का पहला वर्ष पूरा करने के बाद ही अर्थव्यवस्था डगमगाने लगी और कृषि एवं उद्योग दोनों ही निम्न विकास दर अथवा अवरूद्धता दिखाने लगे। 1978-79 में आए गंभीर सूखा तथा कई राज्यों में भयानक बाढ़ों ने कृषि उत्पादन को प्रभावित किया था।
- कीमतें तेजी से बढ़ने लगी। खासतौर पर इसलिए भी कि 'काम के बदले अनाज' कार्यक्रम में खाद्यान्नों का एक बहुत बड़ा भंडार खाली हो चुका था। पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम उत्पादों की अंतर्राष्ट्रीय कीमतें एक बार फिर तेजी से बढ़ने लगी। वित्त मंत्री के रूप में चरण सिंह द्वारा वर्ष 1979 के बजट में प्रस्तुत भारी बजट घाटा ने भी मुद्रास्फीति के प्रभाव को और भी बढ़ाया। वर्ष 1979 में केरोसिन तेल एवं दैनिक उपभोग की अन्य वस्तुओं की कमी भी बड़े पैमाने पर देखी गई। उस साल के अंत तक मुद्रास्फीति 20 प्रतिशत से भी ऊपर जा चुकी थी।
- जनता सरकार का कार्यकाल भारत की विदेश नीति पर कोई प्रभाव छोड़ने के लिए बहुत ही छोटा था। हालांकि वृहत रूप से स्वीकृत ढांचे के अंदर काम करते हुए भी इसने विदेश नीति को एक नई दिशा देने की कोशिश भी की थी।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

- इसने 'असली गुटनिरपेक्षता' की बात की जिसका अर्थ था अमरीका और ब्रिटेन के साथ संबंधों को मजबूत बनाना तथा सोवियत संघ के साथ निकट संबंधों को थोड़ा कम करना।
- जनता पार्टी के नेताओं का सबसे बड़ा काम अपनी पार्टी को एकजुट बनाए रखना ही था। वर्ष 1977 के अंत तक जिस विखंडन की शुरूआत पहले ही हो चुकी थी, उसने 1978-79 के आते-आते दिशाविहीन सरकार को अपने लगातार कलहों तथा केंद्र एवं राज्यों दोनों ही स्तरों पर पार्टी में होने वाले आंतरिक युद्धो ने पूरी तरह विकलांग बना दियाथा।
- प्रत्येक राजनीतिक घटक अधिक से अधिक संभव राजनीतिक और प्रशासनिक स्थान पर कब्जा जमाने की कोशिश कर रहा था। विचारधारात्मक स्तर पर जनसंघ पाठ्यपुस्तकों तथा सरकारी समाचार माध्यम, शैक्षणिक संस्थाओं और पुलिस बल में बहाली के माध्यम से अपने सांप्रदायिक एजेंडे को प्रोत्साहित करने की कोशिश कर रहा था।
- जनता पार्टी विभिन्न पार्टियों और समूहों का एक गठबंधन भी बना रही थी तथा यह गुटबाजी, चालबाजियों एवं अपने नेताओं की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं का यह शिकार बनी। इसके विभिन्न घटक ऐतिहासिक, विचारधारात्मक एवं कार्यक्रमों के आधार पर अति विभिन्न प्रकार के थे, जो मात्र इंदिरा गांधी विरोधी भावनाओं और सत्ता की ललक से आपस में जुड़े हुए थे।
- अपने 90 संसद सदस्यों के साथ सबसे अधिक संगठित और प्रभुत्वशाली घटक जनसंघ सांप्रदायिक एवं लोकलुभावनवादी था, जिनके जन्मजात संबंध आरएसएस से बने हुए थे। आरएसएस ही इसे कार्यकर्ता और विचारधारात्मक मुहैया करवाता था और वह इसे किसी भी अन्य पार्टी के साथ मिल जाने अथवा समाहित हो जाने की इच्छा नहीं रखता था।
- कांग्रेस (ओ) धर्मनिरपेक्ष था परंतु रूढ़िवादी और मूल रूप से कांग्रेसी ही था। बीएलडी धर्मनिरपेक्ष था, परंतु यह खासतौर पर धनी किसानों की पार्टी थी। इसका संपूर्ण भारत अथवा विकास के लिए कोई दृष्टिकोण ही नहीं था सिर्फ बिहार को छोड़कर अन्य समाजवादी लोग भी मोटेतौर पर विचारधाराहीन और जड़विहीन थे।

कांग्रेस का पुनरूत्थान

कांग्रेस ने एक विभाजन और पुनरूत्थान दोनों ही देखा। यह महसूस करते हुए कि इंदिरा गांधी न केवल एक समाप्त हो चुकी शक्ति हैं बल्कि एक गंभीर राजनीतिक बोझ भी हैं, वाई बी चौहान और ब्रह्मानंद रेड्डी के नेतृत्व में स्थापित कांग्रेस नेताओ की एक बड़ी संख्या उनके खिलाफ हो गई। बदले में श्रीमती गांधी ने जनवरी 1978 में पार्टी विभाजित कर दिया, जिसमें उनकी शाखा का नाम कांग्रेस आई. (इंदिरा गांधी के नाम पर) और कांग्रेस यू (देवराज अर्स के नाम पर) की संज्ञा से जाना गया।

इसके बाद इंदिरा गांधी का राजनीतिक भाग्योदय फिर से होने लगा और फरवरी 1978 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस आई ने कर्नाटक और आंध्र में जनता पार्टी एवं प्रतिद्वंद्वी कांग्रेस दोनो को पराजित किया। इस पुनरूत्थान के दो मुख्य कारण थे। पहला, जनता सरकार द्वारा इंदिरा गांधी के ऊपर दुश्मनी निकालने और आपातकाल में हुई घटनाओं के लिए उन्हें दंड देने के प्रयासों से संबंधित था। कई जांच कमीशन बिठाए गए, जिन्हें खोजबीन करने तथा इंदिरा गांधी द्वारा किए गए भ्रष्टाचारों, ज्यादत्तियों, अधिकारों के दुरूपयोगों तथा अत्याचारों को निर्धारित करने का काम सौंपा गया था। इसमें शाह कमीशन सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। वर्ष 1979 में कई विशेष अदालते बढ़ाई गई ताकि आपातकाल के दौरान श्रीमती गांधी द्वारा किए गए तथाकथित आपराधिक कार्यों के लिए मुकदमा चलाया जा सके। परंतु आम आदमी दूसरी तरफ अधिक से अधिक यह महसूस करने लगा कि इंदिरा गांधी पर मुकदमा न्याय करने के लिए नहीं बल्कि बदला लेने, खुंदश निकालने तथा उन्हें अपमानित करने का एक प्रयास था। जनता यह महसूस करती थी कि चुनाव द्वारा सत्ता से बाहर कर उन्हें काफी सजा दी जा चुकी है। इसके अलावा, कहीं गहराई में ग्रामीण और शहरी गरीब हरिजन, अल्पसंख्यक और महिलाएं अभी भी इंदिरा गांधी को अपना संरक्षक, अपनी 'इंदिरा अम्मा' के रूप में देखते थे।

- लेकिन सरकार इंदिरा गांधी की बढ़ती लोकप्रियता से बिल्कुल बेखबर रही। इसका श्रेय भी प्रेस को दिया जाना चाहिए जो उन दिनों उनके खिलाफ पूर्वग्रह से ग्रस्त था। उनकी बढ़ती लोकप्रियता का एक नाटकीय प्रदर्शन तब सामने आया, जब वे नवंबर 1978 में कर्नाटक के चिकमंगलूर चुनाव क्षेत्र से विशाल मतो के अंतर से संसद के लिए चुनी गई।

- यह विडंबना ही है कि इसके कुछ ही दिनों बाद 19 नवंबर को जनता पार्टी ने अपने बहुमत का उपयोग करते हुए उन्हें सदन के विशेषाधिकारों एवं मानहानि के एक छोटे आरोप संसद से निष्कासित कर दिया और एक सप्ताह के लिए जेल की सजा दी।
- जनता सरकार और पार्टी में गुटों के बीच संघर्ष ने वर्ष 1979 के मध्य बहुत ही गंभीर स्वरूप ले लिया। 30 जून 1978 को गृहमंत्री चरणसिंह को मंत्रिमण्डल से इस्तीफा देने के लिए मजबूर कर दिया और फिर बाद में उन्हें जनवरी 1979 में वित्तमंत्री बना कर वापस भेज दिया गया।
- उन्होने सोशलिस्टों की मदद से पार्टी और सरकार जुलाई 1979 मे तोड़ दी। जनसंघ के सदस्यों द्वारा जनता पार्टी और आरएसएस की दोहरी सदस्यता छोड़ने से इनकार करने मसले पर वो समाजवादी जनता पार्टी ओर सरकार से बाहर निकल गए। अल्पमत में आ जाने के कारण मोरारजी सरकार ने 15 जुलाई को त्यागपत्र दे दिया।
- एक सप्ताह बाद चरण सिंह ने कांग्रेस यू के चवण खेमा और कुछ समाजवादियों के साथ गठबंधन बनाकर सरकार का गठन किया, जिनमें कांग्रेस आई और सीपीआई ने बाहर से समर्थन दिया। परंतु वे संसद का कभी मुंह भी नहीं देख पाए।
- 20 अगस्त को विश्वास मत पर मतदान से एक दिन पहले ही इंदिरा गांधी ने चरण सिंह से अपना समर्थन वापस ले लिया क्योंकि चरण सिंह ने श्रीमती गांधी पर मुकदमे चलाने के लिए स्थापित विशेष अदालतों को समाप्त करने की उनकी मांग को ठुकरा दिया था। चरण सिंह की सलाह पर राष्ट्रपति ने लोकसभा भंग कर दी और मध्यावधि चुनाव घोषित कर दिए।
- जनवरी 1980 में हुए चुनाव प्राथमिक रूप से कांग्रेस आई, कांग्रेस यू, लोकदल जिसे एक नई पार्टी के रूप में चरण सिंह और समाजवादियों ने खड़ा किया था, जनता पार्टी जिसमें मूल रूप से जनसंघ और जगजीवन राम एवं चंद्रशेखर जैसे मुट्ठी भर कांग्रेसी बचे हुए थे तथा सीपीआई और सीपीएम जो पश्चिम बंगाल और केरल को छोड़कर कहीं भी तस्वीर लगातार चलने वाले आपसी झगड़ों से ऊबकर लोग एक बार फिर से कांग्रेस और इंदिरा गांधी की तरफ देखने लगे। लोगों ने इंदिरा गांधी की कांग्रेस को ही असली कांग्रेस समझा।
- जनता पार्टी ने अपना मुख्य मुद्दा इस चेतावनी को बनाया कि यदि इंदिरा गांधी फिर से सत्ता में आई तो लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों को खतरा पैदा हो जाएगा। चरण सिंह ने किसान राज की बात की। इंदिरा गांधी ने जनता पार्टी की शासनविहीनता पर ध्यान केंद्रित किया और लोगों से कहा कि वे 'काम करने वाली सरकार' को वोट दें।
- लोगों ने एक बार फिर वर्ष 1971 और वर्ष 1977 की तरह ही जाति धर्म और क्षेत्र से ऊपर उठते हुए इस बार कांग्रेस (आई) को भारी जनादेश दिया जिसमे कांग्रेस ने 529 सीटों में से 353 यानी दो-तिहाई बहुमत प्राप्त किया। लोकदल 41, जनता 31 और कांग्रेस यू 13 सीटों के साथ काफी पीछे रह गया। सीपीएम और सीपीआई ही अकेले कांग्रेस की इस लहर के खिलाफ टिक पाई, जिन्होंने 36 और 11 सीटें क्रमशः जीती। चुनावों के बाद जनता पार्टी में एक बार फिर विभाजन हुआ और जनसंघ के पुराने नेतागणों ने इसे छोड़कर 1980 के अंत में भारतीय जनता पार्टी बनाई और जगजीवन राम कांग्रेस में शामिल हो गए।

इंदिरा गांधी की वापसी

चौंतीस महीनों तक सत्ता से बाहर रहने के बाद इंदिरा गांधी एक बार फिर प्रधानमंत्री बनी और कांग्रेस एक सबसे बड़ी पार्टी को अपनी पुरानी स्थिति में फिर से स्थापित हो गई। 1977 में जनता सरकार द्वारा स्थापित एक गलत परंपरा का पालन करते हुए कांग्रेस ने भी नौ विपक्ष शासित राज्यों में विधानसभाओं को भंग कर दिया। इसके बाद जून में हुए विधानसभा चुनावों में तमिलनाडु को छोड़कर सभी जगह कांग्रेस ने जोरदार जीत हासिल की। अब यह 22 में से 15 राज्यों में शासन कर रही थी। हालांकि श्रीमती गांधी एक बार फिर प्रधानमंत्री बन गई थीं और वह एकमात्र भारतीय नेता थी जिनकी राष्ट्रीय अपील थी, पर अब वह वहीं व्यक्ति नहीं रह गई थीं जो वर्ष 1969 से वर्ष 1977 के बीच थी। अब उनकी राजनीति और प्रशासन पर वैसी कड़ी पकड़ नहीं रह गई थी। निर्विरोध सत्ता हासिल होने के बावजूद वह कोई भी महत्वपूर्ण नई नीतिगत पहले लेने तथा कई परेशान करने वाली समस्याओं से प्रभावकारी ढंग से निबटने में डगमगा रही थी। हालांकि वह अब भी आर्थिक क्षेत्र तथा विदेश नीति में कुछ सफलता हासिल कर पा रही थीं, परंतु संपूर्ण रूप से देखा जाए

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

तो दिशा की एक कमी थी और बहकने का बोध हो रहा था, जिससे लोगों को यह महसूस हुआ कि पर्याप्त उपलब्धि नहीं हो पा रही है। उनमें पहले जैसी ऊर्जा, निर्णय शक्ति की दृढ़ता नहीं रह गई थी और उनकी जगह 'हिचकिचाहट और सावधानी की प्रवृत्ति' ने ले ली थी। समय बीतने के साथ-साथ उनमें एक थके हुए व्यक्ति के चिन्ह दिखाई देने लगे।

- इसके अलावा इंदिरा गांधी के पास अपने चुनावी वायदों को लागू करने के लिए राजनीतिक उपकरण बहुत ही कम थे। वर्ष 1977-78 के दौरान उनके ज्यादातर जाने-माने और अनुभवी राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक नेता और उनके पुराने दोस्त उन्हें छोड़कर चले गए थे।
- कुछ अपवादों को छोड़कर केंद्र तथा राज्यों में उनके इर्द-गिर्द के राजनीतिक नेता कच्चे और बिना परखे हुए स्त्री और पुरूष थे। उनमें से किसी का भी अपना कोई राजनीतिक आधार नहीं था और जो ज्यादातर, प्रशासनिक या राजनीतिक क्षमताओं के बजाए, अपनी वफादारी के लिए ही चुने गए थे।
- 23 जून, 1980 को एक स्टंट हवाई जहाज उड़ाते हुए संजय गांधी की मृत्यु ने उन्हें बिल्कुल हिला दिया और वे और भी ज्यादा कमजोर हो गई। संजय की जगह उन्होंने अपने बड़े बेटे राजीव गांधी को लाकर स्थान भरने की कोशिश की। राजीव गांधी को राजनीति में लाया गया, संसद सदस्य बनवाया गया और जब 1983 में पार्टी महासचिव के रूप में उनकी नियुक्ति की गई।
- पहली बार की तरह ही इंदिरा गांधी के दूसरे प्रधानमंत्रित्व दौर की सबसे बड़ी कमजोरी कांग्रेस की लगातार बनी सांगठनिक दुर्बलता और इसके ढांचे को फिर से बनाने एवं मजबूत करने में उनकी असफलता मानी जा सकती है।
- इसने अनिवार्यता सरकार के कामकाज और इसकी लोकप्रियता को प्रभावित किया। क्योंकि एक कमजोर पार्टी ढांचे का अर्थ यह था कि आम जनता के विचार नेता तक पहुंचाने के रास्ते ही बंद हो गए थे और न ही सरकार की नीतियों के स्वरूप और उपयोगिता को जनता तक पहुंचाया जा सकता था।

विदेश नीति

इंदिरा गाधी की सरकार ने विदेश नीति के मामले में भी कुछ सफलताएं हासिल की। मार्च 1983 में भारत ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन के 7वें अधिवेशन का आयोजन किया, जिसकी अध्यक्ष इंदिरा गांधी बनी। गुटनिरपेक्ष आंदोलन की औपचारिक नेता की हैसियत से वह नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के लिए सक्रिय होकर काम करने लगीं जिससे विकासशील देशों को ज्यादा बेहतर स्थिति प्राप्त हो सके।

27 सितंबर, 1979 को जब सोवियत संघ ने अपनी सेनाएं अफगानिस्तान की चारों तरफ से घिरी सरकार की मदद के लिए भेजीं, तो श्रीमती गांधी ने इस कार्रवाई की भर्त्सना करने से इनकार कर दिया परंतु साथ ही साथ उन्होंने सोवियत संघ को यह सलाह दी कि जितनी जल्दी संभव हो सके अपनी सेना हटा लें। हालांकि उन्होंने अफगानिस्तान मसले पर श्रीमती गांधी का दृष्टिकोण सोवियत संघ के साथ भारत का रणनीतिक हित अफगानिस्तान में भारत विरोधी प्रशासन को भी सत्ता में आने देने से रोकना था। अमरीका का पाकिस्तान की तरफ झुकाव होने के बावजूद इंदिरा गांधी ने उसके साथ भारत के संबंधों को बेहतर बनाने की कोशिश की। उन्होंने चीन और पाकिस्तान के साथ भी संबंधों को बेहतर बनाने की झुकाव होने के बावजूद इंदिरा गांधी ने उसके साथ भारत के संबंधों को बेहतर बनाने की कोशिश की। उन्होंने चीन और पाकिस्तान के साथ भी संबंध सुधारने की कोशिश की, बावजूद इसके कि पाकिस्तान पंजाब में आतंकवादियों को मदद दे रहा था। हालांकि वह अप्रैल 1984 में कश्मीर की नियंत्रण रेखा के साथ सटे हुए सियाचिन ग्लेशियर पर एक ब्रिगेड को स्थानांतरित करने के लिए सेना को आदेश देने से भी नहीं हिचकिचाई।

31 अक्टूबर, 1984 की सुबह इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व के लंबे दौर का अंत हो गया। उनके सुरक्षा गार्डो के दो सिख सदस्यों ने उनकी राजनीतिक हत्या कर दी। कांग्रेस संसदीय बोर्ड ने तत्काल ही उनके 40 वर्षीय बेटे राजीव गांधी को प्रधानमंत्री नामजद कर दिया।

❑❑❑

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

1. प्रधानमंत्री के रूप में शास्त्री के सामने गंभीर चुनौतियाँ थी जिसका उन्होंने सफलता पूर्वक सामना किया। व्याख्या कीजिए।

(300 शब्द)

2. जवाहर लाल नेहरू की परंपरा का निर्वाह करने में लाल बहादुर शास्त्री किस हद तक सफल रहे। चर्चा कीजिए।

(200 शब्द)

3. इंदिरा गांधी की विदेश-नीति नेहरू के विदेश-नीति से किस तरह अलग थी। टिप्पणी कीजिए।

(200 शब्द)

4. भारत में नक्सलवाद के प्रसार के क्या कारण थे। राजनीतिक असंतोष को इनके प्रसार में कहाँ तक जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

(200 शब्द)

5. आपातकाल के समय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की भूमिका को समझाइए। क्या आपातकाल देशहित में था। समझाइए।

(300 शब्द)

6. आपातकाल के संवैधानिक उपबंध पर चर्चा कीजिए।

(200 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

अध्याय

7

इंदिरा गांधी के बाद का काल

परिचय

राजीव गांधी 31 अक्तूबर, 1985 की रात को भारत के प्रधानमंत्री बने। उस दिन सुबह इंदिरा गांधी पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार पीटर उस्तिनोव से एक टेलीविजन इंटरव्यू के लिए अपने कार्यालय की ओर चल दीं। बदले में उनका सामना अपने भाग्य से हुआ। उनके दो सिख सुरक्षा गार्डों ने उनके ऊपर गोलियां बरसाई। यह जून 1984 में स्वर्ण मंदिर से सिख आतंकवादियों को निकाल बाहर करने के लिए उस पर हमले का बदला था। दोपहर होते-होते इंदिरा गांधी की मृत्यु की घोषणा कर दी गई। राजीव गांधी पश्चिम बंगाल में थे। वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं ने राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, जो यमन से तुरंत वापस आ गए, की सहमति से राजीव से प्रधानमंत्री बनने का अनुरोध किया। राजीव बहुत ही हिचकिचा रहे थे, और उनकी इटली में जन्मी पत्नी सोनिया और भी अधिक। आखिर उन्होंने यह निर्णय स्वीकार कर लिया, जिसकी परिणति साढ़े छह वर्षों बाद एक तमिल आत्मघाटी मानव-बम के हाथों में उनकी मृत्यु में हुई।

- राजीव गांधी चौदह वर्षों तक इंडियन एयरलाइंस में पाइलट थे। वे राजनीति से जानबूझकर उस समय तक दूर रहे जब जून 1980 में उनके छोटे भाई संजय एक हवाई दुर्घटना में मारे गए। संजय की मृत्यु के बाद इंदिरा ने उन्हें मदद करने को मना लिया। वे औपचारिक रूप से राजनीति में जून 1981 में शामिल हुए। उस समय वे यू.पी. के अमेठी लोकसभा क्षेत्र से चुने गए, जो संजय की मृत्यु के पश्चात् खाली हुई थी।
- उन्हें 1982 मे दिल्ली में एशियाई खेल संगठित करने का जिम्मा सौंपा गया। हर प्रकार से उनका काम अच्छा रहा। फरवरी 1983 में वे कांग्रेस के सात नए महासचिवों में एक बनाए गए। उनकी जिम्मेदारी थी, निम्नतर स्तरों पर कांग्रेस को पुनरूज्जीवित करना। यह इसलिए और भी जरूरी हो गया था क्योंकि राज्य चुनावों में कांग्रेस को बड़ा नुकसान पहुंचा था।
- लेकिन राजनीति में धीरे-धीरे ऊपर उठने की यह प्रक्रिया बीच में ही रूक गई, और उन्हें एकाएक प्रधानमंत्री बना दिया गया। चुनाव कुछ ही महीनों में होने वाले थे। कांग्रेस नेता चाहते थे कि उन्हें ऐसा कोई मिले जो जनता को गोलबंद कर सके। उनके विचार में इंदिरा की शहादत से जनित हमदर्दी की लहर को राजीव ही इकट्ठा कर सकते थे।

आम चुनाव, 1984

24 से 27 दिसंबर, 1984 को हुए आम चुनावों में कांग्रेस को अब तक का सबसे बड़ा बहुमत मिला। यदि पंजाब और आसाम में बाद में हुए चुनावों मे जीती सीटें भी जोड़ ली जाएं तो पार्टी को 543 लोकसभा की सीटों मे से 415 मिली। स्वयं राजीव अमेठी से भारी बहुमत से जीत गए। उन्होंने संजय की पत्नी मेनका को हराया, जो संजय की विरासत पर अपना दावा बनाना चाहती थी। कांग्रेस का चुनाव अभियान भारत की एकता और अखंडता पर केंद्रित था। इंदिरा गांधी की मृत्यु के बाद लोगों ने यह खतरा बढ़ता देखा। भारी बहुमत का मतलब ऊंची आशाएं, यहां तक कि अवास्तविक अपेक्षाएं भी थीं, जिन्हें एक बार राजीव ने खुद 'डरा देने वाली' बताया था।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

सिक्ख दंगा एवं भोपाल गैस काण्ड

सिक्ख दंगा: लेकिन राजीव को शुरू से ही बड़े संकटों का सामना करना पड़ा। उन्हें अपनी मां की भयानक मृत्यु के व्यक्तिगत दुख पर सोचने-विचारने का कम ही समय मिला। उस वक्त जब इंदिरा गांधी की मृत्यु पर शोक प्रकट करने सारे विश्व से प्रमुख व्यक्ति दिल्ली पहुंच रहे थे, शहर और खासकर शहर के सीमावर्ती पुनर्वास कॉलोनियों में बदले की भावना से जनित सिखों के खिलाफ भयानक दंगे हो रहे थे।

31 अक्टूबर को इंदिरा की मृत्यु से लेकर 3 नवंबर तक कई सिखों से घर लूटे गए, जलाए ओर उनका कारोबार बर्बाद कर दिया गया। करीब 2800 मारे गए। दंगा करने वाले अधिकतर गरीब और झुग्गियों में रहने वाले थे जों इंदिरा को अपना नेता और हमदर्द समझते थे और जो उनकी मृत्यु से भटक गए थे।

- यह भी आरोप लगाया गया है कि कुछ कांग्रेस कार्यकर्ता और स्थानीय नेता भी इसमें शामिल थे, जो भीड़ का नेतृत्व तक कर रहे थे। स्थानीय स्तर पर पुलिस ने भी इन घटनाओं से आखें बंद कर ली। इन आरोपों को बढ़ा-चढ़ाकर यह भी बताया जाने लगा कि कांग्रेस ने ये दंगे ऊपर के आदेश से संगठित किए। स्पष्टत: यह आरोप गलत है और साबित नहीं किया जा सकता है। यह भी सही है कि हजारों सिखों को हिंदू मित्रों एवं पड़ोसियों ने बचाया।
- परिस्थिति को नियंत्रण में लाने में सरकार की देरी के कारण ये हो सकते हैं: इंदिरा की हत्या के बाद मची गड़बड़ी, नए प्रधानमंत्री को शपथ दिलाए जाने संबंधी तैयारियां, शवदाह की जिम्मेदारी जिसमें भारी संख्या में जनता ओर विदेशी अतिथियों ने भाग लिया।
- हत्याकांड की पूरी खबर और पूरे स्वरूप को ऊपरी स्तरों तक पहुंचने और समझने में भी समय लग गया। 3 नवंबर को शवदाह के दिन राजीव सुबह में कुछ प्रभावित क्षेत्रों में भी गए, और बाद में फौज बुलाकर हिंसा रोकी गई। कई स्वयंसेवी संस्थाओं ने, जिनके कार्यकर्ता अधिकतर हिंदू थे, महीनों तक पीड़ित परिवारों तक राहत पहुंचाने का काम किया। इसी प्रकार की हिंसा, हालांकि कुछ कम स्तर पर कुछ उत्तर भारतीय शहरों में हुई, खासकर कानपुर और बोकारो में।

भोपाल गैस काण्ड: राजीव के प्रधानमंत्री बनने के दो सप्ताह के अंदर ही भोपाल गैस कांड हुआ। इसमें करीब दो हजार लोग मारे गए। वे अधिकतर गरीब झुग्गी-निवासी थे। कई हजार बीमार पड़ गए। यह पटना यूनियन कार्बाइड नाम मल्टीनेशनल कंपनी की एक रसायन फैक्ट्री से जहरीली गैस निकलने से हुई। मुआवजे के मुकदमे लंबे समय तक अमरीकी तथा भारतीय कोर्टों में चलते रहे। अंतिम समझौता कोई उदार साबित नहीं हुआ। पीड़ितों की पहचान के प्रश्न पर मुकदमा अफसरशाही चक्करों में और भी उलझ गया।

राजीव गांधी एवं टेक्नोलॉजी मिशन

समस्याओं के बावजूद राजीव प्रशासन ने सकारात्मक रूप से काम की शुरूआत की। नीति-संबंधी कई कदम उठाए गए। राजनीतिक स्तर पर उन्होंने जो प्रक्रिया शुरू की, उसकी परिणति पंजाब ओर आसाम के समझौतों में हुई। लेकिन उनका सबसे प्रसिद्ध कार्य शायद छह 'टेक्नोलॉजी मिशन' हैं। यह कोई भारतीयों के लिए एक युवा प्रधानमंत्री का आधुनिक और टेक्नोलॉजिकल झुकाव ही नहीं था। इसके पीछे विचार यह था कि छह अविकसित क्षेत्र चुनकर उसमें समस्याओं के हल के लिए वैज्ञानिक रूख अपनाया जाए, उद्देश्यपूर्ण इन परियोजनों को 'टेक्नोलॉजी मिशन' कहा गया।

पहला मिशन

अधिकतर मामलों में इक्कसवीं सदी के आगमन को इन उद्देश्यों की पूर्ति का समय निर्धारित किया गया। मुख्य उद्देश्य यह था कि भारत एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में नई सदी में दाखिल हो। इन मिशनों में सबसे महत्वपूर्ण था पीने के पानी का मिशन जिसका उद्देश्य था सारे भारतीय गांवो को पीने का पानी मुहैया कराना। सिर्फ 1/5 गांवों में ही यह सुविधा उपलब्ध थी। इस काम में उपग्रह, भूगर्भशास्त्र, सिविल इंजीनियरी और बायोकेमिस्ट्री के प्रयोग के जरिय पानी के स्रोतों का पता लगाना और उन्हें पीने के लिए साफ करना था। साक्षरता मिशन का उद्देश्य था जन साक्षरता की कई समस्याएं हल करना।

दूसरा मिशन

आजादी के चालीस वर्षों बाद भी साठ प्रतिशत लोग निरक्षर थे। इसके लिए ग्रामीण इलाकों में टेलीविजन नेटवर्क का फैलाव

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER AHEAD ESTD 2015

और उपयोग करना था और साथ ही वीडियों और ऑडियों कैसेट्स तथा अन्य तरीको का भी। शायद यह दूरगामी नतीजों को देखते हुए सबसे महत्वपूर्ण मिशन था।

- पूर्ण साक्षरता मिशन के रूप में इसने कई क्षेत्रों में गहरी पैठ बनाई और समस्या को राजनीतिक बहस के केंद्र में ला खड़ा कर दिया।

तीसरा मिशन

गर्भवती महिलाओं और बच्चों के टीकाकरण अभियान का था। यह विचार काफी प्रभावशाली और व्यापक बन गया, जिसका एक उदाहरण बच्चों को पोलियों का टीका लगाने का अभियान है।

चौथा मिशन

'श्वेत क्रांति' थी : गायों और भैसों का स्वास्थ्य तथा दूध उत्पादन बढ़ाना। यह बड़ा ही प्रभावी साबित हुआ है। भारत ने काफी मात्रा मे पकाने का तेल बाहर से मंगाया है जिसने विदेशी मुद्रा में कमी लाई है। इसलिए पांचवे मिशन का उद्देश्य भोजन में प्रयुक्त तेल का उत्पादन बढ़ाना है। छठे मिशन का उद्देश्य इस सदी के अंत तक देश के प्रत्येक गांव में एक टेलीफोन पहुंचाना है।

- टेक्नोलॉजी मिशन की नीति के प्रति जागरूकता पैदा करने वाले व्यक्ति सैम पित्रोदा हैं। इन युवा भारतीय संचार विशेषज्ञ की ट्रेनिंग अमरीका में हुई है। उन्होंने टेलीफोन स्विचिंग प्रणाली के विकास से अमरीका में बड़ा धन कमाया। उन्होने श्रीमती गांधी को 'सी-डॉट' या सेंटर फॉर डेवलपमेंट ऑफ टेलीमैटिक्स' के विकास की आवश्यकता में विश्वास दिलाया था। बाद में वे टेक्नोलॉजी मिशन में राजीव के सलाहकार बन गए और टेलीकॉम कमिशन के अध्यक्ष।

कंम्प्यूटराइजेशन

श्रीमती गांधी की देखरेख में पहले ही तैयार हो रहे कंप्यूटराइजेशन कार्यक्रम को राजीव गांधी के तहत काफी बल मिला। पार्ट-पुर्जो पर आयात शुल्क घटा दिया गया ताकि घरेलू उत्पादक उत्पादन बढ़ा सकें। विदेशी उत्पादकों को घरेलू बाजार में प्रवेश की इजाजत मिली ताकि गुण तथा प्रतियोगी कीमतें बनी रहें।

- दफ्तरों और स्कूलों में कंप्यूटरों का प्रयोग प्रोत्साहित किया गया। 'भारत में जहां मानव श्रम की बहुलता है उसमें कंप्यूटरों के प्रयोग की आवश्यकता हैं', राजीव गांधी ने भविष्य को ध्यान में रखकर इस नीति को नजरंदाज कर दिया है और आगे बढ़ गया। ज्यादातर बहस गलत सूचनाओं पर आधारित थी, और इसलिए राजीव की नीति से देश को फायदा हुआ।
- सॉफ्टवेयर एक महत्वपूर्ण विदेशी मुद्रा-स्रोत बन गया। अपने औपनिवेशिक इतिहास के कारण भारत औद्योगिक क्रांति से वंचित रह गया था। इसलिए उसका सूचना एवं संचार क्रांति में भाग लेना जरूरी था।
- यही विचार कई दूरदृष्टि रखने वाले भारतीयों का था, और राजीव ने इसका पूरा-पूरा समर्थन किया। अर्थतंत्र मे नियंत्रणों में उदारीकरण, निर्यात में वृद्धि, आयात शुल्कों में कमी, इत्यादि जैसे कदम भी उठाए गए।

स्थानीय स्वशासन से संबंधित दृष्टिकोण

स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं मजबूत करने के बारे मे काफी बातें की जाती रहीं हैं। यह राजीव और उनकी सरकार थी जिन्होंने पंचायती राज संस्थाएं मजबूत करने के कदम उठाए। इसके लिए बहसें की गई, तथा पंचायत चुनाव अनिवार्य करने के लिए कानून बनाने और इस प्रकार उन्हें संवैधानिक स्वरूप प्रदान करने संबंधी कदम उठाए गए। इसके लिए संवैधानिक संशोधन की जरूरत थी। राजीव के लिए यह बड़े ही दुख की बात थी कि विरोधी पार्टियां बिना किसी कारण विशेष के इन बिलों को राज्य सभा में रोक दे रही थीं, जहां कांग्रेस को बहुमत नहीं था। उद्देश्य को लागू करने की प्रक्रिया भी उतनी ही प्रभावशाली थी। दिसंबर 1987 और जून 1988 के बीच राजीव ने 400 जिला कलेक्टरों या जिला अधिकारियों से मुलाकात की। जुलाई 1988 में मुख्य सचिवों के साथ एक बैठक की गई, जो राज्यों के उच्चतम अधिकारी थे। जनवरी 1989 में 8000 प्रतिनिधियों का एक पंचायती राज सम्मेलन किया गया, और इसके बाद मई में महिलाओं के लिए पंचायती राज विषय पर एक सम्मेलन। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने इन प्रस्तावों का मई 1989 में समर्थन किया, और इसके बाद राज्यों के मुख्यमंत्रियों का एक सम्मेलन किया गया। राजीव गांधी ने उचित ही दावा कि कि ''पहले कभी भी किसी सरकार ने उच्च स्तरों में निम्नतम स्तर पर जनतंत्र एवं विकास के बारे में इतने दसियों हजार लोगों के विचार इतनी सावधानी से नहीं लिए।''

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- गरीबों के लिए एक और योजना जवाहर रोजगार योजना थी। जिसका उद्देश्य प्रत्येक गरीब ग्रामीण परिवार के कम से कम एक सदस्य को साल में 50 से 100 दिनों के लिए रोजगार प्रदान करना था। इस योजना का उद्घाटन जवाहरलाल नेहरू (जन्म 1889) की जन्मशती के अवसर पर किया गया था।
- केंद्रीय सरकार ने स्कीम की 80 फीसदी रकम देने का वायदा किया। नई शिक्षा नीति का केंद्र भी ग्रामीण क्षेत्र और गरीब थे। इसके जरिए ये साक्षरता अभियान, ब्लैकबोर्ड अभियान (जिसका उद्देश्य स्कूलों में मूल सुविधाएं प्रदान करना था) और दूर-शिक्षा। राजीव की बुराई करने वाले नवोदय विद्यालयों को बदनाम करते हैं।
- इसे लगातार **राजीव की शिक्षा** नीति के कुलीन चरित्र का प्रमाण बताया जाता है। वास्तव में इन विद्यालयों का उद्देश्य गरीब ग्रामीण परिवारो को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना था। उन्हें उनकी काबिलियत के आधार पर चुना जाता और उनके रहने के लिए हर जिले में रहने का इंतजाम रखने वाले स्कूलों का निर्माण होता।
- **महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना** का मसविदा वर्ष 1988 में तैयार किया गया था। इसके महत्वपूर्ण सुझावों में सभी पंचायती संस्थाओं में चुनी हुई सीटों का 30 फीसदी महिलाओं के लिए आरक्षण था। इसे पंचायती राज विधानों में शामिल किया गया। इसमें यह था कि निचले स्तरों पर 50 फीसदी कार्यकर्ता महिलाएं होनी चाहिए। इस योजना में महिलाओं के स्वास्थ्य और शिक्षा को भी स्थान मिला। दहेज-संबंधी अपराधों के लिए दंड का प्रावधान भी वर्ष 1986 में किया गया।
- **पर्यावरण की रक्षा** राजीव के लिए अत्यंत ही चिंता का विषय था, वैसे ही जैसे उनकी माता के लिए। और कदमों के अलावा उन्होंने गंगा की सफाई का अभियान बड़े पैमाने पर शुरू किया। गंगा भारतीय नदियों में सबसे पवित्र मानी जाती है, जिसे कई जगहों पर बेशर्मी से गंदा किया गया है। उन्होंने एक नए पर्यावरण मंत्रालय का निर्माण किया, जिसकी अनुमति बड़ी योजनाएं पास करने के लिए जरूरी थी।
- **गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नौवें शिखर सम्मेलन** में उन्होंने धरती की रक्षा का कोष तैयार किया। इसका उद्देश्य पर्यावरण की रक्षा के लिए विकसित टेक्नोलॉजी विकासमान देशों को मुहैया कराना था।
- कई पश्चिमी देशों में भारत ने खर्चीले भारत-मेले आयोजित किए। इनके बहाने कुछ विशेष तबकों ने राजीव सरकार की सांस्कृतिक नीति को पश्चिम की मांगें पूरी करने की कोशिश बताया। लेकिन ये लोग यह भूल गए कि इस दौर में भारत के विभिन्न भागों में सात क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र कायम किए गए। इनका उद्देश्य राज्य द्वारा कला के विकास की सहायता का केंद्र राज्यों की ओर ले जाना था। इस आरोप में कुछ सच्चाई है कि अति-उत्साह के कारण बहुमूल्य सांस्कृतिक संपत्ति को विदेश ले जाया गया जिससे इसे कुछ नुकसान भी हुआ। यह राजीव के शासन की विशेषता थी, इसमें शक है। लेकिन इन आलोचनाओं के बावूजद सच्चाई यह है कि भारत-मेलों ने भारत को विश्व सांस्कृतिक नक्शे पर ला दिया। यदि सरकार की जिम्मेदारियों में विश्व के पैमानों पर देश को आगे बढ़ाना है, तो भारत-मेलों ने अवश्य ही यह काम पूरा किया है।
- **नौकरशाही:** राजीव के शासनकाल मे राजनीतिक और नौकरशाही व्यवस्था की सफाई की कोशिशें की गई। इस दिशा में अधिक खुलापन, जिम्मेदारी और वैधानिक एवं अन्य तरीके से अपराधियों पर अंकुश लगाने की कोशिश की गई। इनमें से एक कदम दलबदल विरोधी एक्ट था जिसका मसविदा विरोधी पार्टियों से बहस के बाद तैयार किया गया और वर्ष 1985 में पास किया गया।
- इस एक्ट में कहा गया कि संसद में किसी भी राजनीतिक पार्टी के कम से कम एक-तिहाई सदस्यों के अलग होने पर ही उन्हें अलग पार्टी के रूप में मान्यता प्रदान की जाएगी। अन्यथा, अलग होने पर सदस्य को सदन से निकाल दिया जाएगा। ऐसा भारतीय राजनीति मे दलबदलूपन के बढ़ते रूझान के सदस्यों की खरीद-फरोख्त पर रोक लगाने के लिए किया गया था।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in

- **लोक अदालतें, और उपभोक्ता संरक्षण एक्ट अन्य** कुछ कदम थे। सरकारी मीडिया को अधिक आजादी, विशेषकर टेलीविजन को, और सरकार की आलोचना में बनाए गए कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया गया। इससे मंत्री और अफसर निरंतर सेचत रहे। इन सभी कदमों पर प्रधानमंत्री की व्यक्तिगत छाप थी। राजीव के समर्थन से वी.पी.सिंह ने कारोबार घरानों पर बहु-प्रचारित छापे डलवाए। इन सबसे राजीव के बारे में एक साफ-सुथरी छवि बनी।

लेकिन दिसंबर 1985 में कांग्रेस शताब्दी समारोह के अवसर पर दिए गए उनके भाषण ने प्रशसंकों एवं आलोचकों दोनों ही को हिला दिया। उस वक्त उनके प्रशंसकों की संख्या आलोचकों से ज्यादा थी, और राजीव अपने शासन के पंद्रह सुखद महीनों से गुजर रहे थे। इस अवसर पर राजीव ने उन लोगों की तीखी आलोचना की, जिन्हें उन्होंने सत्ता के दलाल बताया। ये दलाल ही थे जिन्होंने इस महान पार्टी को खोखला बना डाला था। राजीव ने वादा किया वे उनका शिंकजा समाप्त करके पार्टी को पुनर्जीवित करेंगे। इसे पुराने नेताओं को अपने तरीके से बदलने की चेतावनी समझा गया; अन्यथा उन्हें छोड़ना' पड़ेगा। पार्टी के कई लोगों ने, जो वैसे राजीव की नीति के समर्थन थे, उनके 'अनादरपूर्ण' तरीके को पंसद नहीं किया। उनके विचार में पार्टी की जन्मशती का अवसर ऐसी घोषणाओं के लिए उपयुक्त नहीं था। राजीव कांग्रेस के अंदर चुनाव करवाने में उतने ही कम या ज्यादा सफल रहे जितनी कि उनकी माता। स्थानीय स्तरों पर पार्टी नेताओं की पकड़ का मतलब था कि वो फर्जी चुनाव करवा सकते थे, और इस प्रकार चुने जाने की वैधता भी हासिल कर सकते थे। राजीव ने जल्द ही अनुभव कर लिया कि पार्टी के वरिष्ट नेताओं से संपर्क बनाए रखना जरूरी था, और राजनीति करना एक क्षमतावान कारपोरेशन या कंपनी चलाने से अलग किस्म का काम था। समय के साथ, अपने सलाहकारों और सहयोगियों के रूप में उन्होंने नाराज हो गए पुराने नेताओं को वापस बुलाया, जैसे अरूण नेहरू, अरूण सिंह और वी.पी.सिंह। श्रीमती गांधी के पुराने सलाहकार आर.के.धवन के वर्ष 1989 के आरंभ में वापस आने से यह चक्र पूरा हो गया। धवन उसी पुरानी प्रणाली के प्रतीक थे जिसे अपने भोलेपन में राजीव ने दिसंबर 1985 में समाप्त करने की ठानी थी।

विदेश नीति संबंधी पहल

राजीव ने सक्रिय कार्यकर्ता के उत्साह के साथ विदेशी मामलों में काम किया। वे छोटे-बड़े देशों के व्यापक दौरों पर किए गए ओर विविध प्रकार के विश्व मंचों में भाग लिया। अपने नाना और माता की नीति पर चलने के बावजूद विदेश नीति पर उन्होंने अपनी अलग छाप छोड़ी। उन्होंने न्यूक्लियर नि:शस्त्रीकरण, दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद ओर नामीबिया की आजादी के संबंध में अपनी आवाज उठाई। अपनी मृत्यु से कुछ पहले इंदिरा ने पांच महादेशों के छह देशों की पहल की स्थापना की थी। इसमें उन्होंने अर्जेंटीना, यूनान, मेक्सिको, स्वीडेन, तंजानिया और भारत को शामिल किया। इसका उद्देश्यों था महाशक्तियों पर हथियार कम करने और न्यूक्लियर हथियार घटाने का दबाव डालना। चुनाव जीतने के एक महीने के अंदर राजीव ने छह देशों का शिखर सम्मेलन बुलाया। यह ध्यान रहे कि यह गोर्बाचेव के सत्ता में आने से पहले और न्यूक्लियर नि:शस्त्रीकरण महाशक्तियों के एजेंडा का हिस्सा बनने से पहले हुआ था। गोर्बाचेव के सोवियत संघ का नेता बनने के बाद राजीव उनसे मिले। उन्होंने उन्हें नि:शस्त्रीकरण में दिलचस्पी लेता पाया। वास्तव में नए नेता के नए विचारों के प्रति अमेरिका के जागरूक होने से पहले ही राजीव गोर्बाचेव को शांति की शक्ति समझने लगे थे। नवंबर 1986 में गोर्बाचेव की भारत यात्रा के अवसर पर दोनों ने अहिंसक विश्व का नारा दिया। दिल्ली घोषणा ने नि:शस्त्रीकरण की योजना तैयार की। छह देशों की पहल न्यूक्लियर नि:शस्त्रीकरण के लिए कार्य-योजना में बदल गई इसे राजीव ने संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा के नि:शस्त्रीकरण संबंधी तीसरे विशेष अधिवेशन के सामने पेश किया, जो जून 1988 में हुआ। इस योजना में 2010 तक सभी प्रकार के न्यूक्लियर हथियारों की समाप्ति का आवाहन किया गया।

अफ्रीका के साथ संबंध

राजीव गांधी दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के प्रश्न पर विशेष चिंतित रहा करते थे। गांधीजी प्रथम व्यक्ति थे जिनसे दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद का प्रश्न वर्ष 1893 में उठाया। नेहरू चालीस दशक के अंत में इसे संयुक्त राष्ट्रसंघ में उठाने वाले प्रथम थे। और भारत वह पहला देश था जिसने इस प्रश्न पर दक्षिण अफ्रीका के साथ व्यापार और राजनयिक संबंध तोड़ डाले। राजीव ने इस परंपरा में आगे जोशोखरोश के साथ काम किया। यहां तक कि वे

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

राष्ट्रकुल में इस प्रश्न पर बहुमत हासिल करने में सफल हो गए। लेकिन वे हठी श्रीमती थैचर को प्रभावित नहीं कर सके। 'अफ्रीका' (एक्शन फॉर रेजिस्टिंग इन्वेजन, कलोनिएलिज्म एंड अपारथायड का संक्षिप्त अंग्रेजी रूप- 'उपनिवेशवाद तथा रंगभेद एवं हमले का विरोध करने के लिए कार्य') फंड बनाने में अधिक सफलता मिली। यह फंड (कोष) 1986 में हरारे में आयोजित गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में स्थापित किया गया था। तीन वर्षों बाद बेलग्रेड में हुए गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन तक राजीव 50 करोड़ डॉलर का कोष संगठित करने में सफल हो गए थे। इसका उपयोग दक्षिण अफ्रीका को आर्थिक नाकेबंदी के कारण उनकी सीमा पर स्थिति ('सीमावर्ती राज्य') देशों को हुए नुकसान का सामना करने के लिए किया जाना था। इस धन को विकासमान एवं विकसित देशां ने मिलकर इकट्ठा किया था।

- नामीबिया की आजादी इस प्रश्न से गहरे रूप से जुड़ी थी, क्योंकि वह दक्षिण अफ्रीका का उपनिवेश था। राजीव ने 'स्वापो' को मान्यता प्रदान की। स्वापो नामीबिया की आजादी के लिए लड़ने वाली संस्था थी। राजीव ने जांबिया, जिंबाब्बे, अंगोला तथा तंजानिया के 'सीमावर्ती' देशों का दौरा मई 1986 में किया। इसके अलावा, उन्होंने सभी अंतर्राष्ट्रीय समारोहों में इनके पक्ष में आवाज उठाई। नामीबिया को वर्ष 1990 मे आजादी मिली। तब तक राजीव प्रधानमंत्री नहीं रह गए थे। लेकिन उन्होंने उन समारोहों में भाग लिया जहां उनकी मुलाकात नेल्सन मंडेला से हुई इस प्रकार वे दो पंसद की घटनाओं के भागीदार रहे।

महाशक्तियों के साथ संबंध

महाशक्तियों के साथ भारत के संबंध राजीव के कार्यकाल में बेहतर हुए लेकिन उनमें कोई बड़े परिवर्तन नहीं हुए। यह अंदाजा लगाया जा रहा था कि युवा प्रधानमंत्री मुक्त-बाजार की नीतियों और तकनीकी-प्रबंधन की अपनी पंसद के कारण अमरीका की ओर झुक जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वर्ष 1985 में उनकी अमरीकी यात्रा सफल रही। रीगन से उनकी अच्छी बनी। उन्होंने रीगन को इस बात के लिए भी मना लिया कि अमरीका भारत को मौसम संबंधी आंकड़ों को विश्लेषण के लिए सुपर कंप्यूटर दे। लेकिन अमरीका पाकिस्तान का समर्थन कर रहा था, अफगानिस्तान में सोवियत संघ के खिलाफ मुजाहिद्दीन कार्रवाइयों के साथ था, इसलिए कोई बड़ा परिवर्तन होने का बहुत कम मौका था। लेकिन गोर्बाचेव के साथ बड़े गहरे संबंध विकसित हुए। ये दोनो नेता पांच वर्षों के बीच आठ बार आपस में मिले।

चीन के साथ संबंध

वर्ष 1988 में राजीव ने चीन की यात्रा की। यह वर्ष 1954 में नेहरू की प्रथम यात्रा के बाद किसी भारतीय प्रधानमंत्री का पहला दौरा था। अविस्मरणीय टी.वी. चित्र दिखाए गए जिनमें देंग राजीव का हाथ मानो छोड़ ही नहीं रहे थे। देंग ने अपनी पीढ़ी के लोगों द्वारा गलतियों की ओर ध्यान दिलाया जिन्हें राजीव गांधी के नेतृत्व में नई पीढ़ी को दोहराना नहीं चाहिए। इस यात्रा का महत्व इस बात के कारण भी है कि वर्ष 1986 में कुछ सीमा की घटनाओं के कारण दोनों देशों के संबंध बिगड़ रहे थे। यात्रा के बाद काफी देर से चली आ रही समस्याओं को हल करने की कोशिशें हुई और साथ ही व्यापार में बेहतरी हुई तथा राजनयिक संबंध बेहतर हुए। यहां तक कि भारत 4 जून 1989 के तिएन-आन-मेन चौक की आलोचना करने से भी कतरा गया। इस बात का सबूत था कि भारत अभी हाल ही में सुधरे संबंध बिगाड़ना नहीं चाहता था।

पड़ोसी देशों के साथ संबंध

राजीव के कार्यकाल में पड़ोसियों के साथ भारत के संबंध अच्छे नहीं रहे। बांग्लादेश अधिकाधिक इस्लामी दिशा में जाने लगा, और फासी को लेकर मतभेद बढ़ने लगे। नेपाल के साथ समस्याएं पैदा हो गई, और वहां की सरकार ने भारतीय माल पर भारी टैक्स लगा दिए, चीनी सामान पर टैक्स में कटौती की।

- वर्ष 1988 में नेपाल को चीन से भारी मात्रा में विध्वंसक राइफलें और विमान-भेदी तोपें मिलीं। नेपाल ने भारतीय निवासियों से काम के परमिट लेने को कहा, जबकि भारत में लाखों नेपाली बिना किसी परमिट के रहते और काम करते हैं भारत सरकार ने मार्च 1989 में लगभग आर्थिक नाकेबंदी कर दी, और सितंबर से इस संबंध में बातचीत शुरू कर दी।
- मालदीव में विद्रोह हो गया जिसे दबाने के लिए भारतीय सहायता की गई और उसे दबा दिया गया। पाकिस्तान में बेनजीर भुट्टों के प्रधानमंत्री बनने के बाद जगी आशाओं के बावजूद स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। राजीव ने पाकिस्तान की यात्रा की, जो नेहरू के बाद किसी भारतीय प्रधानमंत्री

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission IAS A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

की पहली यात्रा थी। लेकिन पाकिस्तान कश्मीर तथा पंजाब में आंतकवाद को मदद करता रहा।

- लेकिन श्रीलंका में भारत बुरी तरह फंस गया, जिससे बाहर आना उसके लिए कठिन हो गया। समस्या की शुरूआत तब हुई जब श्रीलंका से हजारों तमिल लोग भागकर वर्ष 1983 में तमिलनाडु आए। जाफना में एल.टी.टी.ई. के आधार-क्षेत्र में श्रीलंका की सरकार ने भारी दमन शुरू किया। एल.टी.टी.ई. तमिल स्वायत्तता, और बाद में श्रीलंका से आजादी के लिए लड़ रहा था।
- भारत में जनमत, विशेषकर तमिलनाडु में जहां लोग वहीं भाषा बोलते हैं जो शरणार्थी, इन तमिल शरणार्थियों की मदद के लिए कुछ करने के पक्ष में था। जाफना पर श्रीलंका की सरकार ने नाकेबंदी और भी कड़ी कर दी, जिससे दैनिक जरूरतों की चीजें लोगों तक पहुंचनी बंद हो गई। भारत ने मछली मारने की नावों में सहायता भेजना आरंभ किया लेकिन श्रीलंकाई नौसेना ने इसे रोक दिया।
- इसके बाद भारतीय मालवाहक हवाई जहाजों ने वहां सामान गिराना शुरू किया, जिनमें भारतीय और विदेश पत्रकार भी मौजूद थे। श्रीलंका ने महसूस किया कि वह बहुत दूर तक चला गया था, इसलिए नावों द्वारा सप्लाई की इजाजत दे दी। लेकिन तमिल विद्रोह जारी रहा। श्रीलंका की सरकार ने समझ लिया कि भारत के अलावा कोई दूसरा देश उसकी सहायता नहीं कर सकता है।
- राष्ट्रपति जयवर्द्धनें ने राजीव से संपर्क स्थापित किया। बातचीत का नतीजा जुलाई 1987 में एक समझौते के रूप में हुआ। इसके तहत श्रीलंका के उतरी और पूर्वी प्रदेश एक ही प्रदेश का हिस्सा होंगे, अधिकारों का काफी हद तक वितरण होगा, एल.टी.टी.ई भंग कर दी जाएगी, हथियार थोड़ी अवधि के लिए जमा कर दिए जाएगे, और यदि श्रीलंका सरकार अनुरोध करती है तो भारतीय फौज उसकी सहायता के लिए जाएगी। समझौता लागू नहीं हो पाया क्योंकि एल.टी.टी.ई ने बड़ी हिचकिचाहट के साथ सहमति प्रकट की थी, संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए थे, श्रीलंका की सरकार पर उसे भरोसा नहीं था, और उसने आत्मसमर्पण करने से इनकार कर दिया। इस बीच जयवर्द्धने ने संधि लागू करने के लिए भारतीय फौज की मदद मांगी। चूंकि एल.टी.टी.ई. रास्ते का रोड़ा साबित हो रही थी, इसलिए फौज अधिकाधिक तमिल छापामारों के साथ लड़ाई में फंसती चली गई। इन छापामारों को फायदा था क्योंकि वे इन इलाकों से बहुत अच्छी तरह परिचित थे और उन्हें स्थानीय समर्थन हासिल था।
- **भारतीय फौज की स्थिति बड़ी अजीब थी:** तमिल नाराज थे क्योंकि एल.टी.टी.ई. को निरस्त्र किया जा रहा था, और विदेशी फौज होने के नाते श्रीलंकाई नाराज थे। जब प्रेमदासा जयवर्द्धने के उत्तराधिकारी बने तो परिस्थिति और भी जटिल हो गई। उन्होनें भारतीय फौज से वापस जाने को कहा। राजीव चरणबद्ध वापसी के लिए राजी हो गए। वर्ष 1989 के मध्य फौजें वापस आने लगी, लेकिन वर्ष 1989 के चुनावों के बाद ही पुरी तरह वापस आई। श्रीलंका के इस संकट की कीमत राजीव को अपनी जान गंवाकर अदा करनी पड़ी।

कबांडिया एवं वियतनाम

कंपूचिया (कंबोडिया) से वियतनामियों की वापसी के बारे में बातचीत में भारत ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह नेहरू के दिनो की याद दिलाता है जब भारत ने बड़ी ईमानदारी से दक्षिण एशिया, कोरिया, कांगो तथा अन्य जगहों मे मध्यस्थ की भूमिका अदा की। जनवरी 1987 में वियतनाम ने भारत को सूचित किया वह कंपूचिया से हटना चाहता है। कंपूचिया पर उसने कुछ वर्षो पूर्व कब्जा किया था। वियतनाम चाहता था कि भारत अन्य देशों के साथ मिलकर इस काम की रूपरेखा तैयार करे। भारत के राज्य स्तर के विदेश मंत्री दिनेश सिंह ने इस संबंध में दक्षिण-पूर्वी एशिया में काफी भागदौड़ की उन्होनें पेरिस में सत्ताच्यूत कंपूचियाई शासक प्रिंस सिंहानुक से कई बार मुलाकात की, और सिंहानु तथा हेंग सामरिन के बीच बैठकें आयोजित की। जब समझौता होने को आया, तो अमरीका तथा चीन में अड़ंगे लगाए और भारत को दरकिनार किरने का प्रयत्न किया। पेरिस में 21 देशों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें भारत को बुलाया गया। समझौते के अनुसार वियतनाम वापस चला गया, संयुक्त राष्ट्र संघ की देखरेख में चुनाव होना तय हुआ, और कंपूचिया में सिंहानुक और हेंग सामरिन की मिली-जुली सरकार बनना तय हुआ।

- **राजीव गांधी ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन** (नाम) को उद्देश्यपूर्ण बनाकर और उसमें नया जीवन प्रदान कर न्यूक्लियर नि:शस्त्रीकरण का उद्देश्य पेश किया। उन्होंने जी-15 बनाने की सलाह भी दी, जो जी-77 का संक्षिप्त रूप था, और जी-7 के अधिक नजदीक था। उन्होंने भारत को विश्व पटल पर अधिक स्पष्टता से पेश किया, और देश ने हर महत्वपूर्ण मंच पर भाग लिया। उन्होंने अपने पांच वर्षों के कार्यकाल में औसतन प्रति माह एक के हिसाब से विदेश का दौरा किया। इसके लिए इन्हें अपने विरोधियों से 'भारत का कभी-कभी दौरा करने' संबंधी ताने भी सुनने पड़े।
- राष्ट्रो के समुदाय (कम्युनिटी ऑफ नेशन्स) में भारत की छवि बेहतर बनाने के ख्याल से राजीव ने भारतीय सुरक्षा अधिक मजबूत करने पर ध्यान दिया। उन्होंने सशस्त्र सेनाओ के आधुनिकीकरण की इजाजत दे दी, जिससे प्रतिरक्षा खर्चा दुगुना हो गया। श्रीमती गांधी ने वर्ष 1983 मे निर्देशित मिसाइल विकास कार्यक्रम आरंभ किया था। राजीव के तहत इसके नतीजे सामने आने लगे: दो कम दूरी वाले मिसाइल त्रिशूल और अग्नि, तथा मध्यम दूरी की मिसालइ अग्नि, जिनमें राजीव ने दिलचस्पी ली थी, पर सफलतापूर्वक प्रयोग किए गए।
- **भारतीय सेना का काफी विस्तार किया गया।** सोवितय संघ से न्यूक्लियर शक्ति से चलने वाली पनडुब्बी लीज पर ली गई और ब्रिटेन से एक और हवाई जहाज ले जाने वाला जहाज खरीदा गया। फौज को स्वीडेन से होविट्जर गन मिले और पूर्णत: भारतीय लड़ाकू टैंक अर्जुन विकसित किया गया। राजीव के शासक के अंतिम दो वर्षो मे सरकारी खर्चे का पांचवां हिस्सा प्रतिरक्षा पर खर्च हो रहा था।

बोफोर्स और इसके नतीजे

बोफोर्स घटना इतनी बड़ी थी की इसका प्रभाव आज भी फैला हुआ है। इसकी लेकिन इनकी शुरूआत फेयरफैक्स तथा एच.डी.डब्ल्यू. पनडुब्बी खरीदारी से हुई। फेयरफैक्स विवाद राजीव के वित्तमंत्री वी.पी.सिंह द्वारा एक अमरीकी डिटेक्टिव (जासूसी) एजेंसी फेयरफैक्स की नियुक्ति में खड़ा हुआ। वी.पी. सिंह अपने 'पाया मारने के राज' के लिए विख्यात हो चुके थे। फेयरफैक्स को भारतीय द्वारा विदेशी बैंकों से विदेशी मुद्रा के गैरकानूनी रूप से जमा करने की भी जांच का काम सौंपा गया था। एक जाली पत्र पाया गया जिससे पता चलता था कि प्रधानमंत्री के गहरे मित्र अमिताभ बच्चन इसमें शामिल थे। यह पत्र कहां से आया, यह किसी को पता नहीं। बड़े उद्योगपति, बांबे डाइंग के नुसली वाडिया और रिलायंस के अंबानी भी इसमें विरोधी पक्ष में शामिल थे। वी.पी.सिंह को वित्त से प्रतिरक्षा में स्थानांतरित किया गया। राजीव ने दावा किया कि पाकिस्तान के साथ टकराव के संकट के कारण उन्हें प्रतिरक्षा कार्य के लिए किसी काबिल व्यक्ति की जरूरत थी। लेकिन इसे विरोधी पक्ष में इस बात का सबूत माना कि राजीव अपने मित्र अमिताभ को बचाने को कोशिश कर रहे थे। इसके बाद एच.डी.डब्ल्यू. पनडुब्बी कांड हुआ। भारत ने पश्चिम जर्मनी से वर्ष 1981 में चार पनडुब्बियां खरीदी थीं। वह दो और खरीदना चाहता था और कीमतों में कुछ कटौती की मांग की। लेकिन जहाज यार्ड ने यह कहते हुए इनकार कर दिया कि उसे बिक्री पर 7 फीसदी की भारी ड्यूटी देनी पड़ती है। वी.पी.सिंह, जो उस समय रक्षामंत्री थे, बिना राजीव से पूछे जांच का आदेश दे दिया। इसे एक गैर-दोस्ताना काम माना गया क्योंकि वर्ष 1981 के समझौते के समय स्वयं श्रीमती गांधी रक्षामंत्री थीं, और कांग्रेस की सरकार थी। वी.पी.सिंह की कैबिनेट मे आलोचना की गई और उन्होंने जल्द ही सरकार से इस्तीफा दे दिया। विरोधी पक्ष एवं प्रेस ने इसे वी.पी.सिंह की ईमानदारी और राजीव गांधी द्वारा मामले पर पर्दा डालने की कोशिश बताया।

- वी.पी.सिंह के इस्तीफे के कुछ दिनों बाद 16 अप्रैल 1987 को मामला फूट पड़ा। आरोप सबसे पहले स्वीडिश रेडियों पर घोषित हुए। आरोप लगाया गया कि फ्रांसीसी तोप के मुकाबले स्वीडेन की बोफोर्स कंपनी की 410 तोपें खरीदने के लिए भारतीय अफसरों एवं कांग्रेस पार्टी के सदस्यों को 60 करोड़ रूपयों की बराबर की राशि घूस के रूप में दी गई। इन आरोपों को भारतीय प्रेस में बड़े पैमाने पर लिया गया खासकर द इंडियन एक्सप्रेस में तथा बाद में द हिंदू में। आगे चलकर इसने एक बड़े मामले का रूप धारण किया।
- स्वयं राजीव गांधी की आलोचना हुई। विरोधी पक्ष के एक हिस्से ने आरोप लगाया कि राजीव स्वयं और उनके परिवारों के सदस्यों ने पैसे पाए हैं। परिस्थिति बहुत खराब थी और

PARAMOUNT IAS Mission SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

राजीव को आरोपों का खंडन करने मे कठिनाई हो रही थी। राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह को भी राजीव उससे नियमित रूप से मिलने और महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी देने की परंपरा निभाने में ढीले थे। वे इस बात से भी नाराज थे कि पंजाब और मीजो समझौतों के बारे में उनसे सलाह नहीं की गई। जैल सिंह को दूसरी बार भी राष्ट्रपति बनने का लालच था। इस प्रकार वे 1987 के मध्य में एक बड़े षड्यंत्र का केंद्र बने जिसके तहत राजीव को पदच्युत किया जाना था। विरोधी पार्टियों और कुछ कांग्रेस असंतुष्टों ने राष्ट्रपति से भ्रष्टाचार या राष्ट्रपति को सूचना देने की संवैधानिक आवश्यकता का पालन न करने के आरोप में पद से हटाने का प्रोत्साहन दिया। जैल सिंह लगभग मान चुके थे लेकिन वी.पी.सिंह ने राजीव का विकल्प बनकर इन लोगों की चाल चलने से इनकार कर दिया, और इस प्रकार बड़ा संवैधानिक संकट टल गया।

- राजीव की बहुत सारी खामियां थीं, इसमें कोई शक नहीं। एक यह थी कि वे अपने विचार जल्दी-जल्दी बदल लेते। औसतन वे अपने कैबिनेट का पुनर्गठन हर दो महीनों पर करते। कभी-कभी अपना संतुलन खो बैठते, और कभी-कभी नतीजों का विचार किए बिना बोल बैठते। यह उस प्रसिद्ध घटना में हुआ जिसमें उन्होंने एक प्रेस कांफ्रेंस मे ही विदेश सचिव को बर्खास्त कर दिया। यह भी कहा जाने लगा कि उन तक पहुंचना कठिन होता जा रहा था। कुछ का विचार था कि वे कठोर होते जा रहे थे।
- लेकिन ये सारी आमतौर पर उच्च पदों से जुड़ी समस्याएं होती हैं। सबसे बड़ी समस्या राजनीतिक अनुभव की कमी थी, और निचले स्तर पर तथा पार्टी संगठन सबंधी समस्याओं की जानकारी की कमी। लेकिन अधिकतर लोगों का विचार था कि वे तेजी से सीख रहे थे। वे अब राजनीतिक माहौल में अस्वस्थ नहीं महसूस करते। भारतीय राजनीति का उतार-चढ़ाव उन्हें अच्छा लगने लगा। वर्ष 1989 तक वे राजनीति की परीक्षा पास कर चुके थे: अपना संतुलन बनाए रखा और वे बोफोर्स का सामना सफलतापूर्वक कर गए। इसके दौरान उन पर सबसे तीखे व्यक्तिगत आरोप लगाए गए थे। अब वे दूसरी बार एक कठिन चुनाव अभियान का सामना करने को तैयार थे। जीत हो या हार, वे तय कर चुके थे कि महान भारतीय राजनीति में वे एक महत्वपूर्ण हिस्सेदार होंगे।

❑❑❑

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

1. प्रधानमंत्री के रूप में राजीव गांधी के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

(200 शब्द)

2. सिक्ख दंगा राजीव गांधी के प्रधानमंत्री काल का अभिशाप बन गया वही भोपाल गैस काण्ड इसे और ऊंचाई पर पहुंचा दिया। टिप्पणी कीजिए।

(200 शब्द)

3. देश के आधुनिक प्रौद्योगिक के विकास में राजीव गांधी की भूमिका को उजागर कीजिए।

(200 शब्द)

4. स्थानीय स्वशासन से संबंधित राजीव गांधी के दृष्टिकोण लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में कहाँ तक सार्थक हुई। स्पष्ट कीजिए।

(200 शब्द)

5. क्या श्रीलंका में शांति सेना भेजना राजीव गांधी की विदेश-नीति का सबसे बड़ी भूल कहना उचित होगा? टिप्पणी कीजिए।

(200 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

अध्याय

8

भारतीय राजनीति में नए बदलाव

परिचय

इंदिरा गांधी की हत्या के बाद राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने। इंदिरा गांधी की हत्या के कुछ दिनों बाद ही वर्ष 1984 में लोकसभा के चुनाव हुए। राजीव गांधी की अगुवाई में कांग्रेस को इस चुनाव में भारी विजय मिली। वर्ष 1980 के दशक के आखिर के सालों में देश में ऐसे पांच बड़े बदलाव आए, जिनका हमारी आगे की राजनीति पर गहरा असर पड़ा।

पहला दौर: इस दौर की एक महत्वपूर्ण घटना वर्ष 1989 के चुनावों में कांग्रेस की हार है, जिस पार्टी ने वर्ष 1984 में लोकसभा की 415 सीटें जीती थीं वह इस चुनाव में महज 197 सीटें ही जीत सकी। वर्ष 1991 में एक बार फिर मध्यावधि चुनाव हुए और कांग्रेस इस बार अपना आंकड़ा सुधारते हुए सत्ता में आयी। बहरहाल, वर्ष 1989 में ही उस परिघटना की समाप्ति हो गई थी, जिसे राजनीति विज्ञानी अपनी खास शब्दावली में 'कांग्रेस प्रणाली' कहते हैं। यह बात तो स्पष्ट ही है कि कांग्रेस एक महत्वपूर्ण पार्टी के रूप में कायम रही और वर्ष 1989 के बाद भी देश पर किसी अन्य पार्टी के बजाय उनका शासन ज्यादा दिनों तक रहा। लेकिन, दलीय प्रणाली के भीतर जैसी प्रमुखता इसे पहले के दिनों में हासिल थी, वैसी अब न रही।

दूसरा दौर: बड़ा बदलाव राष्ट्रीय राजनीति में 'मंडल मुद्दे' का उदय था। वर्ष 1990 में राष्ट्रीय मोर्चा की नयी सरकार ने मंण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू किया। इन सिफारिशों के अंतर्गत प्रावधान किया गया कि केन्द्र सरकार की नौकरियों में 'अन्य पिछड़ा वर्ग' को आरक्षण दिया जाएगा। सरकार के इस फैसले से देश के विभिन्न भागों में मण्डल-विरोधी हिंसक प्रदर्शन हुए। अन्य पिछड़ा वर्ग को मिले आरक्षण के समर्थक और विरोधियों के बीच चले विवाद को 'मण्डल मुद्दा' कहा जाता है। इसने वर्ष वर्ष 1989 के बाद की राजनीति में अहम भूमिका निभाई।

तीसरा दौर: विभिन्न सरकारों ने इस दौर में जो आर्थिक नीतियां अपनायीं, वे बुनियादी तौर पर बदल चुकी थीं। इसे ढांचागत समायोजन कार्यक्रम अथवा नए आर्थिक सुधार के नाम से जाना गया। इनकी शुरूआत राजीव गांधी की सरकार के समय हुई और वर्ष 1991 तक ये बदलाव बड़े पैमाने पर प्रकट हुए। आजादी के बाद से अब तक भारतीय अर्थव्यवस्था जिस दिशा में चली आई थी, वह इन नए आर्थिक सुधारों के कारण मूलगामी अर्थों में बदल गई। नयी आर्थिक नीतियों की विभिन्न आंदोलनों और संगठनों की तरफ से भरपूर आलोचना हुई। बहरहाल, इस अवधि में जितनी सरकारें बनीं, सबने नयी आर्थिक नीति पर अमल जारी रखा।

चौथा दौर: घटनाओं के एक सिलसिले की परिणति अयोध्या स्थित एक विवादित ढांचे (बाबरी मस्जिद् के रूप में प्रसिद्ध) के विध्वंस के रूप में हुई। यह घटना वर्ष 1992 के दिसम्बर महीने में घटी। इस घटना ने देश की राजनीति में कई परिवर्तनों को जन्म दिया और उनका प्रतीक बनी। इस घटना से भारतीय राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता दर बहस तेज हो गई। इन बदलावों का संबंध भाजपा के उदय और हिन्दुत्व की राजनीति से है।

इस सिलसिले की आखिरी बात यह है कि मई, 1991 में राजीव गांधी की हत्या कर दी गई और इसके परिणामस्वरूप

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in

गठबंधन का युग

1989 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार हुई थी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि किसी दूसरी पार्टी को इस चुनाव में बहुमत मिल गया था। कांग्रेस अब भी लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी थी, लेकिन बहुमत न होने के कारण उसने विपक्ष में बैठने का फैसला किया। राष्ट्रीय मोर्चे को (यह मोर्चा जनता दल और कुछ अन्य क्षेत्रीय दलों को मिलाकर बना था) परस्पर विरुद्ध दो राजनीतिक समूहों- भाजपा और वाम मोर्चे- ने समर्थन दिया। इस समर्थन के आधार पर राष्ट्रीय मोर्चा ने एक गठबंधन सरकार बनायी, लेकिन इसमें भाजपा और वाम मोर्चे ने शिरकत नहीं की।

कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में परिवर्तन हुआ। राजीव गांधी चुनाव अभियान के सिलसिले में तमिलनाडु के दौरे पर थे। तभी लिट्टे से जुड़े श्रीलंकाई तमिलों ने उनकी हत्या कर दी। वर्ष 1991 के चुनावों में कांग्रेस सबसे बड़ी विजयी पार्टी के रूप में सामने आयी। राजीव गांधी की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी ने नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री चुना।

कांग्रेस का पतन

कांग्रेस की हार के साथ भारत की दलीय व्यवस्था से उसका दबदबा खत्म हो गया। वर्ष 1960 के दशक के अंतिम सालों में कांग्रेस के एकछत्र राज को चुनौती मिली थी, लेकिन इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने भारतीय राजनीति पर अपना प्रभुत्व फिर से कायम किया। नब्बे के दशक में कांग्रेस की अग्रणी हैसियत को एक बार फिर चुनौती मिली। बहरहाल, इसका मतलब यह नहीं है कि कांग्रेस की जगह कोई दूसरी पार्टी प्रमुख हो गई।

बहुदलीय व्यवस्था का उदय

इस दौर में कांग्रेस के दबदबे के खात्मे के साथ बहुदलीय शासन प्रणाली का युग शुरू हुआ। यह तो निश्चित ही है कि अपने देश में अनेक पार्टियां चुनाव लड़ती आयी हैं। हमारी संसद में हमेशा कई दलों के सांसद रहे हैं। वर्ष 1989 के बाद एक नयी बात देखने में आयी। अब कई पार्टियां इस तरह उभरी कि किसी एक-दो पार्टी को ही अधिकांश वोट या सीट नहीं मिल पाते थे। इसका मतलब यह भी हुआ कि वर्ष 1989 के बाद लोकसभा के चुनावों में कभी भी किसी एक पार्टी को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। इस बदलाव के साथ केन्द्र में गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ और क्षेत्रीय पार्टियों ने गठबंधन सरकार बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

गठबंधन की राजनीति

नब्बे का दशक तक कुछ ताकतवर पार्टियों और आंदोलनों के उभार का साक्षी रहा। इन पार्टियों और आंदोलनों ने दलित तथा पिछड़े वर्ग (अन्य पिछड़ा वर्ग या ओ.बी.सी.) की नुमाइंदगी की। इन दलों में से अनेक ने क्षेत्रीय आकांक्षाओं की भी दमदार दावेदारी की। वर्ष 1996 में बनी संयुक्त मोर्चे की सरकार में इन पार्टियों ने अहम किरदार निभाया। संयुक्त मोर्चा वर्ष 1989 के राष्ट्रीय मोर्चे के ही समान था, क्योंकि इसमें भी जनता दल और कई क्षेत्रीय पार्टियां शामिल थीं। इस बार भाजपा ने सरकार को समर्थन नहीं दिया। संयुक्त मोर्चा की सरकार को कांग्रेस का समर्थन हासिल था। इससे पता चलता है कि राजनीतिक समीकरण किस कदर छुईमुई थे।

- वर्ष 1989 में भाजपा और वाम मोर्चा दोनों ने राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार को समर्थन दिया था, क्योंकि ये दोनों कांग्रेस को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे। इस बार वाममोर्चा ने गैर-कांग्रेसी सरकार को अपना समर्थन जारी रखा, लेकिन संयुक्त मोर्चा की सरकार को कांग्रेस पार्टी ने भी समर्थन दिया। दरअसल, कांग्रेस और वाममोर्चा दोनों इस बार भाजपा को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे।

भाजपा की सफलता

बहरहाल इन्हें ज्यादा दिनों तक सफलता नहीं मिली और भाजपा ने वर्ष 1991 तथा वर्ष 1996 के चुनावों में अपनी स्थिति लगातार मजबूत की। वर्ष 1996 के चुनावों में यह सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। इस नाते भाजपा को सरकार बनाने का न्यौता मिला। लेकिन अधिकांश दल, भाजपा की नीतियों के खिलाफ थे और इस वजह से भाजपा की सरकार लोकसभा में बहुमत हासिल नहीं कर सकी।

- आखिरकार भाजपा एक गठबंधन (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन- राजग) के अगुआ के रूप में सत्ता में आयी और वर्ष 1998 के मई से 1999 के जून तक सत्ता में रही। फिर वर्ष 1999 के अक्टूबर में इस गठबंधन ने दोबारा सत्ता हासिल की। राजग की इन दोनों सरकारों में अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बने। वर्ष 1999 की राजग सरकार ने अपना निर्धारित कार्यकाल पूरा किया।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE EST 2005

- इस तरह वर्ष 1989 के चुनावों से भारत में गठबंधन की राजनीति के एक लंबे दौर की शुरूआत हुई। इसके बाद से केन्द्र में 9 सरकारें बनी। ये सभी या तो गठबंधन की सरकारें थीं अथवा दूसरे दलों के समर्थन पर टिकी अल्पमत की सरकारें थीं जो इन सरकारों में शामिल नहीं हुए। इस नए दौर में कोई सरकार क्षेत्रीय पार्टियों की साझेदारी अथवा उनके समर्थन से ही बनायी जा सकती थी। यह बात वर्ष 1989 के राष्ट्रीय मोर्चा सरकार, वर्ष 1996 और वर्ष 1997 की संयुक्त मोर्चा सरकार, वर्ष 1998 और वर्ष 1999 की राजग तथा वर्ष 2004 की संप्रग सरकार पर समान रूप से लागू होती है।
- पिछले कुछ दशकों से भारतीय समाज में गुपचुप बदलाव आ रहे थे और इन बदलावों ने जिन प्रवृत्तियों को जन्म दिया, वे भारतीय राजनीति को गठबंधन की सरकारों के युग की तरफ ले आयीं। शुरूआती सालों में कांग्रेस खुद में ही एक गठबंधननुमा पार्टी थी। इसमें विभिन्न हित, सामाजिक समूह और वर्ग एक साथ रहते थे। इस परिघटना को 'कांग्रेस प्रणाली' कहा गया।
- वर्ष 1960 के दशक से विभिन्न समूह कांग्रेस पार्टी से अलग होने लगे और इन्होंने अपनी खुद की पार्टी बनायी। वर्ष 1977 के बाद के सालों में कई क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ। इन सारे कारणों से कांग्रेस पार्टी कमजोर हुई, लेकिन कोई दूसरी पार्टी इस तरह से नहीं उभर पायी कि कांग्रेस का विकल्प बन सके।

अन्य पिछड़ा वर्ग का राजनीतिक उदय

इस अवधि का एक दूरगामी बदलाव था- अन्य पिछड़ा वर्ग का उदय। इससे विचार-विवेचन की एक प्रशासनिक कोटि 'अन्य पिछड़ा वर्ग' अथवा 'अदर बैकवर्ड क्लासेज्' का संकेत किया जाता है। यह अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति से अलग एक कोटि है, जिसमें शैक्षणिक और सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों की गणना की जाती है। इन समुदायों को 'पिछड़ा वर्ग' भी कहा जाता है। पिछड़ी जातियों के अनेक तबके कांग्रेस से दूर जा रहे थे। उनमें कांग्रेस के लिए समर्थन कम होता जा रहा था। ऐसे में गैर-कांग्रेसी दलों के राजनीतिक अभ्युदय की अभिव्यक्ति वर्ष 1977 की जनता पार्टी की सरकार के रूप में हुई। जनता पार्टी के कई घटक मसलन भारतीय क्रांतिदल और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का ग्रामीण इलाकों के अन्य पिछड़े वर्ग में ताकतवर जनाधार था।

राजनीतिक परिणाम

वर्ष 1980 के दशक में दलित जातियों के राजनीतिक संगठनों का भी उभार हुआ। वर्ष 1978 में 'बामसेफ' (बैकवर्ड एंड माइनॉरिटी क्लासेज एम्पलाइज फेडरेशन) का गठन हुआ। यह सरकारी कर्मचारियों का कोई साधारण-सा ट्रेड यूनियन नहीं था। इस संगठन ने 'बहुजन' यानी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यकों की राजनीतिक सत्ता की जबरदस्त तरफदारी की। इसी का परवर्ती विकास 'दलित-शोषित समाज संघर्ष समिति' है, जिससे बाद के समय में बहुजन समाज पार्टी का उदय हुआ। इस पार्टी की अगुआई कांशीराम ने की। बहुजन समाज पार्टी (बा.स.पा.) अपने शुरूआती दौर में एक छोटी पार्टी थी और इसे पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के दलित मतदाताओं का समर्थन हासिल था, लेकिन वर्ष 1989 और वर्ष 1991 के चुनावों में इस पार्टी को उत्तर प्रदेश में सफलता मिली। आजाद भारत में यह पहला मौका था, जब कोई राजनीतिक दल मुख्यतया दलित मतदाताओं के समर्थन के बूते ऐसी राजनीतिक सफलता हासिल कर पाया था।

दरअसल कांशीराम के नेतृत्व में बसपा ने अपने संगठन की बुनियाद व्यवहार केंद्रित नीतियों पर रखी थी। बहुजन (यानी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और धार्मिक अल्पसंख्यक) देश की आबादी में सबसे ज्यादा हैं और संख्या के लिहाज से एक मजबूत राजनीतिक ताकत का रूप ले सकते हैं- बसपा के आत्मविश्वास को इस तथ्य से बड़ा बल मिला था। इसके बाद बसपा राज्य में एक बड़ी राजनीतिक ताकत के रूप में उभरी और उसने एक से ज्यादा दफे यहां सरकार बनायी। इस पार्टी का सबसे ज्यादा दलित मतदाता हैं, लेकिन अब इसने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अपना जनाधार बढ़ाना शुरू किया है। भारत के कई हिस्सों में दलित राजनीति और अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीति ने स्वतंत्र रूप धारण किया है और इन दोनों के बीच अकसर प्रतिस्पर्धा भी चलती है।

'मण्डल' का लागू होना

वर्ष 1980 के दशक में अन्य पिछड़ा वर्गों के बीच लोकप्रिय ऐसे ही राजनीतिक समूहों को जनता दल ने एकजुट किया। राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने का फैसला किया। इससे अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीति को सुगठित रूप देने में मदद मिली। नौकरी में आरक्षण के सवाल पर तीखे वाद-विवाद हुए और इन विवादों से 'अन्य पिछड़ा वर्ग' अपनी पहचान को लेकर ज्यादा सजग हुआ। जो इस तबके को लामबंद करना चाहते थे, उन्हें इसका फायदा हुआ। इस

PARAMOUNT

दौर में ऐसी अनेक पार्टियां आगे आयीं, जिन्होंने रोजगार और शिक्षा के क्षेत्र में अन्य पिछड़ा वर्ग को बेहतर अवसर उपलब्ध कराने की मांग की। इन दलों ने सत्ता में 'अन्य पिछड़ा वर्ग' की हिस्सेदारी का सवाल भी उठाया। इन दलों का कहना था कि भारतीय समाज में अन्य पिछड़ा वर्ग का एक बड़ा हिस्सा है। इसे देखते हुए अन्य पिछड़ा वर्ग का शासन में समुचित प्रतिनिधित्व और सत्ता में समुचित मौजूदगी तय करना लोकतांत्रिक कदम होगा।

सांप्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता एवं लोकतंत्र

इस दौर में आया एक दूरगामी बदलाव धार्मिक पहचान पर आधारित राजनीति का उदय है। इसने धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के बारे में बहसों को गर्म किया। आपातकाल के बाद भारतीय जनसंघ, जनता पार्टी में शामिल हो गया था। जनता पार्टी ने पतन और बिखराव के बाद भूतपूर्व जनसंघ के समर्थकों ने वर्ष 1980 में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) बनाई। शुरू-शुरू में भाजपा ने जनसंघ की अपेक्षा कहीं ज्यादा बड़ा राजनीतिक मंच अपनाया। इसने 'गांधीवादी समाजवाद' को अपनी विचारधारा के रूप में स्वीकार किया। बहरहाल भाजपा को वर्ष 1980 और वर्ष 1984 के चुनावों में खास सफलता नहीं मिली। वर्ष 1986 के बाद इस पार्टी ने अपना विचारधारा में हिंदू राष्ट्रवाद के तत्वों पर जोर देना शुरू किया। भाजपा ने 'हिन्दुत्व' की राजनीति का रास्ता चुना और हिन्दुओं को लामबंद करने की रणनीति अपनायी।

- 'हिन्दुत्व' अथवा 'हिंदूपन' शब्द को वी.डी. सावरकर ने गढ़ा था और इसको परिभाषित करते हुए उन्होंने इसे भारतीय (और उनके शब्दों में हिंदू) राष्ट्र की बुनियाद बताया। उनके कहने का आशय यह था कि भारत राष्ट्र का नागरिक वही हो सकता है, जो भारतभूमि को न सिर्फ 'पितृभूमि' बल्कि अपनी 'पुण्यभूमि' भी स्वीकार करे। हिंदुत्व के समर्थकों का तर्क है कि मजबूत राष्ट्र सिर्फ एकीकृत राष्ट्रीय संस्कृति की बुनियाद पर ही बनाया जा सकता है। वे यह भी मानते हैं कि भारत के संदर्भ में राष्ट्रीयता की बुनियाद केवल हिन्दु संस्कृति ही हो सकती है।
- वर्ष 1986 में ऐसी दो बातें हुईं, जो एक हिंदूवादी पार्टी के रूप में भाजपा की राजनीति के लिहाज से प्रधान हो गई। इसमें पहली बात वर्ष 1985 के शाहबानो मामले से जुड़ी है। यह मामला एक 62 वर्षीया तलाकशुदा मुस्लिम महिला शाहबानो का था। उसने अपने भूतपूर्व पति से गुजारा भत्ता हासिल करने के लिए अदालत में अर्जी दायर की थी। सर्वोच्च अदालत ने शाहबानो के पक्ष में फैसला सुनाया। पुरातनपंथी मुसलमानों ने अदालत के इस फैसले को अपने 'पर्सनल लॉ' में हस्तक्षेप माना। कुछ मुस्लिम नेताओ की मांग पर सरकार ने मुस्लिम महिला अधिनियम, 1986 (तलाक से जुड़े अधिकारों) पास किया। इस अधिनियम के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को निरस्त कर दिया गया। सरकार के इस कदम का कई महिला संगठनों, मुस्लिम महिलाओं की जमात तथा अधिकांश बुद्धिजीवियों ने विरोध किया।
- भाजपा ने कांग्रेस सरकार के इस कदम की आलोचना की और इसे अल्पसंख्यक समुदाय को दी गई अनावश्यक रियायत तथा 'तुष्टिकरण' करार दिया।

अयोध्या विवाद

दूसरी बात का संबंध फैजाबाद जिला न्यायालय द्वारा फरवरी, 1986 में सुनाए गए फैसले से है। इस अदालत ने फैसला सुनाया था कि बाबरी मस्जिद् के अहाते का ताला खोल दिया जाना चाहिए, ताकि हिन्दू यहां पूजा-पाठ कर सकें, क्योंकि वे इस जगह को पवित्र मानते हैं। अयोध्या स्थित बाबरी मस्जिद् को लेकर दशकों से विवाद चला आ रहा था। बाबरी मस्जिद् का निर्माण अयोध्या में मीर बाकी ने करवाया था। यह मस्जिद् 16वीं सदी में बनी थी। मीर बाकी मुगल शासक बाबर का सिपहसलार था। कुछ हिन्दू मानते हैं कि भगवान राम की जन्मभूमि पर बने हुए। राम मंदिर को तोड़कर उसी जगह पर यह मस्जिद् बनवाई गई थी। इस विवाद ने अदालती मुकदमे का रूप ले लिया और मुकदमा कई दशकों तक जारी रहा। वर्ष 1940 के दशक के आखिरी सालों में मस्जिद् में ताला लगा दिया गया, क्योंकि मामला अदालत के हवाले था।

जैसे ही बाबरी मस्जिद् के अहाते का ताला खुला, वैसे ही दोनों पक्षों में लामबंदी होने लगी। अनेक हिंदू और मुस्लिम संगठन इस मसले पर अपने-अपने समुदाय लामबंद करने की कोशिश में जुट गए। भाजपा ने इसे अपना बहुत बड़ा चुनावी और राजनीतिक मुद्दा बनाया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और विश्व हिंदू परिषद् जैसे

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

कुछ संगठनों के साथ भाजपा ने लगातार प्रतीकात्मक और लामबंदी के कार्यक्रम चलाए। उसने जनसमर्थन जुटाने के लिए गुजरात स्थित सोमनाथ से उत्तर प्रदेश स्थित अयोध्या तक एक बड़ी 'रथ-यात्रा' निकाली।

विध्वंस और उसके बाद

जो संगठन राम मंदिर के निर्माण का समर्थन कर रहे थे, उन्होंने वर्ष 1992 के दिसम्बर में एक 'कारसेवा' का आयोजन किया। इसके अंतर्गत 'रामभक्तों' से आह्वान किया गया कि वे 'राम मंदिर' के निर्माण में श्रमदान करें। पूरे देश में माहौल तनावपूर्ण हो गया। अयोध्या में यह तनाव अपने चरम पर था। सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को आदेश दिया कि वह 'विवादित स्थल' की सुरक्षा का पूरा इंतजाम करे। बहरहाल 6 दिसम्बर, 1992 को देश के विभिन्न भागों से लोग आ जुटे और इन लोगों ने मस्जिद् को गिरा दिया। मस्जिद् के विध्वंस की खबर से देश के कई भागों में हिंदू और मुसलमानों के बीच झड़प हुई। 1993 के जनवरी में एक बार फिर मुंबई में हिंसा भड़की और अगले दो हफ्तों तक जारी रही।

इसी अवधि में चुनावी उद्देश्य के लिए धार्मिक भावनाओं के इस्तेमाल पर भी बहस छिड़ी। भारत की लोकतांत्रिक राजनीति इस वायदे पर आधारित है कि सभी धार्मिक समुदाय किसी भी पार्टी में शामिल होने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन कोई भी राजनीतिक दल धार्मिक समुदाय पर आधारित दल नहीं होगा। सांप्रदायिक सौहार्द के इस लोकतांत्रिक माहौल को वर्ष 1984 के बाद से कई दफा चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। ऐसा वर्ष 1984 के सिख-विरोधी दंगों में हुआ। ठीक इसी तरह वर्ष 2002 के फरवरी-मार्च में गुजरात के मुसलमानों के विरुद्ध हिंसा भड़की। अल्पसंख्यक समुदाय के खिलाफ ऐसी हिंसा और दो समुदायों के बीच हिंसक टकराव लोकतंत्र के ऊपर खतरा है।

चंद्रशेखर से वाजपेयी: एक संक्षिप्त विवरण

10 नवंबर 1990 को चंद्रशेखर की अल्पकालिक सरकार कांग्रेस के समर्थन से बनी। इसकी मात्र एक ही भूमिका थी: तब तक बने रहना, जब तक कांग्रेस अपना समर्थन वापस लेकर चुनावों में भाग लेने का निर्णय न ले ले। बहाना खोज लिया गया और 5 मार्च 1991 को समर्थन वापस ले लिया गया। चुनावों की घोषणा 19 मई के लिए की गई। मतदान का एक राउंड पूरा भी हो गया जब इंदिरा गांधी के दुर्भाग्यपूर्ण परिवार पर फिर त्रासदी टूट पड़ी। राजीव गांधी चुनाव का एक दौर मद्रास में चालीस कि. मी. दूर श्रीपेरूबुदुर में एक आम सभा से करने वाले थे। राजीव से मिलने एक महिला सामने आई जो अपने कमर में बम बांधे हुई थी। उस बम के धमाके से राजीव के टुकड़े-टुकड़े उड़ गए। यह समझा गया, और बाद में साबित हुआ कि यह एल.टी.टी.ई. के लोगों का काम था। छियालीस-वर्षीय राजीव अपनी सद्भावना यात्राओं और दूसरे जरियों से जनता तक पहुंचकर उनकी हमदर्दी वापस हासिल करने में सफल हो रहे थे। उनकी हत्या से जनित इतनी हमदर्दी पैदा हो सकी कि कांग्रेस को 232 सीटें और सबसे बड़ी पार्टी का स्थान मिल गया। नरसिंह राव ने पहले तो 21 जून को अल्पमत कांग्रेस सरकार बनाई, लेकिन वह धीरे-धीरे बहुमत की सरकार बन गई, और पूरे पांच वर्षों तक चली। इसने सबसे मूलगामी आर्थिक सुधार लागू किए। पहले वर्ष में जातीय और सांप्रदायिक तनाव काफी कम हो गए। पंजाब में स्थिति सामान्य हो गई। कश्मीर और आसाम में परिस्थितियाँ बेहतर हुई। यह सरकार बाबरी मस्जिद को गिराने से रोक न सकी, और इसके बाद व्यापक सांप्रदायिक दंगे हुए।

- नरसिंह राव सरकार की कई उपलब्धियां रहीं जो दूरगामी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अधिक अनुकूल रूप धारण करेंगी। लेकिन अपने अंतिम दो वर्षों में इसका जोर कम होने लगा, आर्थिक सुधार धीमे पड़ने लगे, हवाला और भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए, जिन्हें बाद मे लगभग आधारहीन पाया गया। कांग्रेस और विरोधी नेताओं के विरूद्ध घूसबाजी और विदेशी मुद्रा संबंधी उल्लंघनो के आरोप लगाए गए।
- वर्ष 1996 के चुनावों के कांग्रेस को मात्र 140 सीटों मिली। भा.ज.पा. सरकार 16 मई से 1 जून में 120 से 161 बढ़ा ली। एक अल्पकालिक भा.ज.पा. सरकार 16 मई से 1 जून तक बनी रही लेकिन उसे बहुमत का समर्थन नहीं मिला।
- इसके बाद एच.डी. दैवगोड़ा के प्रधानमंत्रित्व में संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी। इसका समर्थन कांग्रेस तथा मा.क.पा. ने किया। भा.क.पा. सरकार में शामिल हुई।
- इस प्रकार भारत में पहली बार इंद्रजीत गुप्त के रूप में एक कम्युनिस्ट गृहमंत्री बना।

- कांग्रेस ने 30 मार्च 1997 को समर्थन वापस ले लिया लेकिन अपनी सरकार बनाने में असफल रही। उसने फिर एक संयुक्त मोर्चो सरकार का समर्थन किया जिसक प्रधानमंत्री अब आई.के. गुजराल थे। इसका समर्थन फिर वापस ले लिया गया।
- फरवरी 1998 में नए चुनाव हुए जिनके फलस्वरूप अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भा.ज.पा. सरकार बनी। हालांकि स्वयं भा.ज.पा. को मात्र 182 सीटें ही मिलीं, वह तेलुगु देशम, ए.आई.ए.डी.एम.के. तथा तृणमूल कांग्रेस जैसी धर्मनिरपेक्ष पार्टियों का समर्थन हासिल करने में सफल रही। सहयोगियों की बड़ी संख्या के कारण स्थायित्व न आ सका। क्योंकि उनकी अलग-अलग मांगें थी। आखिरकार जयललिता ने ए.आई.ए.डी.एम.के. द्वारा दिया गया समर्थन वापस ले लिया। फलस्वरूप अप्रैल 1999 में सरकार विश्वास मत खो बैठी।
- वैकल्पिक कांग्रेस सरकार या धर्मनिरपेक्ष साझा सरकार भी नहीं बन पाई और नए चुनावों की घोषणा कर दी गई। भा. ज.पा. नेतृत्व वाली सरकार सितंबर-अक्टूबर 1999 के चुनावों तक कामचलाऊ सरकार के रूप में काम करती रही। चुनावों में भा.ज.पा. और सहयोगियों की सीटें 253 से बढ़कर 296 हो गई, हालांकि भा.ज.पा. की अपनी सीटों की संख्या मे कोई परिवर्तन नहीं आया।
- **सोनिया गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस 134** पर उतर आई। वोटों के प्रतिशत में अंतर कम था : कांग्रेस और सहयोगियों को 34.7 फीसदी मिले, जो 1998 के मुकाबले 3.4 फीसदी ज्यादा था। भा.ज.पा. और सहयोगियों का वोट-प्रतिशत 41.3 था जो सिर्फ 1.2 प्रतिशत की वृद्धि थी।
- **वाजपेयी के नेतृत्व मे फिर एक नई सरकार बन गई।** हमेशा की तरह इतिहास की विडंबना देखिए: नया मिलेनियम एक ऐसी पार्टी की सरकार के नेतृत्व में आता प्रतीत होता है जिसे भविष्य की शुरूआत करने के बजाए भूतकाल के झगड़ों का बदला लेने में ज्यादा दिलचस्पी दिखाई देती है।

नब्बे के दशक में विदेशी नीति और नई चुनौतियां

उस समय की कई घटनाओं के कारण भारतीय विदेश नीति के सामने गंभीर चुनौतियां आ खड़ी हुई हैं : सोवियत संघ का विखंडन हुआ तथा शीतयुद्ध की समाप्ति हुई, और आर्थिक रणनीति में भूमंडलीकरण तथा उदारीकरण की ओर झुकाव हुआ। ये दोनों घटनाएं भारत के संदर्भ में वर्ष 1991 में एक साथ घटीं। इनके नतीजे अलग-अलग निकले। भारत को अमरीका तथा पश्चिम विश्व के साथ अपने संबंधों का पुनर्गठन करना पड़ा। उसे पूंजी, टेक्नोलॉजी और निर्यात के लिए बाजार की जरूरत थी। और वैसे भी अब मदद के लिए सोवियत संघ अस्तित्व में नहीं था। उनकी सफलता इस बार पर निर्भर थी कि वह तेज आर्थिक विकास के लिए नई राजनीतिक का कितनी तेजी और बेहतर तरीके से प्रयोग करते हैं। आज की दुनिया में उन्हीं देशों का सबसे अधिक राजनीतिक जोर होता है जिसकी आर्थिक ताकत अधिक हो।

- यह सच है कि भारत-सोवियत मैत्री शानदार पुराने दिन समाप्त हो गए हैं, फिर भी पूर्व सोवितय संघ के देशो में भारत के प्रति अभी भी काफी मैत्रीभाव है। रूस भले ही संकट के दौरे से गुजर रहा हो, लेकिन वह एक बड़ी शक्ति है जिसे अपनी स्थित का एहसास है। वह जरूर फिर उभर आएगी। उसके साथ अच्छे संबंध बनाए रखना भारत के हित में होगा।
- सोवियत संघ से बाहर निकले मध्य एशिया के दूसरे देश भी हमारे अच्छे मित्र साबित हो सकते हैं। उनके पास काफी प्राकृतिक संपदा है, उनकी रणनीतिक स्थिति महत्वपूर्ण है, और अमरीका तथा अन्य पश्चिमी देश उन पर काफी ध्यान दे रहे हैं। सौभाग्य से भारत के साथ उनके संबंध सोवियत काल से ही बने हुए हैं, और भारत सरकार उन्हें विकसित करना चाहती है।
- मध्यपूर्व में भारत की साख हमेशा ही ऊंची रही है। उसने फिलीस्तीन के लिए अरब संघर्ष का समर्थन किया है और इजराइल के साथ राजनयिक संबंध नहीं रखे हैं। हाल के वर्षो में, फिलीस्तीनी मुक्ति संगठन का समर्थन बरकरार रखते हुए भारत ने इजराइल के साथ संबंध बनाने शुरू कर दिए हैं।
- भारत ईरान के साथ भी दोस्ताना संबंध में कायम करने में सफल हुआ है, और इराक तथा ईरान को पूरी तरह अलग रखने की अमरीकी नीति का समर्थन नहीं किया है। फलस्वरूप, पाकिस्तान द्वारा इस्लामी एकता संगठन या उसके देशों को भारत के खिलाफ खड़ा करने की कोशिशे कोई खास सफल नहीं रही हैं। अमरीका द्वारा खाड़ी युद्ध के दौरान बनी अपनी अच्छी छवि बनाए रखी। साथ ही इराक के साथ कई वर्षो का आर्थिक सहयोग विकसित होता रहा।

PARAMOUNT Mission IAS A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE

विदेश नीति की प्रासांगिकता

आज विश्व नए व्यापार और आर्थिक संगठनो में विकसित होता जा रहा है, जैसे आसियान (एसोसिएशन ऑफ साउथ-ईस्ट एशियन नेशंस), ई.ई.सी. (यूरोपियन इकोनोमिक कम्यूनिटी), नाफ्टा (नॉर्थ अमरीकन फ्री ट्रेड अलायंस), इत्यादि। इन रूझानों पर भारत ने पूरा ध्यान नहीं दिया है। इसने आसियान का सदस्य बनाने की कोशिश नहीं की है, और बाद में ही जाकर बातचीत शुरू की। सार्क अभी प्रभावशाली आर्थिक समुदाय नहीं बन पाया है, हालांकि कोशिशें जारी हैं। हिंद महासागर के देशो को एक-दूसरे के नजदीक लाने की कोशिश स्वागत योग्य है। जिसमे भारत की सक्रिय भूमिका होगी। विशेष तौर पर इसमें दक्षिण अफ्रीका है, जो एक पुराना मित्र है और जिसकी आर्थिक शक्ति अच्छी है। भारत को पूर्व के देशो पर ध्यान देना चाहिए।

- जापान विश्व का सबसे बड़ा सहायता करने वाला देश है। उसके पास लागत के लिए सबसे अधिक पूंजी है। उसके साथ हमारा न औपनिवेशिक संबंध रहा है, न सीमा के झगड़े और न ही आर्थिक झंझटें। चीन को बांधे रखने की जापान की रणनीति हमारे हितों से मेल खाती है।
- दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्य देशो के साथ नजदीकी आर्थिक संबंध कायम करने चाहिए। उनके साथ हमारे गहरे और अच्छे ऐतिहासिक संबंध रहे हैं। इंडोनेशिया का हमने डच साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में समर्थन किया था। वियतनाम का समर्थन हमने फ्रांसीसी एवं अमरीकी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष में किया, कंबोडिया और मलेशिया के साथ हमारे पुरातन सांस्कृतिक संबंध है।
- सिंगापुर दक्षिण-पूर्वी एशिया की आर्थिक शक्ति का स्रोत है। उसने यह साबित कर दिया कि कैसे आधुनिक तकनीक के प्रयोग से एक छोटा सा देश एक आर्थिक महाशक्ति बन सकता है।
- ये सारे कदम इसलिए भी जरूरी हैं ताकि भारत एक बहु-ध्रुवीय विश्व के निर्माण तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के जनतांत्रीकरण में सहयोग कर सके। यह उसी के आत्म-हित में होगा। एक-ध्रुवीय विश्व की ओर विकास तभी रोका जा सकता है जब आर्थिक शक्ति वाले देशों को विश्व मामलो में अपनी असरदार भूमिका अदा करने के लिए प्रेरित किया जाए। जापान तथा कुछ पूर्वी एशियाई शक्तियों को अभी तक अमरीकी प्रभुत्व का समर्थन करने की आदत लगी हुई थी। वे अब विश्व स्तर पर अपनी आवाज उठा सकते हैं।
- एक-ध्रुवीय रूझान में कमजोरी तथा बहु-ध्रुवीय रूझान का विकास भारत और विश्व के हक में होगा। उसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यह पचास के दशक के शीतयुद्ध के वर्षों में गुटनिरपेक्ष आंदोलन के जरिए किया गया था। इस सिलसिले में जकार्ता में गुटनिरपेक्ष देशों के दसवें वार्षिक शिखर सम्मेलन में कई कठिनाइयों के बावजूद दृढ़ समर्थन काफी उत्साहजनक था।
- मलेशिया के प्रधानमंत्री महायिर एक दृढ़ स्वतंत्र आवाज के रूप में उभरे हैं। उन्होंने गुटनिरपेक्षता का दृढ़ समर्थन किया। इंडोनेशिया के सुहार्तो ने भी समर्थन किया, जो अध्यक्षता कर रहे थे। शिखर सम्मेलन ने संयुक्त राष्ट्र संघ के जनतांत्रीकरण, अधिक खुले बहु-आयामी व्यापार प्रणाली, विकासमान देशों को अधिक वित्तीय सहायता, और अन्य कदमों की मांग की।
- नकारात्मक रूझानों में मानवाधिकारों एवं आत्म-निर्णय के नाम पर अमरीका द्वारा हस्तक्षेप की बढ़ती घटनाएं हैं, जिनमें कोसोवो हाल का उदाहरण है। भारत, चीन यहां तक कि रूस जैसे विविध जातीय विशेषताओं वाले देश इसका शिकार बन सकते हैं। इसलिए इसमें अचरज नहीं कि उन्होंने कोसोवो में अमरीकी और नाटो की भूमिका का विरोध किया। आज युद्ध आधुनिक टेक्नोलॉजी पर आधारित है। इसलिए हमलोवरों से जान की हानि का खतरा बहुत कम हो गया है। इस बात की पुष्टि कोसोवो और खाड़ी युद्ध में पूरी तरह हो चुकी है।
- भारत को अपनी विदेश नीति इस नई परिस्थिति के अनुरूप ढालनी होगी। उसे विश्व मामलों में अपनी आजाद भूमिका बरकरार रखनी होगी और राष्ट्रों के समुदाय में स्वयं के लिए एक सम्माजनक स्थान बनाए रखना होगा। साथ ही, उसे बदलते विश्व संबंधों के संदर्भ मे अपने उद्देश्यों को पाने के रास्ते खोजने होंगे। विश्व व्यवस्था परिवर्तन के दौर से गुजर रही है, और यह स्थिति अभी कुछ समय और बनी रहेगी। इसी परिवर्तनशील परिस्थिति में भारत को अपनी विदेश नीति विकसित करनी होगी।
- हाल की उन दो सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख करेगें जिनका विश्व पैमाने पर असर पड़ा है: वर्ष 1998 में भारत के न्यूक्लियर प्रयोग और वर्ष 1999 में पाकिस्तान के साथ लगभग युद्ध की स्थिति।

PARAMOUNT IAS Mission
FOREVER ABOUT YOU
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

पोखरान-II

भारत ने 11 मई 1998 को और भी न्यूक्लियर प्रयोग किए। इसने स्वयं को न्यूक्लियर हथियारों वाला राज्य घोषित किया है।

नेहरू के समय से ही भारत ने सैद्धांतिक और सोची समझी नीति अपना रखी थी। वह न्यूक्लियर नि:शस्त्रीकरण और न्यूक्लियर हथियार-रहित विश्व के पक्ष में था। यह नीति राजीव गांधी ने दृढ़तापूर्वक और सक्रियता से जारी रखी। उन्होंने न्यूक्लियर नि:शस्त्रीकरण के लिए विश्व पैमाने पर कदम उठाने पर जोर दिया। साथ ही साथ, नेहरू के नेतृत्व में भारत ने विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास पर भारी जोर दिया, खासकर न्यूक्लियर विज्ञान के क्षेत्र में। बाद की सरकारों ने यह काम जारी रखा। प्रथम न्यूक्लियर परीक्षण अक्टूबर 1974 में किए गए जब इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनी। राजीव गांधी, नरसिंह राव, देवगौड़ा, और आई. के. गुजराल जरूरत पड़ने पर न्यूक्लियर विकल्प लागू करने की पूरी तैयारी में थे। कहा जाता है कि वर्ष 1995 में नरसिंह राव ने वर्ष 1998 सरीखे न्यूक्लियर परीक्षणों के लिए मंजूरी दे दी थी। लेकिन अमरीकियों को इसका पता चल गया और उन्होंने इसे रोकने के लिए राव पर पूरा दबाव डाला। इस प्रकार, मई 1998 के परीक्षणों के पहले तक भारत ने न्यूक्लियर नि:शस्त्रीकरण की स्थिति अपनाते हुए भी न्यूक्लियर विकल्प के लिए स्वयं को तैयार रखा। दो पहलुओं वाली यह स्थिति बनाए रखने के कई कारण थे।

- पहला, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद न्यूक्लियर दृष्टि से विश्व अत्यंत की असमान रहा है। न्यक्लियर प्रसार संधि (एन.पी.टी.) का मुख्य उद्देश्य था कि विश्व के सिर्फ चार देशों- अमरीका, सोवियत संघ, ब्रिटेन और फ्रांस- को ही न्यूक्लियर देश बनाए रखना। बाद मे इनमें चीन ने जबर्दस्ती प्रवेश किया और 'पांच बड़े देशों' की न्यूक्लियर इजारेदारी का समर्थन किया। सी.टी.बी.टी. (व्यापक न्यूक्लियर प्रयोग संधि) भी उतना ही भेदभाव बरतती है। वह गैर-न्यूक्लियर देशों पर इस वादे पर हस्ताक्षर करने पर जोर दे रही है कि वे न्यूक्लियर न बने। लेकिन साथ ही न्यूक्लियर देश न्यूक्लियर नि:शस्त्रीकरण का कोई वादा नहीं कर रहे हैं, पचास वर्षों के भीतर भी नहीं। भारत द्वारा ऐसा वादा मनवाने की नाकाम रही हैं। इसीलिए उसने सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया है, वैसे ही जैसे एन.पी.टी. पर। इन संधियों का स्पष्ट संदेश यह है कि गैर-न्यूक्लियर देशों को कोई अधिकार नहीं है।
- दूसरा, भारत नयूक्लियर देशों से घिर चुका था। एक ओर तो चीन था, एक ऐसा देश जिसने वर्ष 1962 में भारत पर हमला किया था। उसके पास चार सौ पांच सौ न्यूक्लियर बम हैं, और दूर तक बम ले जा सकने वाली मिसाइलें, जिसमें आई.सी.बी.एम. (अंतर्महादेशीय बैलिस्टिक मिसाइलें) भी शामिल हैं। वे अत्यंत विकसित हैं। चीन ने तिब्बत में न्यूक्लियर अड्डे भी बना रखे हैं। दूसरी ओर, दिएगो गार्सिया में अमरीकी अड्डे से न्यूक्लियर जहाज भारत के पास सागर में चक्कर लगाते रहते है।। इसके अलावा, कजाकिस्तान, यूक्रेन और रूस के पास विकसित न्यूक्लियर हथियार हैं।
- पाकिस्तान ने भी चीन के साथ मिलकर और उसकी सहायता से दूरगामी मिसाइल तथा न्यूक्लियर शक्ति प्राप्त कर ली है। पाकिस्तान पहले ही भारत को तीन युद्धों में फंसा चुका है, और लगातार शत्रुतापूर्ण तनाव बनाए रखे हुए है। वह 'गौरी' नामक जमीन-से-जमीन तक मार करने वाले बैलिस्टिक मिसाइलें बना चुका है जो 1500 कि.मी. तक मार कर सकती हैं। सदियों पहले भारत पर हमला करने वाले शासक के नाम पर बना यह मिसाइल मई 1998 के भारतीय परीक्षणों से पहले ही सफलतापूर्वक छोड़ा जा चुका था।
- भारतीय परीक्षणों के तुरंत बाद पाकिस्तान ने अपने परीक्षण किए। शायद इन बम परीक्षणों में चीन ने बड़ी मदद की। चीन और पाकिस्तान का बढ़ता राजनयिक और न्यूक्लियर गठजोड़ तथा युद्ध तैयारियों में सहयोग भारत के लिए बड़ी चिंता का विषय है।
- इसी असमान विश्व न्यूक्लियर व्यवस्था और कुछ पड़ोसियों से खतरे के ही संदर्भ में भारत की न्यूक्लियर तैयारी और न्यूक्लियर विकल्प के पक्ष में कुछ समय तक देश में प्राप्त समर्थन को समझा जा सकता है।
- यही परिस्थितियां थीं जिनमें वाजपेयी की भा.ज.पा. नेतृत्व वाली सरकार ने मई 1998 में न्यूक्लियर परीक्षणों की अनुमति दी। यह काम जल्दीबाजी में, सत्ता में आने के कुछ ही सप्ताह के अंदर किया गया। 11 मई को तीन भूमिगत परीक्षण पोखरा में किए गए। इनमें से एक थर्मो-न्यूक्लियर था। इसमें यह दावा किया गया कि 45 किलोटन के हाइड्रोजन बम का परीक्षण किया गया है। ये परीक्षण उसी स्थल में किए गए जहाँ वर्ष 1974 में किए गए थे। दो दिनों

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER AHEAD IN IAS

बाद दो और परीक्षण करके तथ्य-आंकड़े उपलब्ध करना था, ताकि भविष्य में जरूरत पड़ने पर आवश्यकता बिंदु से थोड़े कम स्थिति संबंधी प्रयोग किए जा सके।

- इस बार इंदिरा गांधी के वक्त जैसे 'शांतिपूर्ण उद्देश्यों' की बातें नहीं की गई थी। परीक्षणों के बाद वाजपेयी ने घोषणा की दी भारत एक न्यूक्लियर-हथियारों वाला देश बन चुका है। देश में बने जमीन-से-जमीन पर मार करने 'पृथ्वी' तथा 'अग्नि' मिसाइलों के सहारे अब न्यूक्लियर बम ले जाए जा सकते थे।
- वामपंथियों और न्यूक्लियर विरोधी संगठनों में कुछ छोटे संगठनों को छोड़ देश में आमतौर पर परीक्षणों का स्वागत किया गया। विशेष तौर पर मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार ए.पी. जे. अब्दुल कलाम और एटमी ऊर्जा विभाग के मुख्य आर. चिदंबरम की प्रशंसा की गई। विरोधी पक्ष की नेता कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी ने वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों की उपलब्धियों की सराहना की, इस गर्व का उद्‌गार किया कि कांग्रेस ने भारत की न्यूक्लियर क्षमता आधुनिक स्तर पर बनाए रखी, और न्यूक्लियर हथियारों से मुक्त तथा शांतिपूर्ण पड़ोसियों वाले विश्व के प्रति कांग्रेस के समर्पण पर जोर दिया।

परमाणु परीक्षण पर भारत का दृष्टिकोण एवं विभिन्न देशों की प्रतिक्रिया

जिस तरह भा.ज.पा. सरकार ने न्यूक्लियर विकल्प लागू किया, और इससे जनित परिस्थिति के प्रति जो रूख अपनाया, उसे व्यापक तौर पर नापसंद किया गया। यह शंका प्रकट की गई कि न्यूक्लियर परीक्षणों की यह जल्दीबाजी राजनीतिक फायदा उठाने के लिए की गई। इस शंका को तब बल मिला जब भा. ज.पा. ने खुले तौर पर अंध-राष्ट्रवाद का सहारा लिया, पोखरान में मंदिर बनाने की बात की और पड़ोसी देशों की ओर धमकी भरा रूख अपनाया। यहां तक कि देश के अत्यंत महत्वपूर्ण दैनिक ने आर.एस.एस. के मुखपत्र पांचजन्म में प्रकाशित एक लेख की तीव्र भर्त्सना की। दैनिक के विचार में पाकिस्तान पर न्यूक्लियर हमले को वातावरण तैयार किया जा रहा था। परीक्षणों के बाद भारत को चाहिए था कि वह विश्व को, विशेष तौर पर पड़ोसियों को, अपने शांतिपूर्ण इरादों के बारे मे आश्वत करे और इसके लिए बुद्धिमत्तापूर्ण राजनयिक कदम उठाए। लेकिन सरकार ने ठीक उल्टा किया। इसके अलावा, रक्षामंत्री जॉर्ज फर्नांडिस द्वारा परीक्षणों के एक सप्ताह पूर्व दिए गए बयान राजनीतिक आत्मघात के बराबर थे। उन्होंने चीन का नंबर एक का दुश्मन बताया। प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा राष्ट्रपति क्लिंटन को लिखा गया पत्र न्यूयॉर्क टाइम्स में प्रकाशित हो गया। इसमें चीन और पाकिस्तान सेखतरे के नाम पर भारतीय न्यूक्लियर परीक्षणों को उचित ठहराया गया। इस तरह, विशेष देशों का नाम लेकर यह बताते हुए कि न्यूक्लियर क्षमता उन्हीं के खिलाफ विकसित की जा रही थी, गलत संकेत दिए गए। पूर्व कांग्रेस तथा संयुक्त मोर्चा सरकारों द्वारा चीन के साथ भारत के संबंध और भी सुधारे गए थे। चीन ने शुरू में तो परीक्षणों के प्रति हल्की प्रतिक्रिया प्रकट की, लेकिन बाद में यह तीखी होती चली गई।

- पश्चिम और जापान की प्रतिक्रियाएं अपेक्षा के अनुसार नकारात्मक थीं। परीक्षणों की व्यापक भर्त्सना की गई। अमरीका ने ओर भी आगे बढ़कर व्यापार की पाबंदियों लगा दी। जापान, नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्क, नीदरलैंड और कनाडा ने भारत को सहायता बंद कर दी। लेकिन अमरीका जी-8 के देशों को भारत के विरूद्ध सामुहिक कदम उठाने के लिए नहीं मना सका। फ्रांस, रूस और जर्मनी ने भारत की साथ सामान्य आर्थिक सबंध बनाए रखे। यूरोपीय संघ का अध्यक्ष ब्रिटेन भारत-विरोधी दृढ़ रूख अपनाने के लिए संघ को नहीं मना सका।
- आर्थिक नाकेबंदी के दूरगामी प्रभावों के बारे में अभी कुछ ठीक से नहीं कहा जा सकता था, और न ही वह कब तक रहेगी इसके बारे में कुछ कहा जा सकता हैं लेकिन इतना स्पष्ट है कि भारत के न्यूक्लियर परीक्षणों ने असमान और दोहरे मानदंडों वाले न्यूक्लियर विश्व संबंधों को बड़ी चुनौती दी है।
- भारत द्वारा सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर करने पर जोर दे रहा है जबकि खुद उसी देश में सी.टी.बी.टी. की पुष्टि के लिए पूरा समर्थन हासिल नहीं है। जैसा कि संयुक्त राष्ट्र संघ के महासिच कोफी अन्नान ने कहा है, ''ऐसा कोई अलग न्यूक्लियर क्लब बनाना बिल्कुल गलत है, जिसके थोड़े से सदस्यों के पास न्यूक्लियर हथियार हों, और जो उन्हें समाप्त करने से इनकार करते रहें, और साथ ही उन्हें (भारत और पाकिस्तान से) ये हथियार बनाने से मना करते रहें।''

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOR THERE ABOVE 2007

कारगिल

पोखरान के बाद पाकिस्तान ने भी न्यूक्लियर परीक्षण किए। दोनों पक्षों के बीच काफी तलवार भांजे गए। लेकिन वर्ष 1999 की शुरूआत में वातावरण में तनाव कुछ कम हुआ और वाजपेयी ने 'बस राजनयिक अभियान' चलाया। वे भारत और पाकिस्तान के बीच पहली बार चलने वाली बस में बैठे। इसका उद्देश्य पाकिस्तान के साथ संबंधों में सुधार लाना था। लेकिन, जैसा कि बाद की घटनाओं ने दर्शाया, इस बहु-प्रचारित लाहौर जाने वाली इस बस सेवा से काफी पहले ही पाकिस्तान फौजी और पाकिस्तान-समर्थित भाड़े के मुजाहिद्दीन भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ करने लगे हुए थे। जब मई मे संकट फूट पड़ा तो पाया गया कि पाकिस्तानी सशस्त्र सेनाएं कश्मीर में नियंत्रण रेखा पार कर काफी दूर अंदर आ चुकी थीं और कारगिल क्षेत्र में सैनिक महत्व की चोटियों पर कब्जा कर चुकी थी। ऐसी स्थिति में भारत को अत्यंत प्रतिकूल स्थिति से बड़े पैमाने का और कठिन जवाबी हमला करना पड़ा। घुसपैठियों को निकाल बाहर करने की इस कोशिश मे जान-माल का, खासकर जान का, नुकसान उठाना पड़ा। कारगिल अभियान के दौरान मारे गए सैकड़ों भारतीय सैनिकों और अफसरों के फोटो नियमित रूप से अखबारों में छपते रहे, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था।

- कारगिल संकट के प्रति विश्व प्रतिक्रिया कुछ अनपेक्षित ही थी: लगभग पूर्णतया भारत के पक्ष में। यहां तक कि पाकिस्तान के पुराने सहयोगी देशों : अमरीका, ब्रिटेन और चीन ने पाकिस्तान पर भारतीय इलाके से हटने के लिए दबाव डाला। पाकिस्तान के इस दावे को, कि भारतीय क्षेत्र में उसके कोई भी नियमित फौजी नहीं हैं और वह आतंकवादियों को मात्र नैतिक समर्थन दे रहा है, किसी ने भी गंभीरता से नहीं लिया।
- अमरीकी स्थिति का आंशिका कारण अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर बढ़ता इस्लामी आतंकवाद हो सकता है। सऊदी इस्लामी मूलवादी ओसामा बिल लादेन के व्यक्तिगत बॉडीगार्ड के सैनिकों द्वारा पाकिस्तानी अभियानों में भाग लेने की रिपोर्टें मिली हैं। लादेन पर शक है कि उसने 1998 में अफ्रीका में अमरीकी दूतावासों पर बम से हमले करवाए जिसमें 'कई अमरीकी' मारे गए।
- भारत के प्रति चीन के नर्म रूख का कारण यह हो सकता है कि रूस के अलावा भारत एकमात्र ऐसा सहयोगी है जो बढ़ते अमरीकी प्रभुत्व का विरोध कर रहा है। अमरीका द्वारा प्रभुत्व प्रदर्शन का एक उदाहरण संयुक्त राष्ट्र संघ की उपेक्षा करते हुए अप्रैल-मई 1999 में कोसोवो संकट में उसके द्वारा दुनिया के पुलिसमैन का रोब जमाने की कोशिश थी।

कारगिल युद्ध के बाद की स्थिति

देश के अंदर इस घटना के नतीजे जटिल थे। एक स्तर पर तो कारगिल से चुनावों मे भा.ज.पा. को फायदा पहुंचा। लेकिन इस संकट ने भारतीय राज्य के लिए कुछ मूलभूत सवाल खड़े कर दिए। जब यह तथ्य सामने आया कि पाकिस्तानी घुसपैठ वर्ष 1998 की शरद् ऋतु से ही हो रही थी, तो सवाल उठ खड़े हुए कि इस संबंध में पहले ही कोई कदम क्यों नहीं उठाया गया। क्या यह एक अत्यंत संवेदी क्षेत्र में खुफिया विभाग की पूर्ण विफलता थी, या इससे भी बढ़कर और कुछ। ब्रिगेडियर सुरिंदर सिंह कारगिल-स्थिति 121वीं ब्रिगेड के कमांडर तथा भारतीय सेना के एक अत्यंत वरिष्ठ अफसर हैं। उन्होंने कोर्ट में दस्तावेजों के सहारे गवाही दी कि घुसपैठ के बारे में खुफिया जानकारी कई महीनों पहले से ही थी। यह जानकारी न केवल फौज की सर्वोच्च कमान बल्कि सरकार को भी दी गई थी। उनकी गवाही के कुछ अंश प्रसिद्ध भारतीय पत्रिका आउटलुक मे प्रकाशित किए गए।

- ये चेतावनियां अगस्त, 1998 से ही दी जा रही थीं। इससे यह शक पैदा हुआ कि कहीं भा.ज.पा. सरकार जानबूझकर सीमा-समस्या संकटग्रस्त होने तो नहीं दे रही है, ताकि चुनाव के समय में वह इसका 'कड़ाई' से निबटारा कर सके और दुश्मन के खिलाफ 'जीत' का श्रेय खुद ले सके। दूसरे शब्दों में, वह राजनीतिक फायदे की मशीन के लिए भारतीय सैनिकों का ईंधन के तौर पर इस्तेमाल कर रही थी। यदि यह सच साबित हुआ तो यह भारतीय राजनीति का निम्नतम स्तर होगा सरकार को इस मामले की जांच के लिए एक उच्च-स्तरीय आयोग का गठन करना पड़ा हैं।
- एक और चिंता का पहलू उभर रहा है। भा.ज.पा. के कार्यकलापों ने भारतीय राजनीतिक ने सशस्त्र सेनाओं को दूर रखने की पुरानी और स्वीकृत परंपरा को बिगाड़ दिया है। फौजी सेनाओं के प्रमुखों को भा.ज.पा. सदस्यों की

PARAMOUNT IAS Mission
FOREVER ABOVE
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

बैठकों में हिस्सा लेने के लिए आमंत्रित किया गया। जिन मंचों में भा.ज.पा. नेताओं भाषण होने थे, वहां सेना के वरिष्ठ अफसरों की बड़ी-बड़ी छवियां लाई गई।

- विश्व हिंदू परिषद जैसे भा.ज.पा. परिवार के सदस्य साउथ ब्लॉक में रक्षा मुख्यालय में पहुंच और फौजियों और पुरोहितों के लिए हजारों राखियां कारगिल भिजवाई। भारतीय सेनाओं के बहु-धार्मिक चरित्र कें संदर्भ में ये काम निरूद्देश्य नहीं लगते। भारत की रक्षा करने वाले मुसलिम, सिख और ईसाई सैनिकों को भुला दिया गया। इन सबके अलावा भा.ज.पा ने सेना-निवृत्त अफसरों एवं सैनिकों को पार्टी के काम में शामिल करने और उन्हें सांप्रदायिक विचारधारा से प्रभावित करने का पूरा प्रयत्न किया।
- इन सब बातों से काफी चिंता फैल गई है। सशस्त्र सेनाओ को इस प्रकार प्रभावित करने तथा पिछले पचास वर्षों की धर्मनिरपेक्ष एवं जनतांत्रिक परंपराएं तोड़ने की कोशिशें की भारत में तीखी आलोचना की गई है, और इन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता।

वर्ष 2004 एवं 2009 के लोकसभा चुनाव

वर्ष 2004 एवं 2009 के चुनावों में कांग्रेस भी पूरे जोर के साथ गठबंधन में शामिल हुई। राजग की हार हुई और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की सरकार बनी। इस गठबंधन का नेतृत्व कांग्रेस ने किया। संप्रग को वाम मोर्चा ने समर्थन दिया। वर्ष 2004 के चुनावों में एक हद तक कांग्रेस का पुनरूत्थान भी हुआ। वर्ष 1991 के बाद इस दफा पार्टी की सीटों की संख्या एक बार फिर बढ़ी। बहरहाल, 2004 के चुनावों में राजग और संप्रग को मिले कुल वोटों का अंतर बड़ा कम था। इस तरह दलीय प्रणाली सत्तर के दशक की तुलना में एकदम ही बदल गई है।

वर्ष 1990 के दशक के बाद से हमारे सामने जो राजनीतिक क्रिया आकार ले रही है, उसमें हम मुख्य रूप से चार तरह की पार्टियों के उभार को पढ़ सकते हैं: कांग्रेस के साथ गठबंधन में शामिल दल, भाजपा के साथ गठबंधन में शामिल दल, वाम मोर्चा के दल और कुछ ऐसे दल जो इन तीनों में से किसी में शामिल नहीं हैं। इस स्थिति से संकेत मिलते हैं कि राजनीतिक मुकाबला बहुकोणीय होगा। इन स्थितियों का एक तकाजा राजनीतिक विचारधाराओं में हेर-फेर भी है।

वर्ष 2006 भारत अमेरिका परमाणु समझौता

वर्ष 2006 भारत अमेरिका परमाणु समझौता 18 जुलाई 2006 को भारत और अमेरिका के बीच हुआ। भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज बुश ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किये।

18 जुलाई 2005 को वाशिंगटन में मनमोहन सिंह और अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने साझा बयान जारी कर इस परमाणु करार की घोषणा की थी। मार्च 2006 में जब बुश भारत की यात्रा पर आए तो सैनिक और असैनिक परमाणु रिएक्टरों को अलग करने पर भी सहमति बनी। इसके बाद अमरीकी संसद ने हेनरी हाइड एक्ट पारित किया लेकिन करार को अमली जामा पहनाने से संबंधित 1-2-3 समझौते पर काफी अरसे तक सहमति नहीं बन पाई। 18 जुलाई 2006 को इसे अंतिम रूप दिया गया। समझौते के बाद राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने कहा है कि यह समझौता भारत के साथ, जो विश्व का एक महत्त्वपूर्ण नेता है, हमारी गहरी भागीदारी में निरंतर जारी प्रगति की दिशा में एक और कदम है।

असहमति के मुद्दे

दो बड़े मुद्दे थे जिन पर दोनों देशों में सहमति नहीं बन पाई थी। भारत की मांग थी कि भविष्य में अगर वह परमाणु परीक्षण करता है, तो उसका इस समझौते पर कोई असर न पड़े। इसके लिये अमेरिकी कानून में बदलाव की जरूरत पड़ती और अमेरिका इसके लिए तैयार नहीं था। इसके अलावा भारत परमाणु संयत्रों में इस्तेमाल हुए ईंधन पर पूरा हक चाहता था। यानी कि बिजली पैदा करने के बाद ईंधन का क्या इस्तेमाल होता है, यह भारत तय करना चाहता था। 18 जुलाई 2006 को इसे अंतिम रूप दिया गया।

बढ़ती सहमति

अनेक महत्वपूर्ण मसलों पर अधिकतर दलों के बीच एक व्यापक सहमति है। कड़े मुकाबले और बहुत से संघर्षों के बावजूद अधिकतर दलों के बीच एक सहमति उभरती सी जान पड़ रही है। इस सहमति में चार बातें हैं।

- **पहला, नयी आर्थिक नीति पर सहमतिः** कई समूह नयी आर्थिक नीति के खिलाफ हैं, लेकिन ज्यादातर राजनीतिक दल इन नीतियों के पक्ष में हैं। अधिकतर दलों का मानना है कि नयी आर्थिक नीतियों से देश समृद्ध होगा और भारत, विश्व की एक आर्थिक शक्ति बनेगा।

- **दूसरा, पिछड़ी जातियों के राजनीतिक और सामाजिक दावे की स्वीकृतिः** राजनीतिक दलों ने पहचान लिया है कि पिछड़ी जातियों के सामाजिक और राजनीतिक दावे को स्वीकार करने की जरूरत है। इस कारण आज सभी राजनीतिक दल शिक्षा और रोजगार में पिछड़ी जातियों के लिए सीटों के आरक्षण के पक्ष में हैं। राजनीतिक दल यह भी सुनिश्चित करने के लिए तैयार हैं कि 'अन्य पिछड़ा वर्ग' को सत्ता में समुचित हिस्सेदारी मिले।
- **तीसरा, देश के शासन में प्रांतीय दलों की भूमिका की स्वीकृतिः** प्रांतीय दल और राष्ट्रीय दल का भेद अब लगातार कम होता जा रहा है। प्रांतीय दल केंद्रीय सरकार में साझीदार बन रहे हैं और इन दलों ने पिछले बीस सालों में देश की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- **चौथा, विचारधारा की जगह कार्यसिद्धि पर जोर और विचारधारागत सहमति के बगैर राजनीतिक गठजोड़ः** गठबंधन की राजनीति के इस दौर में राजनीतिक दल विचारधारागत अंतर की जगह सत्ता में हिस्सेदारी की बातों पर जोर दे रहे हैं, जो मिसाल के लिए अधिकतर दल भाजपा की 'हिंदुत्व' की विचारधारा से सहमत नहीं हैं, लेकिन ये दल भाजपा के साथ गठबंधन में शामिल हुए और सरकार बनाई, जो पांच साल तक चली।

ये सभी महत्वपूर्ण बदलाव हैं और आगामी राजनीति इन्हीं बदलावों के दायरे में आकार लेगी। अगर राजनीतिक दल इस सहमति के दायरे में सक्रिय हैं, तो जन आंदोलन और संगठन विकास के नए रूप, स्वप्न और तरीकों की पहचान कर रहे हैं। गरीबी, विस्थापन, न्यूनतम मजबूरी, आजीविका और सामाजिक सुरक्षा के मसले जन आंदोलनों के जरिए राजनीतिक एजेंडे के रूप में सामने आ रहे हैं। ये आंदोलन राज्य को उसकी जिम्मेदारियों के प्रति सचेत कर रहे हैं। इसी तरह लोग जाति, लिंग, वर्ग और क्षेत्र के संदर्भ में न्याय तथा लोकतंत्र के मुद्दे उठा रहे हैं। ऐसा विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि भारत में लोकतांत्रिक राजनीति जारी रहेगी।

❑❑❑

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

1. गठबन्धन सरकार को परिभाषित करें। यह प्रमुखता में कब आया? इसकी विशेषताओं के बारे में चर्चा करें।

(200 शब्द)

2. कांग्रेस पार्टी और भारतीय जनता पार्टी को वैचारिक आधार पर चर्चा करें। किस तरह भारत में लोकतंत्र के लिए पार्टियों के सिद्धांत हितकर हैं। विश्लेषण करें।

(200 शब्द)

3. कांग्रेस प्रणाली क्या है? किस तरह इसने राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया में सहायता प्रदान की?

(200 शब्द)

4. वैश्वीकरण को परिभाषित करें। वर्ष 2006 के अधिनियम की मुख्य विशेषताओं पर चर्चा करें।

(200 शब्द)

5. गठबंधन राजनीति के युग के दौरान राजनीतिक ताकतों के उद्‌भव पर चर्चा करें।

(200 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अध्याय

9

जन आंदोलनों का उदय

परिचय

जब लोगों में बदलाव की इच्छा तीव्र होती है, जब बदलाव की महत्वाकांक्षा लोगों में व्यापक हो जाती है और कोई दमनकारी बल इसके विपरीत खड़ा होकर अपनी पूरी क्षमता से इसे दबाना चाहता है तो बदलाव की यही इच्छा धीरे-धीरे जन आंदोलन का स्वरूप ले लेती है, और जब यह जन आंदोलन का स्वरूप ले लेती है, तो कितनी भी बड़ी दमनकारी हो, उसे झुकना पड़ता है। भारत ने अपने स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान जन आंदोलनों के माध्यम से कई मौकों पर इसकी जन शक्ति का महत्व परिचित कराया है। स्वतंत्रता के बाद अनेक सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकृतियों की वजह से जनआंदोलनों ने परिवर्तन लाया है।

चिपको आंदोलन

इस आंदोलन की शुरुआत उत्तराखण्ड के दो-तीन गांवों से हुई थी। गांव वालों ने वन विभाग से कहा कि खेती-बाड़ी के औजार बनाने के लिए हमें अंगूर के पेड़ काटने की अनुमति दी जाए। वन विभाग ने अनुमति देने से इनकार कर दिया। बहरहाल, विभाग ने खेल-सामग्री के एक विनिर्माता को जमीन का यही टुकड़ा व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए आबंटित कर दिया। इससे गांव वालों में रोष पैदा हुआ और उन्होंने सरकार के इस कदम का विरोध किया।

- यह विरोध बड़ी जल्दी उत्तराखण्ड के अन्य इलाकों में भी फैल गया। क्षेत्र की पारिस्थितिकी और आर्थिक शोषण के कहीं बड़े सवाल उठने लगे। गांववासियों ने मांग की कि जंगल की कटाई का कोई भी ठेका बाहरी व्यक्ति को नहीं दिया जाना चाहिए और स्थानीय लोगों का जल, जंगल, जमीन जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर कारगर नियंत्रण होना चाहिए।
- लोग चाहते थे कि सरकार लघु-उद्योगों के लिए कम कीमत की सामग्री उपलब्ध कराए और इस क्षेत्र के पारिस्थितिकी संतुलन को नुकसान पहुंचाए बगैर यहां का विकास सुनिश्चित करे। आंदोलन ने भूमिहीन वन कर्मचारियों का आर्थिक मुद्दा भी उठाया और न्यूनतम मजदूरी की गारंटी की मांग की।
- चिपको आंदोलन में महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी की। यह आंदोलन का एकदम नया पहलू था। इलाके में सक्रिय जंगल कटाई के ठेकेदार यहां के पुरुषों को शराब की आपूर्ति का भी व्यवसाय करते थे। महिलाओं ने शराबखोरी की लत के खिलाफ भी लगातार आवाज उठायी।
- इससे आंदोलन का दायरा विस्तृत हुआ और उसमें कुछ और सामाजिक मसले आ जुड़े। आखिरकार इस आंदोलन को सफलता मिली और सरकार ने पंद्रह सालों के लिए हिमालयी क्षेत्र में पेड़ों की कटाई पर रोक लगा दी ताकि इस अवधि में क्षेत्र का वनाच्छादन फिर से ठीक अवस्था में आ जाए।
- आखिरकार बात इस आंदोलन की सफलता तो है ही, साथ ही यह भी याद रखना होगा कि यह आंदोलन सत्तर के दशक और उसके बाद के सालों में देश के विभिन्न भागों में उठे अनेक जन आंदोलनों का प्रतीक बन गया।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE

दल-आधारित आंदोलन

जन आंदोलन कभी सामाजिक तो कभी राजनीतिक आंदोलन का रूप ले सकते हैं और अकसर ये आंदोलन दोनों ही रूपों के मेल से बने नजर आते हैं। उदाहरण के लिए, स्वाधीनता आंदोलन को ही लें। यह मुख्य रूप से राजनीतिक आंदोलन था लेकिन हम जानते हैं कि औपनिवेशिक दौर में सामाजिक-आर्थिक मसलों पर भी विचार मंथन चला जिससे अनेक स्वतंत्र सामाजिक आंदोलनों का जन्म हुआ, जैसे-जाति प्रथा विरोधी आंदोलन, किसान सभा आंदोलन और मजदूर संगठनों के आंदोलन। ये आंदोलन बीसवीं सदी के शुरूआती दशकों में अस्तित्व में आए। इन आंदोलनों ने सामाजिक संघर्षों के कुछ अंदरूनी मुद्दे उठाए।

- ऐसे कुछ आंदोलन आजादी के बाद के दौर में भी चलते रहे। मुंबई, कोलकाता और कानपुर जैसे बड़े शहरों के औद्योगिक मजदूरों के बीच मजदूर संगठनों के आंदोलन का बड़ा जोर था। सभी बड़ी पार्टियों ने इस तबके के मजदूरों को लामबंद करने के लिए अपने-अपने मजदूर संगठन बनाए।
- आजादी के बाद के शुरुआती सालों में आन्ध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र के किसान कम्युनिस्ट पार्टियों के नेतृत्व में लामबंद हुए। इन्होंने काश्तकारों के बीच जमीन के पुनर्वितरण की मांग की। आंन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल और बिहार के कुछ भागों में किसान तथा खेतिहर मजदूरों ने मार्क्सवादी-लेनिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में अपना विरोध जारी रखा।

नक्सलवादी आंदोलन

मार्क्सवादी-लेनिनवादी समूहों को 'नक्सलवादी' के नाम से जाना गया। किसान और मजदूरों के आंदोलन का मुख्य जोर आर्थिक अन्याय तथा असमानता के मसले पर रहा। ऐसे आंदोलनों ने औपचारिक रूप से चुनावों में भाग तो नहीं लिया, लेकिन राजनीतिक दलों से इनका नजदीकी रिश्ता कायम हुआ। इन आंदोलनों में शरीक कई व्यक्ति और संगठन राजनीतिक दलों से सक्रिय रूप से जुड़े। ऐसे जुड़ावों से दलगत राजनीति में विभिन्न सामाजिक तबकों की बेहतर नुमाइंदगी सुनिश्चित हुई।

राजनीतिक दलों से स्वतंत्र आंदोलन

'सत्तर' और 'अस्सी' के दशक में समाज के कई तबकों का राजनीतिक दलों के आचार-व्यवहार से मोहभंग हुआ। इसका तात्कालिक कारण तो यही था कि जनता पार्टी के रूप में गैर-कांग्रेसवाद का प्रयोग कुछ खास नहीं चल पाया और इसकी असफलता से राजनीतिक अस्थिरता का माहौल भी कायम हुआ था। लेकिन, अगर कारणों की खोज जरा दूर तक करें तो पता चलेगा कि सरकार की आर्थिक नीतियों से भी लोगों का मोहभंग हुआ था। देश ने आजादी के बाद नियोजित विकास (Planned Development) का मॉडल अपनाया था। इस मॉडल को अपनाने के पीछे दो लक्ष्य थे- आर्थिक संवृद्धि और आय का समतापूर्ण बंटवारा। आजादी के शुरूआती 20 सालों में अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में उल्लेखनीय संवृद्धि हुई, लेकिन इसके बावजूद ग़रीबी और असमानता बड़े पैमाने पर बरकरार रही। आर्थिक संवृद्धि के लाभ समाज के हर तबके को समान मात्रा में नहीं मिले। जाति और लिंग पर आधारित सामाजिक असमानताओं ने गरीबी के मसले को और ज्यादा जटिल तथा धारदार बना दिया। शहरी-औद्योगिक क्षेत्र तथा ग्रामीण कृषि-क्षेत्र के बीच भी एक न पाटी जा सकने वाली फांस पैदा हुई। समाज के विभिन्न समूहों के बीच अपने साथ हो रहे अन्याय और वंचना का भाव प्रबल हुआ।

- राजनीतिक धरातल पर सक्रिय कई समूहों का विश्वास लोकतांत्रिक संस्थाओं और चुनावी राजनीति से उठ गया। ये समूह दलगत राजनीति से अलग हुए और अपने विरोध को स्वर देने के लिए इन्होंने आवाम को लामबंद करना शुरू किया। इस काम में छात्र तथा समाज के विभिन्न तबकों के राजनीतिक कार्यकर्ता आगे आए और दलित तथा आदिवासी जैसे हाशिए पर धकेल दिए गए समूहों को लामबंद करना शुरू किया।
- मध्य वर्ग के युवा कार्यकर्ताओं ने गांव के गरीब लोगों के बीच रचनात्मक कार्यक्रम तथा सेवा संगठन चलाए। इन संगठनों के सामाजिक कार्यों की प्रकृति स्वयंसेवी थी इसलिए इन संगठनों को स्वयंसेवी संगठन या स्वयंसेवी क्षेत्र के संगठन कहा गया।
- ऐसे स्वयंसेवी संगठनों ने अपने को दलगत राजनीति से दूर रखा। स्थानीय अथवा क्षेत्रीय स्तर पर ये संगठन न तो चुनाव लड़े और न ही इन्होंने किसी एक राजनीतिक दल को अपना समर्थन दिया। ऐसे अधिकांश संगठन राजनीति में

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

विश्वास करते थे और उसमें भागीदारी भी करना चाहते थे, लेकिन इन्होंने राजनीतिक भागीदारी के लिए राजनीतिक दलों को नहीं चुना।

- इसी कारण इन संगठनों को 'स्वतंत्र राजनीतिक संगठन' कहा जाता है। इन संगठनों का मानना था कि स्थानीय मसलों के समाधान में स्थानीय नागरिकों की सीधी और सक्रिय भागीदारी राजनीतिक दलों की अपेक्षा कहीं ज्यादा कारगर होगी। इन संगठनों का विश्वास था कि लोगों की सीधी भागीदारी से लोकतांत्रिक सरकार की प्रकृति में सुधार आएगा।

जंगल बचाओ आन्दोलन वर्ष, 1980

प्रसिद्ध 'जंगल बचाओ आन्दोलन' वर्ष 1980 में बिहार से जंगले बचाने की मुहीम से शुरू हुआ जो बाद में झारखण्ड और उड़ीसा तक फैला।

वर्ष 1980 में सरकार ने बिहार के जंगलो को मूल्यवान सागौन के पेड़ो के जंगल में बदलने की योजना पेश की और इसी योजना के विरुद्ध बिहार के सभी आदिवासी काबिले एकजुट हुए और उन्होंने अपने जंगलो को बचाने हेतु एक आन्दोलन चलाया जिसे 'जंगल बचाओ आन्दोलन कहा गया' और जल्द ही यह आन्दोलन पुरे बिहार, झारखण्ड से लेकर उड़ीसा तक फैल गया।

- अब भी ऐसे स्वयंसेवी संगठन शहरी और ग्रामीण इलाकों में लगातार सक्रिय हैं। बहरहाल, अब इनकी प्रकृति बदल गई है। बाद के समय में ऐसे अनेक संगठनों का वित्त-पोषण विदेशी एजेंसियों से होने लगा। ऐसी एजेंसियों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की सर्विस-एजेंसियां भी शामिल हैं। इन संगठनों को बड़े पैमाने पर अब विदेशी धनराशि प्राप्त होती है जिससे स्थानीय पहल का आदर्श कुछ कमजोर हुआ है।

दलित पैंथर्स

दलित हितों की दावेदारी के क्रम में महाराष्ट में वर्ष 1972 में दलित युवाओं का एक संगठन 'दलित पैंथर्स' बना। आजादी के बाद के सालों में दलित समूह मुख्यतया जाति-आधारित असमानता और भौतिक साधनों के मामले में अपने साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ लड़ रहे थे। वे इस बात को लेकर जागरूक थे कि संविधान में जाति-आधारित किसी भी तरह के भेदभाव के विरुद्ध गारंटी दी गई है। आरक्षण के कानून तथा सामाजिक न्याय की ऐसी ही नीतियों का कारगर क्रियान्वयन इनकी प्रमुख मांग थी।

- आजादी के बाद भारतीय संविधान में छुआछूत की प्रथा को समाप्त कर दिया गया है। सरकार ने इसके अंतर्गत 'साठ' और 'सत्तर' के दशक में कानून बनाए। इसके बावजूद पुराने जमाने में जिन जातियों को अछूत माना गया था, उनके साथ इस नए दौर में भी सामाजिक भेदभाव तथा हिंसा का बरताव कई रूपों में जारी रहा।
- दलितों की बस्तियां मुख्य गांव से अब भी दूर होती थीं। दलित महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार होते थे। जातिगत प्रतिष्ठा की छोटी-मोटी बात को लेकर दलितों पर सामूहिक जुल्म ढाये जाते थे। दलितों के सामाजिक और आर्थिक उत्पीड़न को रोक पाने में कानून की व्यवस्था नाकाफी साबित हो रही थी। दूसरी तरफ, दलित जिन राजनीतिक दलों का समर्थन कर रहे थे जैसे- रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया, वे चुनावी राजनीति में सफल नहीं हो पा रही थीं।
- ये पार्टियां हाशिए पर रहती थीं, चुनाव जीतने के लिए इन्हें किसी दूसरी पार्टी के साथ गठजोड़ करना पड़ता था। ये पार्टियां लगातार टूट की भी शिकार हुई। इन वजहों से 'दलित पैंथर्स' ने दलित अधिकारों की दावेदारी करते हुए जन-कार्यवाही का रास्ता अपनाया।

गतिविधि

महाराष्ट्र के विभिन्न इलाकों में दलितों पर बढ़ रहे अत्याचार से लड़ना दलित पैंथर्स की अन्य मुख्य गतिविधि थी। दलित पैंथर्स तथा इसके समधर्मा संगठनों ने दलितों पर हो रहे अत्याचार के मुद्दे पर लगातार विरोध आंदोलन चलाया। इसके परिणामस्वरूप सरकार ने वर्ष 1989 में एक व्यापक कानून बनाया। इस कानून के अंतर्गत दलित पर अत्याचार करने वाले के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया। दलित पैंथर्स का वृहत्तर विचारधारात्मक ऐजेंडा जाति प्रथा को समाप्त करना तथा भूमिहीन गरीब किसान, शहरी औद्योगिक मजदूर और दलित सहित सारे वंचित वर्गों का एक संगठन खड़ा करना था।

- इस आंदोलन से पढ़े-लिखे दलित युवकों को एक मंच मिला जहां वे अपनी सर्जनशीलता का उपयोग प्रतिरोध की आवाज बनाकर कर सकते थे। इस दौर में अनेक आत्मकथाएं तथा अन्य साहित्य रचनाएं प्रकाशित हुई। इन रचनाओं में दलित लेखकों ने जाति-प्रथा की क्रूरता की जबर्दस्त मुखालफत की।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- भारतीय समाज के सबसे दबे-कुचले तबके के जीवन के अनुभव इन रचनाओं में दर्ज थे। इन रचनाओं में मराठी भाषा के साहित्य में जबर्दस्त हिलोर उठी। साहित्य का दायरा अब ज्यादा विस्तृत हुआ। उसमें समाज के विभिन्न वर्गों की नुमाइंदगी हुई और संस्कृति के धरातल पर एक टकराहट की शुरुआत हुई।
- आपातकाल के बाद के दौर में दलित पैंथर्स ने चुनावी समझौते किए। उसमें कई विभाजन भी हुए और यह संगठन राजनीतिक पतन का शिकार हुआ। बैकवर्ड एण्ड माइनॉरिटी एम्पलाईज फेडरेशन (बामसेफ) ने दलित पैंथर्स की अवनति से उत्पन्न रिक्त स्थान की पूर्ति की।

भारतीय किसान यूनियन

सत्तर के दशक से भारतीय समाज में कई तरह के असंतोष पैदा हुए। यहां तक कि समाज के जिन तबकों को विकास प्रक्रिया में कुछ लाभ हुआ था, उनमें भी सरकार और राजनीतिक दलों के प्रति नाराजगी थी। अस्सी के दशक का कृषक-संघर्ष इसका एक उदाहरण है जब अपेक्षाकृत धनी किसानों ने सरकार की नीतियों का विरोध किया।

उदय

वर्ष 1988 के जनवरी में उत्तर प्रदेश के एक शहर मेरठ में लगभग बीस हजार किसान जमा हुए। ये किसान सरकार द्वारा बिजली की दर में की गई बढ़ोत्तरी का विरोध कर रहे थे। किसान जिला समाहर्ता के दफ्तर के बाहर तीन हफ्तों तक डेरा डाले रहे। इसके बाद इनकी मांग मान ली गई। किसानों का यह बड़ा अनुशासित धरना रहा और जिन दिनों वे धरने पर बैठे थे उन दिनों आस-पास के गांवों से उन्हें निरंतर राशन-पानी मिलता रहा। मेरठ के इस ध रने को ग्रामीण शक्ति का या कहें कि काश्तकारों की शक्ति का एक बड़ा प्रदर्शन माना गया। धरने पर बैठे किसान, भारतीय किसान यूनियन (बी.के.यू.) के सदस्य थे। बी.के.यू. पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा के किसानों का एक संगठन था। यह अस्सी के दशक के किसान आंदोलन के अग्रणी संगठनों में एक था।

महाराष्ट्र के शेतकारी संगठन ने किसानों के आंदोलन को 'इंडिया' की ताकतों (यानी शहरी औद्योगिक क्षेत्र) के खिलाफ 'भारत' (यानी ग्रामीण कृषि क्षेत्र) का संग्राम करार दिया। भारत में अपनाए गये विकास के मॉडल से जुड़े विवादों में कृषि बनाम उद्योग का विवाद प्रमुख था। यही विवाद अस्सी के दशक में एक बार फिर उठा जब उदारीकरण की आर्थिक नीतियों के कारण कृषि क्षेत्र पर खतरे मंडराने लगे थे।

विशेषताएं

सरकार पर अपनी मांगों को मानने के लिए दबाव डालने के क्रम में बीकेयू ने रैली, धरना, प्रदर्शन और जेल भरो अभियान का सहारा लिया। इन कार्यवाहियों में पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उसके आस-पास के इलाके के गांवों के हजारों-हजार (कभी-कभी तो एक लाख से भी ज्यादा) किसानों ने भाग लिया। पूरे अस्सी के दशक भर बी.के.यू. ने राज्य के अनेक जिला मुख्यालयों पर इन किसानों की विशाल रैली आयोजित की। देश की राजधानी दिल्ली में भी बी.के.यू. ने रैली का आयोजन किया। इस लामबंदी का एक नया पक्ष यह था कि इसमें किसानों के जातिगत जुड़ाव का इस्तेमाल किया गया था। बी.के.यू. के अधिकांश सदस्य एक खास समुदाय के थे। इस संगठन ने जातिगत समुदायों को आर्थिक मसले पर एकजुट करने के लिए 'जाति-पंचायत' की परंपरागत संस्था का उपयोग किया। किसी औपचारिक सांगठनिक ढांचे के अभाव के बावजूद बी.के.यू. अपने को लंबे समय तक कायम रख सका क्योंकि यह संगठन अपने सदस्यों के जातिगत-वंशगत संपर्क-जल पर आधारित था। बी.के.यू. के लिए धनराशि और संसाधन इन्हीं संपर्कतंत्रों से जुटाए जाते थे और इन्हीं के सहारे बी. के.यू. की गतिविधियां भी संचालित होती थीं।

- वर्ष 1990 के दशक के शुरुआती सालों तक बी.के.यू. ने अपने को सभी राजनीतिक दलों से दूर रखा था। यह अपने सदस्यों के संख्या बल के दम पर राजनीति में एक दबाव समूह की तरह सक्रिय था। इस संगठन ने राज्यों में मौजूद अन्य किसान संगठनों को साथ लेकर अपनी कुछ मांगें मनवाने में सफलता पाई।
- इस अर्थ में किसान आंदोलन अस्सी के दशक में सबसे ज्यादा सफल सामाजिक आंदोलन था। इस आंदोलन की सफलता के पीछे इसके सदस्यों की राजनीतिक मोल-भाव की क्षमता का हाथ था। यह आंदोलन मुख्य रूप से देश के समृद्ध राज्यों में सक्रिय था। खेती को अपनी जीविका का आधार बनाने वाले अधिकांश भारतीय किसानों के विपरीत बी.के.यू. जैसे संगठनों के सदस्य बाजार के लिए नगदी फसल उपजाते थे।
- बी.के.यू. के समान राज्यों के अन्य किसाना संगठनों ने अपने सदस्य उन समुदायों के बीच से बनाए जिनका क्षेत्र की चुनावी राजनीति में रसूख था। महाराष्ट्र का शेतकारी संगठन और कर्नाटक का रैयत संघ ऐसे किसान संगठनों के जीवंत उदाहरण हैं।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in

ताड़ी-विरोधी आंदोलन

जब बी.के.यू. उत्तर में किसानों को लामबंद कर रहा था उसी समय एक अलग तरह का आंदोलन दक्षिणी राज्य आन्ध्रप्रदेश में आकार ले रहा था। यह महिलाओं का एक स्वत:स्फूर्त आंदोलन था। ये महिलाएं अपने आस-पड़ोस में मदिरा की बिक्री पर पाबंदी की मांग कर रही थीं।

- वर्ष 1992 के सितंबर और अक्टूबर माह में इस तरह की खबरें तेलुगु प्रेस में लगभग रोज दिखती थीं। गांव का नाम बदल जाता पर खबर वैसी ही होती। ग्रामीण महिलाओं ने शराब के खिलाफ लड़ाई छेड़ रखी थी। यह लड़ाई माफिया और सरकार दोनों के खिलाफ थी। इस आंदोलन ने ऐसा रूप धारण किया कि इसे राज्य में ताड़ी-विरोधी आंदोलन के रूप में जाना गया।

उदय

आन्ध्र प्रदेश के नेल्लौर जिले के एक दूर-दराज के गांव दुबरगंटा में वर्ष 1990 के शुरुआती दौर में महिलाओं के बीच प्रौढ़-साक्षरता कार्यक्रम चलाया गया जिसमें महिलाओं ने बड़ी संख्या में पंजीकरण कराया। कक्षाओं में महिलाएं घर के पुरुषों द्वारा देशी शराब, ताड़ी आदि पीने की शिकायतें करती थीं। ग्रामीणों को शराब की गहरी लत लग चुकी थी। इसके चलते वे शारीरिक और मानसिक रूप से भी कमजोर हो गए थे। शराबखोरी से क्षेत्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो रही थी। शराबखोरी के बढ़ने से कर्ज का बोझ बढ़ा।

- पुरुष अपने काम से लगातार गैर-हाजिर रहने लगे। शराब के ठेकेदार मदिरा व्यापार पर एकाधिकार बनाये रखने के लिए अपराधों में व्यस्त थे। शराबखोरी से सबसे ज्यादा दिक्कत महिलाओं को ही रही थी। इससे परिवार की अर्थव्यवस्था चरमराने लगी। परिवार में तनाव और मारपीट का माहौल बनने लगा।
- नेल्लोर में महिलाएं ताड़ी की बिक्री के खिलाफ आगे आईं और उन्होंने शराब की दुकानों को बंद कराने के लिए दबाव बनाना शुरू कर दिया। यह खबर तेजी से फैली और करीब 5000 गांवों की महिलाओं ने आंदोलन में भाग लेना शुरु कर दिया। प्रतिबंध संबंधी एक प्रस्ताव को पास कर इसे जिला कलेक्टर को भेजा गया। नेल्लोर जिले में ताड़ी की नीलामी 17 बार रद्द हुई। नेल्लोर जिले का यह आंदोलन धीरे-धीरे पूरे राज्य में फैल गया।

आंदोलन की कड़ियां

ताड़ी-विरोधी आंदोलन का नारा बहुत साधारण था- **'ताड़ी की बिक्री बंद करो।'** लेकिन इस साधारण नारे ने क्षेत्र के व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों तथा महिलाओं के जीवन को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। ताड़ी व्यवसाय को लेकर अपराध एवं राजनीति के बीच एक गहरा नाता बन गया था। राज्य सरकार को ताड़ी की बिक्री से काफी राजस्व की प्राप्ति होती थी इसलिए वह इस पर प्रतिबंध नहीं लगा रही थी। स्थानीय महिलाओं के समूहों ने इस जटिल मुद्दे को अपने आंदोलन में उठाना शुरु किया। वे घरेलू हिंसा के मुद्दे पर भी खुले तौर पर चर्चा करने लगीं। आंदोलन ने पहली बार महिलाओं को घरेलू हिंसा जैसे निजी मुद्दों पर बोलने का मौका दिया।

- इस तरह ताड़ी-विरोधी आंदोलन महिला आंदोलन का एक हिस्सा बन गया। इससे पहले घरेलू हिंसा, दहेज-प्रथा, कार्यस्थल एवं सार्वजनिक स्थानों पर यौन-उत्पीड़न के खिलाफ काम करने वाले महिला समूह आमतौर पर शहरी मध्यवर्गीय महिलाओं के बीच ही सक्रिय थे और यह बात पूरे देश पर लागू होती थी।
- महिला समूहों के सतत प्रयास से यह समझदारी विकसित होनी शुरू हुई कि औरतों पर होने वाले अत्याचार और लैंगिक भेदभाव का मामला खासा जटिल है। आठवें दशक के दौरान महिला आंदोलन परिवार के अंदर और उसके बाहर होने वाली यौन हिंसा के मुद्दों पर केंद्रित रहा। इन समूहों ने दहेज प्रथा के खिलाफ मुहिम चलाई और लैंगिक समानता के सिद्धांत पर आधारित व्यक्तिगत एवं संपत्ति कानूनों की मांग की।
- इस तरह के अभियानों ने महिलाओं के मुद्दों के प्रति समाज में व्यापक जागरूकता पैदा की। धीरे-धीरे महिला आंदोलन कानूनी सुधारों से हटकर सामाजिक टकराव के मुद्दों पर भी खुले तौर पर बात करने लगा।
- नब्बे के दशक तक आते-आते महिला आंदोलन समान राजनीतिक प्रतिनिधित्व की बात करने लगा था। संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के अंतर्गत महिलाओं को स्थानीय राजनीतिक निकायों में आरक्षण दिया गया है। इस व्यवस्था को राज्यों की विधानसभाओं तथा संसद में भी लागू करने की मांग की जा रही है।

PARAMOUNT IAS Mission IAS SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE

- संसद में इस आशय का एक संशोधन विधेयक भी पेश किया जा चुका है। परन्तु विधेयक को अभी तक जरूरी समर्थन हासिल नहीं हो पाया है। कुछ गुट जिनमें महिला समूह भी शामिल हैं, प्रस्तुत विधेयक के अंतर्गत दलित और पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए अलग से आरक्षण की मांग कर रहे हैं।
- वे सभी सामाजिक आंदोलन देश में आजादी के बाद अपनाए गए आर्थिक विकास के मॉडल पर सवालिया निशान लगाते रहे हैं। एक ओर जहां चिपको आंदोलन ने इस मॉडल में निहित पर्यावरणीय विनाश के मुद्दे को सामने रखा, वहीं दूसरी ओर, किसानों ने कृषि क्षेत्र की अनदेखी पर रोष प्रकट किया।

इसी तरह जहां दलित समुदायों की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां उन्हें जन-संघषों की ओर ले गईं वहीं ताड़ी-बंदी आंदोलन ने विकास के नकारात्मक पहलुओं की ओर इशारा किया।

नर्मदा बचाओं आंदोलन

नर्मदा आंदोलन अपने गठन की शुरुआत से ही सरदार सरोवर परियोजना को विकास परियोजनाओं के वृहत्तर मुद्दों से जोड़कर देखता रहा है। यह आंदोलन विकास के मॉडल और उसके सार्वजनिक औचित्य पर सवाल उठाता रहा है। आंदोलन की एक मुख्य दलील यह रही है कि अब तक की सभी विकास परियोजनाओं पर हुए खर्च का विश्लेषण किया जाए। आंदोलन के अनुसार परियोजनाओं के लागत विश्लेषण में इस बात का जायजा भी लिया जाना चाहिए कि समाज के विभिन्न वर्गों को इन परियोजनाओं का क्या खामियाजा भुगतना पड़ा है। आंदोलन के नेतृत्व ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि इन परियोजनाओं का लोगों के पर्यावास, आजीविका, संस्कृति तथा पर्यावरण पर बुरा असर पड़ा है।

- प्रारंभ में आंदोलन ने यह मांग रखी कि परियोजना से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित सभी लोगों का समुचित पुनर्वास किया जाए। आंदोलन के लोगों ने इन महाकाय विकास परियोजनाओं के निर्माण की प्रक्रिया पर भी सवाल उठाए। नर्मदा बचाओ आंदोलन ने इस बात पर जोर दिया कि ऐसी परियोजनाओं की निर्णय प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों की भागीदारी होनी चाहिए और जल, जंगल, जमीन जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर उनका प्रभावी नियंत्रण होना चाहिए।
- आंदोलन ने एक महत्वपूर्ण सवाल यह भी उठाया कि लोकतंत्र में कुछ लोगों के लाभ के लिए अन्य लोगों को नुकसान क्यों उठाना चाहिए? इस तरह के सवालों से जूझते हुए आंदोलन ने अंततः पुनर्वास की मांग से आगे कदम बढ़ाया। अब आंदोलन बड़े बांधों की खुली मुखालफत करता है।
- नर्मदा बचाओ आंदोलन के कार्यकर्ताओं का गुजरात जैसे राज्यों में तीव्र विरोध हुआ है। परन्तु अब सरकार और न्यायपालिका दोनों ही यह स्वीकार करते हैं कि लोगों को पुनर्वास मिलना चाहिए। सरकार द्वारा वर्ष 2003 में स्वीकृत राष्ट्रीय पुनर्वास नीति को नर्मदा बचाओ जैसे सामाजिक आंदोलन की उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। परन्तु सफलता के साथ ही नर्मदा बचाओ आंदोलन को बांध के निर्माण पर रोक लगाने की मांग उठाने पर तीखा विरोध भी झेलना पड़ा है।

सुप्रीम कोर्ट एवं नर्मदा

आलोचकों का कहना है कि आंदोलन का अड़ियल रवैया विकास की प्रक्रिया, पानी की उपलब्धता और आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न कर रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में सरकार को बांध का काम आगे बढ़ाने की हिदायत दी है लेकिन साथ ही उसे यह आदेश भी दिया गया है कि प्रभावित लोगों का पुनर्वास सही ढंग से किया जाए।

- नर्मदा बचाओ आंदोलन दो से भी ज्यादा दशकों तक चला। आंदोलन ने अपनी मांग मुखर करने के लिए हरसंभव लोकतांत्रिक रणनीति का इस्तेमाल किया। आंदोलन ने अपनी बात न्यायपालिका से लेकर अंतर्राष्ट्रीय मंचों तक उठाई। आंदोलन की समझ को जनता के सामने मुखर के लिए नेतृत्व ने सार्वजनिक रैलियों तथा सत्याग्रह जैसे तरीकों का भी प्रयोग किया परन्तु विपक्षी दलों सहित मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टियों के बीच आंदोलन कोई खास जगह नहीं बना पाया।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- वास्तव में, नर्मदा आंदोलन की विकास रेखा भारतीय राजनीति में सामाजिक आंदोलन और राजनीतिक दलों के बीच निरंतर बढ़ती दूरी को बयां करती है। उल्लेखनीय है कि नब्बें के दशक के अंत तक पहुंचते-पहुंचते नर्मदा बचाओ आंदोलन से कई अन्य स्थानीय समूह और आंदोलन भी आ जुड़े।
- ये सभी आंदोलन अपने-अपने क्षेत्रों में विकास की वृहत् परियोजनाओं का विरोध करते थे। इस मुकाम तक आते-आते नर्मदा बचाओ आंदोलन देश के विभिन्न हिस्सों में चल रहे समधर्मा आंदोलनों के गठबंधन का अंग बन गया।

सरदार सरोवर परियोजना

अस्सी के दशक के प्रारंभ में भारत के मध्य भाग में स्थित नर्मदा घाटी में विकास परियोजना के तहत मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र से गुजरने वाली नर्मदा और उसकी सहायक नदियों पर 30 बड़े, 135 मझोले तथा 300 छोटे बांध बनाने का प्रस्ताव रखा गया। गुजरात के सरदार सरोवर और मध्य प्रदेश के नर्मदा सागर बांध के रूप में दो सबसे बड़ी और बहु-उद्देश्यीय परियोजनाओं का निधारिण किया गया। नर्मदा नदी के बचाव में नर्मदा बचाओ आंदोलन चला। इस आंदोलन ने बांधों के निर्माण का विरोध किया। नर्मदा बचाओं आंदोलन इन बांधों के निर्माण के साथ-साथ देश में चल रही विकास परियोजनाओं के औचित्य पर भी सवाल उठाता रहा है।

सरदार सरोवर परियोजना के अंतर्गत एक बहु-उद्देश्यीय विशाल बांध बनाने का प्रस्ताव है। बांध समर्थकों का कहना है कि इसके निर्माण से गुजरात के एक बहुत बड़े हिस्से सहित तीन पड़ोसी राज्यों में पीने के पानी, सिंचाई और बिजली के उत्पादन की सुविधा मुहैया कराई जा सकेगी तथा कृषि की उपज में गुणात्मक बढ़ोत्तरी होगी।

बांध की उपयोगिता इस बात से भी जोड़कर देखी जा रही था कि इससे बाढ़ और सूखे की आपदाओं पर अंकुश लगाया जा सकेगा। प्रस्तावित बांध के निर्माण से संबंधित राज्यों के 245 गांव डूब के क्षेत्र में आ रहे थे। अतः प्रभावित गांवों के करीब ढाई लाख लोगों के पुनर्वास का मुद्दा सबसे पहले स्थानीय कार्यकर्ताओं ने उठाया। इन गतिविधियों को एक आंदोलन की शक्ल 1988-89 के दौरान मिली जब कई स्थानीय स्वयंसेवी संगठनों ने खुद को नर्मदा बचाओ आंदोलन के रूप में गठित किया।

जन लोकपाल विधेयक आंदोलन, 2011

5 अप्रैल 2011 को एक सशक्त लोकपाल विधेयक के निर्माण की माँग पर सरकारी निष्क्रियता के प्रतिरोध में अन्ना हजारे ने आमरण अनशन शुरु कर दिया। भ्रष्टाचार के खिलाफ उनकी इस मुहिम में अरविंद केजरीवाल, किरण बेदी, प्रशांत भूषण, बाबा रामदेव एवं अन्य अनेक प्रसिद्ध समाजसेवी शामिल थे। सरकार ने इसे उपेक्षित करना जारी रखा। इस अनशन को भारत एवं शीघ्र ही विश्व के संचार माध्यमों में विस्तृत रूप से प्रकाशित और प्रसारित किया जाने लगा। भ्रष्टाचार के खिलाफ जारी इस कोशिश को शीघ्र ही व्यापक जनसमर्थन मिलने लगा। भारत के प्रायः सभी शहरों में युवा सड़कों पर उतर आए एवं इसके समर्थन में प्रदर्शन किया तथा पर्चे बाँटे।

- अन्ना हजारे के अनशन के देशव्यापी जन आन्दोलन के रूप में फैल जाने से चिंतित सरकार ने जनलोकपाल विधेयक का मसौदा तैयार करने के लिये झटपट एक समिति की घोषणा की। उसने 16 अगस्त से पहले संसद में एक मजबूत लोकपाल विधेयक पास कराने पर भी सहमति प्रकट कर दी।
- इस तरह यह अनशन समाप्त हुआ और भ्रष्टाचार के विरुद्ध पनपता जन आंदोलन मजबूत लोकपाल के निर्माण की आशा के साथ समाप्त हुआ। किंतु सरकारी मंशा संदिग्ध थी इसलिए अन्ना हजारे ने साथ ही घोषणा की कि यदि आगामी 15 अगस्त तक अपेक्षित लोकपाल विधेयक निर्मित नहीं हुआ तो वे 16 अगस्त से पुनः अनशन पर जाएँगे।

लोकपाल मसौदा समिति

अप्रैल में किए गए अन्ना हजारे के अनशन की समाप्ति की शर्तों के अनुरूप सरकार ने 10 सदस्यीय लोकपाल मसौदा निर्माण समिति के निर्माण की घोषणा की। इसमें सरकार के 5 एवं नागरिक समाज के 5 प्रतिनिधि रखे गए। अन्ना हजारे ने सरकार के संवैधानिक प्रावधानों की बाध्यता वाले तर्क का विरोध न करते हुए किसी मंत्री को समिति का अध्यक्ष होना स्वीकार कर लिया। किंतु कपिल सिब्बल के नेतृत्व वाली इस समिति के मंत्रियों ने अपनी मनमानी की। प्रधानमंत्री और न्यायाधीशों को लोकपाल के दायरे में लाने के मुद्दे पर नागरिक समाज के प्रतिनिधियों और सरकार के बीच विरोध बना रहा। अंततः

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
■ www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT Mission IAS
A SUBSIDIARY OF PARAMOUNT LEAGUE

सरकारी मंत्रियों के रवैये से निराश अन्ना हजारे के साथियों ने जन लोकपाल का मसौदा अलग से निर्मित किया। और इस तरह समिति ने दो मसौदे का निर्माण किया जिसे केंद्रीय मंत्रिमंडल के सामने रखा गया। वहाँ भी मंत्रियों के मसौदे को तो पूर्णत: प्रस्तुत किया गया किंतु जन लोकपाल का सारांश रखा गया। और अपेक्षा के अनुरूप मंत्रिमंडल ने मंत्रियों के मसौदे को अपनाकर संसद में पेश करने के लिए सहमति दे दी।

संसद के लोकपाल विधेयक

4 अगस्त 2011 को संसद में लोकपाल विधेयक प्रस्तुत किया गया। सरकार के लोकपाल विधेयक में प्रधानमंत्री को उनके कार्यकाल के दौरान इसके दायरे से बाहर रखा गया था। लेकिन सभी भूतपूर्व प्रधानमंत्री इसके दायरे में रखे गए थे। इसके अनुसार लोकपाल एक समिति होगी जिसके अध्यक्ष वर्तमान या सेवानिवृत्त न्यायधीश होंगे। इसमें आठ सदस्य होंगे जिसमें से चार कानून को जानने वाले एवं अनुभवी लोग होंगे। इसमें जांच की समय सीमा सात साल रखी गई थी।

अगस्त, 2011 अनशन

भारत का 65वाँ स्वाधीनता दिवस समारोह अन्ना हजारे द्वारा अप्रैल के अनशन की समाप्ति की इस घोषणा की छाया में हुआ कि यदि 15 अगस्त तक सरकार ने लोकपाल विधेयक पास नहीं कराया तो वे पुन: अनशन करेंगें। 15 अगस्त से कई दिन पूर्व ही यह स्पष्ट हो चुका था कि 16 अगस्त से घोषित अनशन जरूर होगा। सरकार ने इसे रोकने की हर तरह की कोशिश आरंभ कर दी।

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भारत के 65वें स्वतंत्रता दिवस समारोह के अवसर पर लाल किले की प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित करते हुए एक तरफ तो भ्रष्टाचार को समाप्त करने की इच्छा जताई मगर साथ ही उसके लिए किसी भी तरह के प्रदर्शन को असंवैधानिक करार दिया 16 अगस्त भारतीय सत्ता और जनता की शक्ति की परीक्षा का दिन था। पुलिस ने अनशन से निबटने की पूरी तैयारी कर रखी थी। अनशन शुरु करने के लिए तैयार होते हुए अन्ना एवं उनके साथियों को पुलिस ने दिल्ली के मयूर विहार स्थित सुप्रीम इन्क्लेव से करीब साढ़े सात बजे अनशन शुरु करने से पहले ही गिरफ्तार कर लिया।

देशव्यापी प्रदर्शन

अन्ना हजारे की गिरफ्तारी के बाद पूरे देश में जम्मू से कर्नाटक तक और कोलकाता से जयपुर तक सैकड़ों लोगों ने सड़कों पर उतर कर विरोध प्रदर्शन और जेल भरो आंदोलन शुरू हो गया। केवल दिल्ली में ही 3 हजार से ज्यादा लोगों को गिरफ्तार किया गया। दिल्ली पुलिस ने दिल्ली के 12 स्टेडियमों को जेल में तब्दील कर दिया। महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले में स्थित अन्ना हजारे के गाँव रालेगण सिद्धि में उनकी गिरफ्तारी की खबर पहुँचते ही गाँव निवासी अपने जानवरों सहित सड़क पर आ गए और रास्ता रोक दिया।

- दुकानें और स्कूल बंद रहे तथा सैंकड़ों लोगों ने उपवास आरंभ कर दिया। देश की वाणिज्यिक राजधानी मुंबई के आजाद मैदान में बडीं संख्या में लोगों ने एकत्रित होकर जनलोकपाल बिल का समर्थन और अन्ना हजारे की गिरफ्तारी का विरोध किया। पुणे और नासिक में 'मी अन्ना हजारे' यानी मैं अन्ना हजारे लिखी हुई गाँधी टोपियाँ पहने लोगों ने मोर्चा निकाला।
- पटना में गाँधी मैदान के पास कारगिल चौक से लेकर डाकबंगला चौराहा और बेली रोड तक अलग-अलग जत्थों में लोग सड़कों पर निकले। जिनमें रोष था किंतु वे हिंसा या तोड़फोड़ जैसी कार्रवाई नहीं कर रहे थे।
- उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ में उच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं ने हड़ताल कर दी। जयपुर में अन्ना के समर्थन में उद्योग मैदान में तीन दिनों का क्रमिक अनशन करने का निर्णय लिया। चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा में विभिन्न स्थानों पर वकीलों, शिक्षाविदों और कार्यकर्ताओं ने रैलियाँ निकाली। पश्चिम बंगाल की राजधानी कोलकाता सहित राज्य के विभिन्न हिस्सों में विरोध प्रदर्शन हुए।

सरकार से वार्ता

22 अगस्त को प्रधानमंत्री ने वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी, रक्षा मंत्री ए.के. एंटनी व गृह मंत्री पी. चिदंबरम से चर्चा के बाद सरकार ने प्रणव मुखर्जी को वार्ताकार नियुक्त किया और अन्ना को पत्र लिखकर इस सरकारी पहल की जानकारी दी। इसके बाद केन्द्रीय कानून मंत्री सलमान खुर्शीद और अन्ना के सहयोगी अरविंद केजरीवाल और तरून गोगोई की कांग्रेस सांसद संदीप दीक्षित के आवास पर मुलाकात हुई। इसके बाद अरविंद

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

केजरीवाल ने कहा कि सरकार वार्ता के लिए तैयार हो गई है। इसके लिए प्रणव मुखर्जी को नियुक्त किया गया है।

- 23 अगस्त की रात को पहले दौर की वार्ता में सरकार की ओर से मुखर्जी व सलमान खुर्शीद ने भाग लिया। नागरिक समाज की ओर से किरण बेदी, अरविंद केजरीवाल व प्रशांत भूषण शामिल हुए। सरकार ने वार्ता को संतोषजनक बताया। सरकार ने अन्ना की सेहत पर चिंता जताई और कहा कि बुधवार सुबह फिर वार्ता की जाएगी।
- अन्ना दल के सदस्य अरविंद केजरीवाल ने कहा कि सरकार और हमारे बीच तीन मुद्दों पर असहमति है। सरकार ने इन पर विचार के लिए बुधवार सुबह तक का समय मांगा है। प्रशांत भूषण ने कहा कि सरकार ने अन्ना से अनशन तोड़ने की भी अपील की है। लेकिन आज जो बातचीत हुई उसमें कुछ नहीं नतीजा निकला कि हम अन्नाजी से अनशन तोड़ने को कहें।

वार्ता में सरकार कुछ मुद्दों पर सहमत हो गई थी।

- प्रधानमंत्री लोकपाल के दायरे में।
- न्यायपालिका के लिए अलग कानून।
- सीबीआई का एंटी करप्शन सेल लोकपाल के अधीन काम करेगा।

किंतु अभी कई विषयों पर सहमती नहीं बन पाई थी।

- जूनियर कर्मचारियों को लोकपाल के दायरे में लाने पर।
- राज्यों में एक साथ लोकायुक्त की नियुक्ति।
- हर काम की अवधि तय करना, न होने पर अफसर का वेतन काटे।

इसके साथ ही अन्ना के सहयोगी कुछ शर्तों पर सरकार की मंजूरी भी चाहते थे।

- स्थाई समिति के पास नहीं, सीधा संसद में पेश हो जन लोकपाल बिल।
- सरकारी बिल स्थायी समिति से वापस लिया जाए या रद्द हो।
- यूपीए व कांग्रेस लिखित में दे, सदन में समर्थन का आश्वासन।
- जन लोकपाल बिल इसी सत्र में पारित हो, जरूरत हो तो सत्र आगे बढ़े।

सुबह अन्ना के सहयोगियों के साथ पुनः वार्ता को ध्यान में रखकर देर रात प्रधानमंत्री ने अन्ना मसले को लेकर आपात बैठक बुलाई और वरिष्ठ मंत्रियों के साथ चर्चा की। इसके तुरंत बाद कांग्रेस कोर ग्रुप की बैठक भी हुई। मगर इन सारी कवायदों का परिणाम 24 अगस्त को अपेक्षा के उल्टे रूप में सामने आया। सरकार का रुख बिल्कुल बदल गया था। प्रणब मुखर्जी के साथ बातचीत के बाद प्रशांत भूषण ने कहा कि मंगलवार को हुई वार्ताओं में सरकार का रुख काफी सकारात्मक था लेकिन बुधवार को सब कुछ बदला-बदला सा नजर आया। अरविंद केजरीवाल ने कहा कि सरकार ने साफ कर दिया है कि वो जन लोकपाल बिल को पेश नहीं करेगी। किरन बेदी ने कहा कि प्रणब मुखर्जी बुधवार को बैठक शुरू होते ही गुस्से में दिखे और वो कह रहे थे कि जो आपको करना करते रहो। अन्ना के अनशन के बारे में सरकार ने कहा कि वो उनकी यानि नागरिक समाज और अन्ना हजारे की समस्या है।

- इस गतिरोध के पश्चात 25 अगस्त को प्रधानमंत्री ने विलासराव देशमुख को पत्र देकर अन्ना के पास भेजा। अन्ना ने तीन बातों के स्वीकृत होने पर अनशन छोड़ने का आश्वासन दिया। 27 अगस्त को संसद की कार्यवा के साथ ही अन्ना के सहयोगियों से भी लगातार बार्ता चल रही थी। मगर सरकार अपना रुख स्पष्ट नहीं कर रही थी। अंततः शाम तक इन वार्ताओं का परिणाम अन्ना की तीन मांगों पर संसद के समर्थन के प्रस्ताव के रूप में आया। जिसकी सूचना देने के लिए फिर से विलास राव देशमुख प्रधानमंत्री का पत्र लेकर रामलीला मैदान आए। जिसके पश्चात अन्ना ने 28 अगस्त को अनशन स्थगित करने की घोषणा की।
- 27 अगस्त को संसद में अन्ना की मांगों पर सहमति बनने और 28 अगस्त को अन्ना द्वारा अनशन समाप्त करने की घोषणा के साथ ही पूरा देश जश्न में डूब गया। राजधानी दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, पटना, रांची, लखनऊ, बेंगलुरू, शिमला, जयपुर, रायपुर, गांधीनगर सहित पूरे देश में दीवाली जैसा माहौल बन गया। दिल्ली में अन्ना हजारे समर्थक अपनी खुशी का इजहार करने के लिए तिरंगा लहराते और नारे लगाते हुए इंडिया गेट पहुंचे। लोग देशभक्ति के गीतों पर झूमते नजर आए।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE ESTD 2005

- यह वास्तव में केवल नैतिक जीत थी। इतिहास जरूर बना था किंतु कागजों पर किसी ठोस चीज का निकलकर आना अभी बाकी था। इसने उसके लिए रास्ता जरूर बना दिया था। अन्ना के तीन शर्तों के समर्थन का प्रस्ताव संसद ने स्थाई समिति को भेज दिया था जिसे मानना उसके लिए कानूनी रूप से बाधय नहीं था।
- आगे स्थायी समिति को इन सभी सुझावों का विश्लेषण करने और यह भी तय करने का अधिकार था कि वे कितने व्यावहारिक हैं। संसद ने सरकार के उस मूल तर्क को सैद्धांतिक रूप से कायम रखा था कि कानून बनाने में संसद की भूमिका सर्वोपरि है और उस पर सवाल नहीं उठाए जा सकते।
- संसद में दिन भर चली बहस के बाद डीएमके, बहुजन समाज पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, समाजवादी पार्टी और बीजू जनता दल ने यह साफ कर दिया था कि लोकायुक्त की नियुक्ति में संसद की भूमिका नहीं होनी चाहिए क्योंकि इससे राज्यों की स्वायत्तता प्रभावित होगी। इनमें से कुछ दलों ने ऐसे किसी कदम के विरोध करने की मंशा भी साफ कर दी थी। निचली नौकरशाही को भी लोकपाल के अंतर्गत लाने को कांग्रेस ने स्वीकार तो कर लिया लेकिन यह भी कहा कि इसके लिए कानूनी और संस्थागत ढाँचे में मूलभूत परिवर्तन अभी किया जाना है।
- सांसदों ने जन लोकपाल बिल की संसद के अंदर सांसद के व्यवहार को लोकपाल के कार्य क्षेत्र में लाने की धारा का दलगत भावना से ऊपर उठकर एक स्वर में विरोध किया था। कई दलों ने न्यायपालिका को भी इसके दायरे में लाने का विरोध किया था। कुछ दलों ने इसके बदले राष्ट्रीय न्यायिक आयोग बनाए जाने की वकालत की और कुछ ने मजबूत जवाबदेही विधेयक लाने पर जोर दिया था। प्रधानमंत्री को भी इसमें शामिल किए जाने के मुद्दे पर भी सरकार ने कोई वचन नहीं दिया। भाजपा समेत कई दलों ने कुछ ऐहतियात के साथ प्रधानमंत्री को भी इसमें शामिल किए जाने का समर्थन किया।

दो और महत्वपूर्ण माँगों, सीबीआई की भ्रष्टाचार विरोधी इकाई को लोकपाल के अंतर्गत लाने और भ्रष्ट नौकरशाहों को बर्खास्त किए जाने के तरीके पर अंतिम निर्णय भी स्थायी समिति पर छोड़ दिया गया।

रणनीतिक कौशल

भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम के राष्ट्रीय जनांदोलन का रूप लेने के पीछे आंदोलन के नेतृत्वकर्ता अन्ना हजारे का व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ ही एक कुशल टीम के सही और समयोचित लिए गए निर्णय भी शामिल थे। अरविंद केजरीवाल, किरण वेदी, प्रशांत भूषण आदि समर्थ लोगों की टीम ने इस आंदोलन को निरंतर सही रास्ते पर रखा और उसके पथभ्रष्ट होने की गुंजाइश समाप्त कर दी।

- अरविंद केजरीवाल ने रामलीला मैदान में घोषणा की कि इस आंदोलन के दौरान किसी भी राजनीतिक पार्टी के नेता को अन्ना के मंच पर जाने की इजाजत नहीं दी जाएगी।

भाजपा कार्यकर्ताओं के इसमें बढ़ – चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं, तो उन्होंने कहा, 'हम किसी भी पार्टी के कार्यकर्ता और नेता को मना नहीं कर रहे हैं, उनका स्वागत है। वे यहां आकर अन्य समर्थकों के बीच बैठ सकते हैं।'

- 21 अगस्त को प्रदर्शन का रुख मंत्रियों सांसदों और विधायकों के घरों की ओर कर दिया गया। इसने सांसदों पर उचित विधेयक के निर्माण के लिए अतिरिक्त दबाब बनाना शुरु किया।
- संसद में चल रही और टीवी, पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से उठाए जाने वाले सवालों का टीम के सदस्य ट्विटर, साक्षात्कार, रामलीला के मंच आदि माधयम से तथा लेख लिखकर निरंतर सही जबाब देते रहे। इसने सरकार के गलत तर्कों को समाप्त किया और आंदोलन के विरोध में जनमत को मोड़ने की सरकार एवं राजनितिक दलों की सारी कोशिशें बेकार गईं।
- अंतत: बिना किसी ठोस लगने वाले आश्वासन के लिए सरकार को बाध्य किए अन्ना के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए 12 दिन तक अनशन को समाप्ति की ओर ले गए। कानूनी रूप से टीम को एक प्रस्ताव मात्र मिला था जिसकी माने जाने की कोइ बाध्यता नहीं थी। परंतु इसके पीछे जनता की इतनी ताकत मिल चुकी थी कि सरकार के लिए यह कानून से भी अधिक अनुपालनीय हो गया था।
- अनशन की समाप्ति रात को नौ बजे न कर अगले दिन सुबह आंदोलन जारी रखने की घोषणा के साथ एक समारोह के रूप में किया जिसमें टीवी के माध्यम से सारा देश शामिल था।

- मुसलमान और दलित राजनिति करने वालों का जबाब उन्होंने अपने तर्कों से तो दिया ही व्यावहारिक जवाब अन्ना के अनशन को एक दलित और एक मुस्लिम समुदाय की बच्ची से तुड़वाकर दिया।
- अभी काम अधूरा है इसका आभास दिलाने के लिए लोगों को शाम को पुनः एकत्रित होने का आह्वान किया और फिर से जीत की शाम मनाई।

निर्भया घटना

निर्भया, दिल्ली में 16 दिसम्बर 2012 के बहुचर्चित बलात्कार और हत्या की आपराधिक घटना की पीड़िता को समाज व मीडिया द्वारा दिया गया नाम है। भारतीय कानून व मानवीय सद्भावना के अनुसार ऐसे मामले में पीड़ित की पहचान को उजागर नहीं किया जाता।

कोई नाम ना होने का ही शायद यह असर था कि भारत की जनता ने बिना किसी धर्म, जाति-पाति के चश्मों से देखने की बजाय निर्भया को स्वयं से जुड़ा हुआ महसूस किया और भारतीय नारी के सम्मान मात्र की रक्षा के लिए एक अभूतपूर्व आंदोलन खड़ा कर दिया। मीडिया ने पूरे जोर शोर से जनता की वकालत की और सरकार को कटघरे में खड़ा किया। सरकार को भी अपनी जिम्मेवारी का अहसास हुआ और उसने व्यवस्था में परिवर्तन का संकल्प लिया। निर्भया ने साहस के साथ जिदंगी की जंग लड़ी और हमेशा के लिए सोने से पहले सबको जगा कर चली गई। इस घटना के बाद जब देश जगा तो सिस्टम को भी बदलना पड़ा।

नई दिल्ली में अपने पुरुष मित्र के साथ बस में सफर कर रही निर्भया के साथ 16 दिसम्बर 2012 की रात में बस के निर्वाहक, मार्जक व उसके अन्य साथियों द्वारा पहले भद्दी-भद्दी फब्तियाँ कसी गयीं और जब उन दोनों ने इसका विरोध किया तो उन्हें बुरी तरह पीटा गया। जब उसका पुरुष दोस्त बेहोश हो गया तो उस युवती के साथ उन बहशियों ने बलात्कार करने की कोशिश की। उस बहादुर युवती ने उनका डटकर विरोध किया परन्तु जब वह संघर्ष करते-करते थक गयी तो उन्होंने पहले तो उससे बेहोशी की हालत में बलात्कार करने की कोशिश की परन्तु सफल न होने पर उसके यौनांग में व्हील जैक की रॉड घुसाकर बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया। बाद में वे सभी वहशी दरिंदे उन दोनों को एक निर्जन स्थान पर बस से नीचे फेंककर भाग गये। किसी तरह उन्हें दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल ले जाया गया। वहाँ बलात्कृत युवती की शल्य चिकित्सा की गयी। परन्तु हालत में कोई सुधार न होता देख उसे 26 दिसम्बर 2012 को सिंगापुर कमाउन्ट एलिजाबेथ अस्पताल ले जाया गया जहाँ उस युवती की बलवती आत्मा ने 29 दिसम्बर 2012 को यह शरीर सदा-सदा के लिये त्याग दिया। 30 दिसम्बर 2012 को दिल्ली लाकर पुलिस की सुरक्षा में उसके शव का अंतिम संस्कार कर दिया गया।

अदम्य साहस

निर्भया ने घटना से पूर्व और घटना के बाद जिस बहादुरी का परिचय दिया उससे अनायास ही देश के अवचेतन हिल गया, संचार माध्यम त्वरित हस्तक्षेप के लिए विबश हो गया, सहम गई सत्ता और एकजुट हो गए लोग। महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराध पर नए सिरे से एक नई बहस शुरू हुई। इस घटना के विरोध में पूरे देश में उग्र व शान्तिपूर्ण प्रदर्शन हुए। सोशल मीडिया में ट्वीटर, फेसबुक आदि पर काफी कुछ लिखा गया। यहाँ तक कि महिलाओं की सुरक्षा सियासत का गेमचेंजर अजेंडा बन गयी बार और सभी दलों के ऊपर उनके सरोकारों के साथ खुद को दिखाने का सामाजिक दबाव भी पड़ा। यही कारण था कि सरकार ने जस्टिस वर्मा को कानून में बदलाव करने के लिए सिफारिश करने को कहा। इसमें पहली बार बलात्कार करने वाले अपराधियों को मौत की सजा देने का प्रावधान किया गया। संसद ने अभूतपूर्व तरीके से इसे एकमत से पास किया।

परिणाम

- 16 दिसम्बर की घटना के बाद पूरे देश में जागरूकता भी बढ़ी है। महिलाएं भी अपने प्रति हो रहे अन्याय के खिलाफ अब आवाज उठाने में हिचकिचा नहीं रही है। नए कानून से उन्हें मदद भी मिल रही है।
- इस घटना के बाद उषा मेहरा कमिशन का गठन हुआ, जिसने सुरक्षा जैसे मुद्दों पर तमाम जिम्मेदार विभागों में संवाद की कमी और इसे कैसे दूर किया जाये से संबंधित अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।
- महिला बाल विकास मंत्रालय ने महिला सुरक्षा के लिए 24 घंटे हेल्प लाइन नंबर की शुरूआत की।

PARAMOUNT IAS Mission
A SUBSIDIARY OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE

- मिनिस्ट्री ऑफ आईटी ने महिला सुरक्षा से कई गैजट बनाने की शुरूआत की जो जल्द ही बाजार में आएंगे।
- सरकार ने महिला बैंक की शुरूआत की।
- सरकार ने इसी घटना के बाद निर्भया फंड की शुरूआत की।
- तमाम राजनीतिक दलों के अजेंडे में महिला सुरक्षा पर फोकस गया।
- दिल्ली सरकार ने हेल्पलाइन नंबर 181 शुरू किया।
- मुख्य आरोपी राम सिंह ने तिहाड़ जेल में आत्म-हत्या कर लिया और विशेष तौर पर गठित त्वरित अदालत के द्वारा चारों वयस्क दोषियों को फाँसी की सजा सुनायी गयी, जबकि एक आरोपी को स्कूली प्रमाणपत्र के आधार पर नाबालिग मानते हुए उसे तीन साल किशोर सुधार गृह में रहने की सजा दी गई है।

बदलाव

2012 के मुकाबले इस साल राष्ट्रीय महिला आयोग को रेप, छेड़खानी और घरेलू हिंसा जैसे मामलों की दोगुनी शिकायतें मिली हैं। महिलाओं के खिलाफ अपराधों के मामले में उत्तर प्रदेश के बाद दिल्ली दूसरे नंबर पर है।

- पब्लिक ट्रांसपोर्ट की गाड़ियों में जीपीएस तो लगने लगे, उनके जरिये गाड़ियों की मॉनिटरिंग का कोई ठोस तंत्र अब तक नहीं बन पाया है। ऑटो वालों की मनमानी कायम है। राष्ट्रीय वाहन सुरक्षा तथा ट्रैकिंग प्रणाली।
- एकीकृत कंप्यूटर एडेड डिस्पैच प्लेटफार्म की स्थापना को मंजूरी।

मरणोपरांत सम्मान

- रानी लक्ष्मीबाई पुरस्कार (2012) भारत के राष्ट्रपति के द्वारा।
- राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय महिला आयोग के लिए नए भवन ''निर्भया भवन'' की आधारशिला रखी।
- इंटरनेशनल वुमन ऑफ करेज अवार्ड, 2013- अमेरिका द्वारा।

जन आंदोलन के सबक

जन आंदोलनों का इतिहास हमें लोकतांत्रिक राजनीति को बेहतर ढंग से समझने में मदद देता है। इन आंदोलनों का उद्देश्य दलीय राजनीति की खामियों को दूर करना था। इस रूप में, इन आंदोलनों को देश की लोकतांत्रिक राजनीति के अहम हिस्से के तौर पर देखा जाना चाहिए। सामाजिक आंदोलनों ने समाज के उन नए वर्गों की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को अभिव्यक्ति दी जो अपनी दिक्कतों को चुनावी राजनीति के जरिए हल नहीं कर पा रहे थे। विभिन्न सामाजिक समूहों के लिए ये आंदोलन अपनी बात रखने का बेहतर माध्यम बनकर उभरे। समाज के गहरे तनावों और जनता के क्षोभ को एक सार्थक दिशा देकर इन आंदोलनों ने एक तरह से लोकतंत्र की रक्षा की है। सक्रिय भागीदारी के नए रूपों के प्रयोग ने भारतीय लोकतंत्र के जनाधार को बढ़ाया है।

इन आंदोलनों के आलोचक अक्सर यह दलील देते हैं कि हड़ताल, धरना और रैली जैसी सामूहिक कार्यवाहियों से सरकार के कामकाज पर बुरा असर पड़ता है। उनके अनुसार इस तरह की गतिविधियों से सरकार की निर्णय-प्रक्रिया बाधित होती है तथा रोजमर्रा की लोकतांत्रिक व्यवस्था भंग होती है। इस तरह की दलीलें एक और गहरे सवाल को जन्म देती हैं और वह सवाल यह है कि जन आंदोलन ऐसी मुखर सामूहिक गतिविधियों का सहारा क्यों लेते हैं? ये जन आंदोलन जनता की जायज मांगों के नुमाइंदा बनकर उभरे हैं और उन्होंने नागरिकों के एक बड़े समूह को अपने साथ जोड़ने में कामयाबी हासिल की है।

यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि इन जन आंदोलनों द्वारा लामबंद की जाने वाली जनता सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित तथा अधिकारहीन वर्गों से संबंध रखती है। जन आंदोलनों द्वारा अपनाए गए तौर-तरीकों से जाहिर होता है कि रोजमर्रा की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में इन वंचित समूहों को अपनी बात कहने का पर्याप्त मौका नहीं मिला था।

इसी कारण ये समूह चुनावी शासन-भूमि से अलग जन-कार्यवाही और लामबंदी की रणनीति अपनाते हैं। हाशिए पर मौजूद जिन सामाजिक समूहों पर आर्थिक नीतियों का दुष्प्रभाव पड़ सकता है उन पर ये राजनीतिक दल खास ध्यान नहीं देंगे और न ही मुख्यधारा की मीडिया उन पर ध्यान देगी। ऐसे में नयी आर्थिक नीतियों का विरोध करना हो तो जन-कार्यवाही का ही रास्ता बचता है। जन आंदोलन यही काम करते हैं। वे राजनीतिक दलों के चालू मुहावरे से अलग अपने मुद्दे उठाते हैं।

जन आंदोलन का प्रभाव

आंदोलन का मतलब सिर्फ धरना-प्रदर्शन या सामूहिक कार्यवाही नहीं होता। इसके अंतर्गत किसी समस्या से पीड़ित लोगों का धीरे-धीरे एकजुट होना और समान अपेक्षाओं के साथ एक-सी मांग उठाना जरूरी है। इसके अतिरिक्त, आंदोलन का

PARAMOUNT Mission IAS
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

एक काम लोगों को अपने अधिकारों को लेकर जागरूक बनाना भी है। ताकि लोग यह समझें कि लोकतंत्र की संस्थाओं से वे क्या-क्या उम्मीद कर सकते हैं। भारत के सामाजिक आंदोलन बहुत दिनों से जनता को जागरूक बनाने के इस काम में संलग्न हैं। ऐसे में इन आंदोलनों ने लोकतंत्र को बाधा नहीं पहुंचायी बल्कि उसका विस्तार किया है।

किन्तु कुल मिलाकर सार्वजनिक नीतियों पर इन आंदोलनों का असर काफी सीमित रहा है। इसका एक कारण तो यह है कि समकालीन सामाजिक आंदोलन किसी एक मुद्दे के इर्द-गिर्द ही जनता को लामबंद करते हैं। इस तरह वे समाज के किसी एक वर्ग का ही प्रतिनिधित्व कर पाते हैं। इसी सीमा के चलते सरकार इन आंदोलनों की जायज मांगों को ठुकराने का साहस कर पाती है। लोकतांत्रिक राजनीति वंचित वर्गों के व्यापक गठबंधन को लेकर ही चलती है जबकि जन आंदोलनों के नेतृत्व में यह बात संभव नहीं हो पाती। राजनीतिक दलों को जनता के विभिन्न वर्गों के बीच सामंजस्य बैठाना पड़ता है, जबकि जन आंदोलनों का नेतृत्व इस वर्गीय हित के प्रश्न को कायदे से नहीं संभाल पाता। जान पड़ता है कि राजनीतिक दलों ने समाज के वंचित और अधिकारहीन लोगों के मुद्दों पर ध्यान देना छोड़ दिया है। पर जन आंदोलन का नेतृत्व भी ऐसे मुद्दों को सीमित ढंग से ही उठा पाता है। विगत वर्षों में राजनीतिक दलों और जन आंदोलनों का आपसी संबंध कमजोर होता गया है। इससे राजनीति में एक सूनेपन का माहौल पनपा है। हाल के वर्षों में, भारत की राजनीति में यह एक बड़ी समस्या के रूप में उभरा है।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

1. चिपको आंदोलन के उद्‌भव के कारकों पर चर्चा करें। समाज पर इसके क्या प्रभाव पड़े? विश्लेषण करें।

(200 शब्द)

2. 'नर्मदा बचाव आंदोलन' की शुरूआत क्यों हुई? इसके उद्देश्य और सरकार के द्वारा की गई कार्रवाई पर चर्चा करें।

(200 शब्द)

3. साइलेंट घाटी परियोजना की मुख्य विशेषताओं पर चर्चाकरें।

(200 शब्द)

4. अरक विरोधी आंदोलन की शुरूआत क्यों हुई? किस तरह से इसने आंध्र प्रदेश की महिलाओं की सहायता की। समझायें।

(200 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005

अध्याय

10

क्षेत्रीय आकांक्षाएं

परिचय

वर्ष 1980 के दशक को स्वायत्तता की मांग के दशक के रूप में भी देखा जा सकता है। इस दौर में देश के कई हिस्सों में स्वायत्तता की मांग उठी और इसने संवैधानिक हदों को भी पार किया। इन आंदोलनों में शामिल लोगों ने अपनी मांग के पक्ष में हथियार उठाए। सरकार ने उनको दबाने के लिए जवाबी कार्यवाही की और इस क्रम में राजनीतिक तथा चुनावी प्रक्रिया अवरुद्ध हुई। आश्चर्य नहीं कि स्वायत्तता की मांग को लेकर चले अधिकतर संघर्ष लंबे समय तक जारी रहे और इन संघर्षों पर विराम लगाने के लिए केन्द्र सरकार को सुलह की बातचीत का रास्ता अख्तियार करना पड़ा अथवा स्वायत्तता के आंदोलन की अगुवाई कर रहे समूहों से समझौते करने पड़े। बातचीत की एक लंबी प्रक्रिया के बाद ही दोनों पक्षों के बीच समझौता हो सका। बातचीत का लक्ष्य यह रखा गया कि विवाद के मुद्दों को संविधान के दायरे में रहकर निपटा लिया जाए। बहरहाल, समझौते तक पहुंचने की यह यात्रा बड़ी दुर्गम रही और इसमें जब-तक हिंसा के स्वर उभरे।

क्षेत्र और राष्ट्र

भारत सरकार का नजरिया: राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया और भारत के संविधान के बारे में बढ़ते हुए विविधता के एक बुनियादी सिद्धांत की चर्चा हमारी नजरों से बार-बार गुजरी है: भारत में विभिन्न क्षेत्र और भाषायी समूहों को अपनी संस्कृति बनाए रखने का अधिकार होगा। हमने एकता की भावधारा से बंधे एक ऐसे सामाजिक जीवन के निर्माण का निर्णय लिया था, जिसमें इस समाज को आकार देने वाली तमाम संस्कृतियों की विशिष्टता बनी रहे। भारतीय राष्ट्रवाद ने एकता और विविधता के बीच संतुलन साधने की कोशिश की है। राष्ट्र का मतलब यह नहीं है कि क्षेत्र को नकार दिया जाए। इस अर्थ में भारत का नजरिया यूरोप के कई देशों से अलग रहा, जहां सांस्कृतिक विभिन्नता को राष्ट्र की एकता के लिए खतरे के रूप में देखा गया।

भारत ने विविधता के सवाल पर लोकतांत्रिक दृष्टिकोण अपनाया। लोकतंत्र में क्षेत्रीय आकांक्षाओं की राजनीतिक अभिव्यक्ति की अनुमति है और लोकतंत्र क्षेत्रीयता को राष्ट्र-विरोधी नहीं मानता। इसके अतिरिक्त लोकतांत्रिक राजनीति में इस बात के पूरे अवसर होते हैं कि विभिन्न दल और समूह क्षेत्रीय पहचान, आकांक्षा अथवा किसी खास क्षेत्रीय समस्या को आधार बनाकर लोगों की भावनाओं की नुमाइंदगी करें। इस तरह लोकतांत्रिक राजनीति की प्रक्रिया में क्षेत्रीय आकांक्षाएं और बलवती होती हैं। साथ ही लोकतांत्रिक राजनीति का एक अर्थ यह भी है कि क्षेत्रीय मुद्दों और समस्याओं पर नीति-निर्माण की प्रक्रिया में समुचित ध्यान दिया जाएगा और उन्हें इसमें भागीदारी दी जाएगी।

ऐसी व्यवस्था में कभी-कभी तनाव या परेशानियां खड़ी हो सकती हैं। कभी ऐसा भी हो सकता है कि राष्ट्रीय एकता के सरोकार क्षेत्रीय आकांक्षाओं और जरूरतों पर भारी पड़ें। कभी ऐसा भी हो सकता है कि कोई क्षेत्रीय सरोकारों के कारण राष्ट्र की वृहत्तर आवश्यकताओं से आंखें मूंद लें। जो राष्ट्र चाहते हैं कि विविधताओं का सम्मान हो साथ ही राष्ट्र की एकता भी बनी रहे, वहां क्षेत्रों की ताकत, उनके अधिकार और अलग अस्तित्व के मामले पर राजनीतिक संघर्ष का होना एक आम बात है।

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ■ ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

तनाव के दायरे

आजादी के तुरंत बाद हमारे देश को विभाजन, विस्थापन, देसी रियासतों के विलय और राज्यों के पुनर्गठन जैसे कठिन मसलों से जूझना पड़ा। देश और विदेश के अनेक पर्यवेक्षकों को अनुमान था कि भारतीय एकीकृत राष्ट्र के रूप में ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाएगा। आजादी के तुरंत बाद जम्मू-कश्मीर का मसला सामने आया। यह सिर्फ भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष का मामला नहीं था। कश्मीर घाटी के लोगों की राजनीतिक आकांक्षाओं का सवाल भी इससे जुड़ा हुआ था। ठीक इसी तरह पूर्वोत्तर के कुछ भागों में भारत का अंग होने के मसले पर सहमति नहीं थी। पहले नागालैण्ड में और फिर मिजोरम में भारत से अलग होने की मांग करते हुए जोरदार आंदोलन चले। दक्षिण भारत में भी द्रविड़ आंदोलन से जुड़े कुछ समूहों ने एक समय अलग राष्ट्र की बात उठायी थी।

अलगाव के इन आंदोलनों के अतिरिक्त देश में भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की मांग करते हुए जन आंदोलन चले। मौजूदा आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात ऐसे ही आंदोलनों वाले राज्य हैं। दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों- खासकर तमिलनाडु में हिंदी को राजभाषा बनाने के खिलाफ विरोध-आंदोलन चला। वर्ष 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध से पंजाबी-भाषी लोगों ने अपने लिए एक अलग राज्य बनाने की आवाज उठानी शुरु कर दी। उनकी मांग आखिरकार मान ली गई और वर्ष 1966 में पंजाब और हरियाणा नाम से राज्य बनाए गए। बाद में छत्तीसगढ़, झारखण्ड और उत्तरांचल (अब उत्तराखण्ड) का गठन हुआ। कहा जा सकता है कि विविधता की चुनौती से निपटने के लिए देश की अंदरूनी सीमा रेखाओं का पुनर्निर्धारण किया गया।

बहरहाल, इन प्रयासों का मतलब यह नहीं था कि हर परेशानी का हमेशा के लिए हल निकल आया। कश्मीर और नागालैण्ड जैसे कुछ क्षेत्रों में चुनौतियां इतनी विकट और जटिल थीं कि राष्ट्र-निर्माण के पहले दौर में इनका समाधान नहीं किया जा सका। इसके अतिरिक्त पंजाब, असम और मिजोरम में नई चुनौतियां उभरीं। हम इन मामलों पर तनिक विस्तार से बात करें और इसके साथ-साथ राष्ट्र-निर्माण के क्रम में पेश आई कुछ पुरानी कठिनाइयों और उनके उदाहरणों को याद करने की कोशिश करें। ऐसे मामलों में मिली सफलता की विफलता सिर्फ अतीत के अध्ययन के लिए एक जरूरी प्रस्थान-बिंदु नहीं बल्कि भारत के भविष्य को समझने के लिए भी एक जरूरी सबक है।

जम्मू एवं कश्मीर

जम्मू एवं कश्मीर में जारी हिंसा के परिणामस्वरूप अनेक लोगों की जान गई और कई परिवारों का विस्थापन हुआ। 'कश्मीर मुद्दा' भारत और पाकिस्तान के बीच एक बड़ा मुद्दा रहा है। लेकिन इस राज्य की राजनीतिक स्थिति के बहुत से आयाम हैं।

जम्मू एवं कश्मीर में तीन राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र शामिल हैं- जम्मू, कश्मीर और लद्दाख। कश्मीर घाटी को कश्मीर के दिल के रूप में देखा जाता है। कश्मीरी बोली बोलने वाले ज्यादातर लोग मुस्लिम हैं। बहरहाल, कश्मीरी-भाषी लोगों में अल्पसंख्यक हिंदू भी शामिल हैं। जम्मू क्षेत्र पहाड़ी तलहटी एवं मैदानी इलाके का मिश्रण है जहां हिंदू, मुस्लिम और सिख यानी कई धर्म और भाषाओं के लोग रहते हैं। लद्दाख पर्वतीय इलाका है, जहां बौद्ध एवं मुस्लिमों की आबादी है, लेकिन यह आबादी बहुत कम है।

'कश्मीर मुद्दा' भारत और पाकिस्तान के बीच सिर्फ विवाद भर नहीं है। इस मुद्दे के कुछ बाहरी तो कुछ भीतरी पहलू हैं। इसमें कश्मीरी पहचान का सवाल जिसे कश्मीरियत के रूप में जाना जाता है, शामिल है। इसके साथ ही साथ जम्मू-कश्मीर की राजनीतिक स्वायत्तता का मसला भी इसी से जुड़ा हुआ है।

समस्या की जड़ें

वर्ष 1947 से पहले जम्मू एवं कश्मीर में राजशाही थी। इसके हिंदू शासक हरि सिंह भारत में शामिल होना नहीं चाहते थे और उन्होंने अपने स्वतंत्र राज्य के लिए भारत और पाकिस्तान के साथ समझौता करने की कोशिश की। पाकिस्तानी नेता सोचते थे कि कश्मीर, पाकिस्तान से संबद्ध है, क्योंकि राज्य की ज्यादातर आबादी मुस्लिम है। बहरहाल यहां के लोग स्थिति को अलग नजरिए से देखते थे। वे अपने को कश्मीरी सबसे पहले, कुछ और बाद में मानते थे। राज्य में नेशनल कांफ्रेंस के शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में जन आंदोलन चला। शेख अब्दुल्ला चाहते थे कि महाराजा पद छोड़ें, लेकिन वे पाकिस्तान में शामिल होने के खिलाफ थे। नेशनल कांफ्रेंस एक धर्मनिरपेक्ष संगठन था और इसका कांग्रेस के साथ काफी समय तक गठबंधन रहा। राष्ट्रीय राजनीति के कई प्रमुख नेता शेख अब्दुला के मित्र थे। इनमें नेहरु भी शामिल हैं।

अक्टूबर 1947 में पाकिस्तान ने कबायली घुसपैठियों को अपनी तरफ से कश्मीर पर कब्जा करने भेजा। ऐसे में कश्मीर के

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

महाराजा भारतीय सेना से मदद मांगने को मजबूर हुए। भारत ने सैन्य मदद उपलब्ध कराई और कश्मीर घाटी से घुसपैठियों को खदेड़ा। इससे पहले भारत सरकार ने महाराजा से भारत संघ में विलय के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करा लिए। इस पर भी सहमति जताई गई कि स्थिति सामान्य होने पर जम्मू-कश्मीर की नियति का फैसला जनमत सर्वेक्षण के द्वारा होगा। मार्च 1948 में शेख अब्दुल्ला जम्मू-कश्मीर राज्य के प्रधानमंत्री बने (राज्य में सरकार के मुखिया को तब प्रधानमंत्री कहा जाता था)। भारत, जम्मू एवं कश्मीर की स्वायत्तता को बनाए रखने पर सहमत हो गया। इसे संविधान में धारा 370 का प्रावधान करके संवैधानिक दर्जा दिया गया।

बाहरी और आंतरिक विवाद

उस समय से जम्मू एवं कश्मीर की राजनीति हमेशा विवादग्रस्त एवं संघर्षयुक्त रही। इसके बाहरी एवं आंतरिक दोनों कारण हैं। कश्मीर समस्या का एक कारण पाकिस्तान का रवैया है। उसने हमेशा यह दावा किया है कि कश्मीर घाटी पाकिस्तान का हिस्सा होना चाहिए। वर्ष 1947 में इस राज्य में पाकिस्तान ने कबायली हमला करवाया था। इसके परिणामस्वरूप राज्य का एक हिस्सा पाकिस्तानी नियंत्रण में आ गया। भारत ने दावा किया कि यह क्षेत्र का अवैध अधिग्रहण है। पाकिस्तान ने इस क्षेत्र को 'आजाद कश्मीर' कहा। वर्ष 1947 के बाद कश्मीर भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष का एक बड़ा मुद्दा रहा है।

आंतरिक रूप से देखें तो भारतीय संघ में कश्मीर की हैसियत को लेकर विवाद रहा है। कश्मीर को संविधान में धारा 370 के तहत विशेष दर्जा दिया गया है। धारा 370 के तहत जम्मू एवं कश्मीर को भारत के अन्य राज्यों के मुकाबले ज्यादा स्वायत्तता दी गई है। राज्य का अपना संविधान है। भारतीय संविधान की सारी व्यवस्थाएं इस राज्य में लागू नहीं होती। संसद द्वारा पारित कानून राज्य में उसकी सहमति के बाद ही लागू हो सकते हैं।

इस विशेष स्थिति से दो विरोधी प्रतिक्रियाएं सामने आई। लोगों का एक समूह मानता है कि इस राज्य को धारा 370 के तहत विशेष दर्जा देने से यह भारत के साथ पूरी तरह नहीं जुड़ पाया है। यह समूह मानता है कि धारा 370 को समाप्त कर देना चाहिए और जम्मू-कश्मीर को अन्य राज्यों की तरह ही होना चाहिए।

दूसरा वर्ग (इसमें ज्यादातर कश्मीरी हैं) विश्वास करता है कि इतनी भर स्वायत्तता पर्याप्त नहीं है। कश्मीरियों के एक वर्ग ने तीन प्रमुख शिकायतें उठायी हैं। पहली यह कि भारत सरकार ने वायदा किया था कि कबायली घुसपैठियों से निपटने के बाद जब स्थिति सामान्य हो जाएगी तो भारत संघ में विलय के मुद्दे पर जनमत-संग्रह कराया जाएगा। इसे पूरा नहीं किया गया। दूसरी, धारा 370 के तहत दिया गया विशेष दर्जा पूरी तरह से अमल में नहीं लाया गया। इससे स्वायत्तता की बहाली अथवा राज्य को ज्यादा स्वायत्तता देने की मांग उठी। तीसरी शिकायत यह की जाती है कि भारत के बाकी हिस्सों में जिस तरह लोकतंत्र पर अमल होता है उस तरह का संस्थागत लोकतांत्रिक बरताव जम्मू-कश्मीर में नहीं होता।

राजनीतिः वर्ष 1948 के बाद से

प्रधानमंत्री का पद संभालने के बाद शेख अब्दुल्ला ने भूमि-सुधार की बड़ी मुहिम चलायी। उन्होंने इसके साथ-साथ जन-कल्याण की कुछ नीतियां भी लागू कीं। इन सबसे यहां की जनता को फायदा हुआ। बहरहाल, कश्मीर की हैसियत को लेकर शेख अब्दुल्ला के विचार केन्द्र सरकार से मेल नहीं खाते थे। इससे दोनों के बीच मतभेद पैदा हुए। वर्ष 1953 में शेख अब्दुल्ला को बर्खास्त कर दिया गया। कई सालों तक उन्हें नजरबंद रखा गया। शेख अब्दुल्ला के बाद जो नेता सत्तासीन हुए वे शेख की तरह लोकप्रिय नहीं थे। केन्द्र के समर्थन के दम पर ही वे राज्य में शासन चला सके। राज्य में हुए विभिन्न चुनावों में धांधली और गड़बड़ी के गंभीर आरोप लगे।

वर्ष 1989 तक यह राज्य उग्रवादी आंदोलन की गिरफ्त में आ चुका था। इस आंदोलन में लोगों को अलग कश्मीर राष्ट्र के नाम पर लामबंद किया जा रहा था। उग्रवादियों को पाकिस्तान ने नैतिक, भौतिक और सैन्य सहायता दी। कई सालों तक इस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू रहा। राज्य पर सेना को नियंत्रण रखना पड़ा। वर्ष 1990 से बाहर के समय में इस राज्य के लोगों को उग्रवादियों और सेना की हिंसा भुगतनी पड़ी। वर्ष 1996 में एक बार फिर इस राज्य में विधानसभा के चुनाव हुए। फारुख अब्दुल्ला के नेतृत्व में नेशनल कांफ्रेंस की सरकार बनी और उसने जम्मू-कश्मीर के लिए क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग की। जम्मू-कश्मीर में वर्ष 2002 के चुनाव बड़े निष्पक्ष ढंग से हुए। नेशनल कांफ्रेंस को बहुमत नहीं मिल पाया। इस चुनाव में पीपुल्स डेमोक्रेटिक अलायंस (पी.डी.पी.) और कांग्रेस की गठबंधन सरकार सत्ता में आई।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

राजनीति पर कांग्रेस का प्रभाव

वर्ष 1953 से लेकर वर्ष 1974 के बीच अधिकांश समय इस राज्य की राजनीति पर कांग्रेस का असर रहा। कमजोर हो चुकी नेशनल कांफ्रेंस (शेख अब्दुल्ला के बिना) कांग्रेस के समर्थन से राज्य में कुछ समय तक सत्तासीन रही लेकिन बाद में वह कांग्रेस में मिल गई। इस तरह राज्य की सत्ता सीधे कांग्रेस के नियंत्रण में आ गई। इस बीच शेख अब्दुल्ला और भारत सरकार के बीच सुलह की कोशिश जारी रही। आखिरकार वर्ष 1974 में इंदिरा गांधी के साथ शेख अब्दुल्ला ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए और वे राज्य के मुख्यमंत्री बने। उन्होंने नेशनल कांफ्रेंस को फिर से खड़ा किया और वर्ष 1977 के राज्य विधानसभा के चुनाव में बहुमत से निर्वाचित हुए। वर्ष 1982 में शेख अब्दुल्ला की मृत्यु हो गई और नेशनल कांफ्रेंस के नेतृत्व की कमान उनके पुत्र फारुख अब्दुल्ला ने संभाली। फारुख अब्दुल्ला भी मुख्यमंत्री बने। बहरहाल, राज्यपाल ने जल्दी ही उन्हें बर्खास्त कर दिया और नेशनल कांफ्रेंस से एक टूटे हुए गुट ने थोड़े समय के लिए राज्य की सत्ता संभाली।

केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप से फारुख अब्दुल्ला की सरकार को बर्खास्त किया गया था। इससे कश्मीर में नाराजगी के भाव पैदा हुए। शेख अब्दुल्ला और इंदिरा गांधी के बीच हुए समझौते से राज्य के लोगों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर विश्वास जमा था। फारुख अब्दुल्ला की सरकार को बर्खास्तगी से इस विश्वास को धक्का लगा। वर्ष 1986 में नेशनल कांफ्रेंस ने केन्द्र में सत्तासीन कांग्रेस पार्टी के साथ चुनावी गठबंधन किया। इससे भी लोगों को लगा कि केन्द्र राज्य की राजनीति में हस्तक्षेप कर रहा है।

विद्रोही तेवर का प्रभाव

इसी माहौल में वर्ष 1987 के विधानसभा चुनाव हुए। आधिकारिक नतीजे बता रहे थे कि नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस के गठबंधन को भारी जीत मिली है। फारुख अब्दुल्ला मुख्यमंत्री बने। बहरहाल, लोग-बागी यह मान रहे थे कि चुनाव में धांधली हुई है और चुनाव परिणाम जनता की पसंद की नुमाइंदगी नहीं कर रहे। 1980 के दशक से ही यहां के लोगों में प्रशासनिक अक्षमता को लेकर रोष पनप रहा था।

लोगों के मन का गुस्सा यह सोचकर और भड़का कि केन्द्र के इशारे पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया के साथ हेरा-फेरी की जा रही है। इन सब बातों से कश्मीर में राजनीतिक संकट उठ खड़ा हुआ। इस संकट ने राज्य में जारी उग्रवाद के बीच गंभीर रूप धारण किया।

अलगाववाद और उसके बाद

वर्ष 1989 से जम्मू-कश्मीर में अलगाववादी राजनीति ने सर उठाया था। इसने कई रूप लिए और इस राजनीति की कई धाराएं हैं। अलगाववादियों का एक तबका कश्मीर को अलग राष्ट्र बनाना चाहता है यानी एक ऐसा कश्मीर जो न पाकिस्तान का हिस्सा हो और न भारत। कुछ अलगाववादी समूह चाहते हैं कि कश्मीर का विलय पाकिस्तान में हो जाए। अलगाववादी राजनीति की एक तीसरी धारा थी। इस धारा के समर्थक चाहते हैं कि कश्मीर भारत संघ का ही हिस्सा रहे लेकिन उसे और स्वायत्तता की बात जम्मू और लद्दाख के लोगों को अलग-अलग ढंग से लुभाती है। इस क्षेत्र के लोगों की एक आम शिकायत उपेक्षा भरे बरताव और पिछड़ेपन को लेकर है। इस वजह से पूरे राज्य की स्वायत्तता की मांग जितनी प्रबल है उतनी ही प्रबल मांग इस राज्य के विभिन्न भागों में अपनी-अपनी स्वायत्तता को लेकर है।

शुरुआती सालों में उग्रवाद को लोगों का कुछ समर्थन हासिल था लेकिन अब यहां के लोग शांति की कामना कर रहे हैं। केन्द्र ने विभिन्न अलगाववादी समूहों से बातचीत शुरू कर दी है। अलग राष्ट्र की मांग की जगह अब अलगाववादी समूह अपनी बातचीत में भारत संघ के साथ कश्मीर के रिश्ते को पुनर्परिभाषित करने पर जोर दे रहे हैं। जम्मू-कश्मीर बहुलवादी समाज और राजनीति का एक जीवन्त उदाहरण है। यहां धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषायी, जातीय और जनजातीय यानी हर तरह की विभिन्नताएं हैं। साथ ही, राजनीतिक आकांक्षाएं भी एक-सी नहीं हैं। एक तरफ इस राज्य में विभिन्नताएं और इसी के अनुकूल अलग-अलग राजनीतिक आकांक्षाएं हैं तो दूसरी तरफ संघर्ष और तनाव की स्थितियां भी बदस्तूर कायम हैं। लेकिन, इन सबके बीच राज्य की बहुलतावादी धर्मनिरपेक्ष संस्कृति अधिकांशतया अक्षुण्ण बनी हुई है।

पंजाब में बदलाव का युग

वर्ष 1980 के दशक में पंजाब में भी बड़े बदलाव आए। इस प्रांत की सामाजिक बनावट विभाजन के समय पहली बार बदली थी। बाद में इसके कुछ हिस्सों से हरियाणा और हिमाचल प्रदेश नामक राज्य बनाए गए। इससे भी पंजाब की सामाजिक

संरचना बदली। हालांकि वर्ष 1950 के दशक में देश के शेष हिस्से को भाषायी आधार पर पुनर्गठित किया गया था लेकिन पंजाब को वर्ष 1966 तक इंतजार करना पड़ा। इस साल पंजाबी-भाषी प्रांत का निर्माण हुआ। सिखों की राजनीतिक शाखा के रूप में वर्ष 1920 के दशक में अकाली दल का गठन हुआ था। अकाली दल ने 'पंजाबी सूबा' के गठन का आंदोलन चलाया। पंजाबी-भाषी सूबे में सिख बहुसंख्यक हो गए।

राजनीतिक संदर्भ

पंजाब सूबे के पुनर्गठन के बाद अकाली दल ने यहां वर्ष 1967 और इसके बाद वर्ष 1977 में सरकार बनायी। दोनों ही मौके पर गठबंधन सरकार बनी। अकालियों के आगे यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि सूबे के नए सीमांकन के बावजूद उनकी राजनीतिक स्थिति डावांडोल है। पहली बात तो यही कि उनकी सरकार को केन्द्र ने कार्यकाल पूरा करने से पहले बर्खास्त कर दिया था। दूसरे, अकाली दल को पंजाब के हिन्दुओं के बीच कुछ खास समर्थन हासिल नहीं था। तीसरे, सिख समुदाय भी दूसरे धार्मिक समुदायों की तरह जाति और वर्ग के धरातल पर बंटा हुआ था। कांग्रेस को दलितों के बीच चाहे वे सिख हों या हिन्दू-अकालियों से कहीं ज्यादा समर्थन प्राप्त था।

इन्हीं परिस्थितियों के मद्देनजर वर्ष 1970 के दशक में अकालियों के एक तबके ने पंजाब के लिए स्वायत्तता की मांग उठायी। वर्ष 1973 में, आनंदपुर साहिब में हुए एक सम्मेलन में इस आशय का प्रस्ताव पारित हुआ। आनंदपुर साहिब प्रस्ताव में क्षेत्रीय स्वायत्तता की बात उठायी गई थी। प्रस्ताव की मांगों में केन्द्र-राज्य संबंधों को पुनर्परिभाषित करने की बात भी शामिल थी। इस प्रस्ताव में सिख 'कौम' (नेशन या समुदाय) की आकांक्षाओं पर जोर देते हुए सिखों के 'बोलबाला' (प्रभुत्व या वर्चस्व) का ऐलान किया गया। यह प्रस्ताव संघवाद को मजबूत करने की अपील करता है। लेकिन इसे एक अलग सिख राष्ट्र की मांग के रूप में भी पढ़ा जा सकता है।

आनंदपुर साहिब प्रस्ताव का सिख जन-समुदाय पर बड़ा कम असर पड़ा। कुछ साल बाद जब वर्ष 1980 में अकाली दल की सरकार बर्खास्त हो गई तो अकाली दल ने पंजाब तथा पड़ोसी राज्यों के बीच पानी के बंटवारे के मुद्दे पर एक आंदोलन चलाया। धार्मिक नेताओं के एक तबके ने स्वायत्त सिख पहचान की बात उठायी। कुछ चरमपंथी तबकों ने भारत से अलग होकर 'खालिस्तान' बनाने की वकालत की।

हिंसा का चक्र (ऑपरेशन ब्लू स्टार)

जल्दी ही आंदोलन का नेतृत्व नरमपंथी अकालियों के हाथ से निकलकर चरमपंथी तत्वों के हाथ में चला गया और आंदोलन ने सशस्त्र विद्रोह का रूप ले लिया। उग्रवादियों ने अमृतसर स्थित सिखों के तीर्थ स्वर्णमंदिर में अपना मुख्यालय बनाया और स्वर्णमंदिर एक हथियारबंद किले में तब्दील हो गया। वर्ष 1984 के जून माह में भारत सरकार ने **'ऑपरेशन ब्लू स्टार'** चलाया। यह स्वर्णमंदिर में की गई सैन्य कार्यवाही का कूट नाम था। इस सैन्य-अभियान में सरकार ने उग्रवादियों को तो सफलतापूर्वक मार भगाया लेकिन सैन्य कार्यवाही से ऐतिहासिक स्वर्णमंदिर को क्षति भी पहुंची। इससे सिखों की भावनाओं को गहरी चोट लगी। भारत और भारत से बाहर बसे अधिकतर सिखों ने सैन्य-अभियान को अपने धर्म-विश्वास पर हमला माना। इन बातों से उग्रवादी और चरमपंथी समूहों को और बल मिला। कुछ और त्रासद घटनाओं ने पंजाब की समस्या को एक जटिल रास्ते पर ला खड़ा किया। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की 31 अक्टूबर, 1984 के दिन उनके आवास के बाहर उन्हीं के अंगरक्षकों ने हत्या कर दी। ये अंगरक्षक सिख थे और ऑपरेशन ब्लू स्टार का बदला लेना चाहते थे। एक तरफ पूरा देश इस घटना से शोक-संतप्त था तो दूसरी तरफ दिल्ली सहित उत्तर भारत के कई हिस्सों में सिख समुदाय के विरुद्ध हिंसा भड़क उठी। यह हिंसा कई हफ्तों तक जारी रही। दो हजार से ज्यादा की तादाद में सिख, दिल्ली में मारे गए।

राजीव गांधी वर्ष, 1984

शांति की ओर वर्ष 1984 के चुनावों के बाद सत्ता में आने पर नए प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने नरमपंथी अकाली नेताओं से बातचीत की शुरुआती की। अकाली दल के तत्कालीन अध्यक्ष हरचंद सिंह लोंगोवाल के साथ वर्ष 1985 के जुलाई में एक समझौता हुआ।

इस समझौते को राजीव गांधी लोंगोवाल समझौता अथवा पंजाब समझौता कहा जाता है। समझौता पंजाब में अमन कायम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। इस बात पर सहमति हुई कि चण्डीगढ़ पंजाब को दे दिया जाएगा और पंजाब तथा हरियाणा के बीच सीमा-विवाद को सुलझाने के लिए एक अलग आयोग की नियुक्ति होगी। समझौते में यह भी तय हुआ कि पंजाब-हरियाणा-राजस्थान के बीच **रावी-व्यास के पानी** के बंटवारे के बारे में फैसला करने के लिए एक ट्रिब्यूनल

HEAD OFFICE: 872, GROUND FLOOR (OPPOSITE BATRA CINEMA), DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
FOR ENQUIRY CONTACT US: 7900000111,7900000222,7900000333
www.paramountias.in ias@paramountcoaching.in
PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

(न्यायाधिकरण) बैठाया जाएगा। समझौते के अंतर्गत सरकार पंजाब में उग्रवाद से प्रभावित लोगों को मुआवजा देने और उनके साथ बेहतर सलूक करने पर राजी हुई। साथ ही, पंजाब से विशेष सुरक्षा बल अधिनियम को वापस लेने की बात पर भी सहमति हुई।

- बहरहाल, पंजाब में न तो अमन आसानी से कायम हुआ और न ही समझौते के तत्काल बाद। हिंसा का चक्र लगभग एक दशक तक चलता रहा। उग्रवादी हिंसा और इस हिंसा को दबाने के लिए की गई कार्यवाहियों में मानवाधिकार का व्यापक उल्लंघन हुआ। साथ ही, पुलिस की ओर से भी ज्यादती हुई।
- राजनीतिक रूप से देखें तो घटनाओं के इस चक्र में अकाली दल बिखर गया। केन्द्र सरकार को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा। इससे राज्य में सामान्य राजनीतिक तथा चुनावी प्रक्रिया बाधित हुई। संशय और हिंसा से भरे माहौल में राजनीतिक प्रक्रिया को फिर से पटरी पर लाना आसान नहीं था। वर्ष 1992 में पंजाब में चुनाव हुए तो महज 24 फीसदी मतदाता वोट डालने के लिए आए।

उग्रवाद का सफया

उग्रवाद को सुरक्षा बलों ने आखिरकार दबा दिया लेकिन पंजाब के लोगों ने, चाहे वे सिख हों या हिंदू, इस क्रम में अनगिनत दुख उठाए। वर्ष 1990 के दशक के मध्यवर्ती वर्षों में पंजाब में शांति बहाल हुई। वर्ष 1997 में अकाली दल (बादल) और भाजपा के गठबंधन को बड़ी विजय मिली।

उग्रवाद के खात्मे के बाद के दौर में यह पंजाब का पहला चुनाव था। राज्य में एक बार फिर आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के सवाल प्रमुख हो उठे। हालांकि धार्मिक पहचान यहां की जनता के लिए लगातार प्रमुख बनी हुई है लेकिन राजनीति अब धर्मनिरपेक्षता की राह पर चल पड़ी है।

पूर्वोत्तर प्रदेश

पूर्वोत्तर में क्षेत्रीय आकांक्षाएं वर्ष 1980 के दशक में एक निर्णायक मोड़ पर आ गई थीं। क्षेत्र में सात राज्य हैं और इन्हें **'सात बहनें'** कहा जाता है। इस क्षेत्र में देश की कुल 4 फीसदी आबादी निवास करती है। लेकिन भारत के कुल क्षेत्रफल में पूर्वोत्तर के हिस्से को देखते हुए यह आबादी दोगुनी कही जाएगी। 22 किलोमीटर लंबी एक पतली-सी राहदारी इस इलाके को शेष भारत से जोड़ती है अन्यथा इस क्षेत्र की सीमाएं चीन, म्यांमार और बांग्लादेश से लगती हैं और यह इलाका भारत के लिए एक तरह से दक्षिण-पूर्व एशिया का प्रवेश-द्वार है।

स्वतंत्रता पश्चात से बदलराव

इस इलाके में वर्ष 1947 के बाद से अनेक बदलाव आए हैं। त्रिपुरा, मणिपुर और मेघालय का खासी पहाड़ी क्षेत्र, पहले अलग-अलग रियासत थे। आजादी के बाद भारत संघ में इनका विलय हुआ। पूर्वोत्तर के पूरे इलाके का बड़े व्यापक स्तर पर राजनीतिक पुनर्गठन हुआ है।

- नागालैण्ड को वर्ष 1960 में राज्य बनाया गया। मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा वर्ष 1972 में राज्य बने जबकि अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम को वर्ष 1986 में राज्य का दर्जा दिया गया। 1947 के भारत-विभाजन से पूर्वोत्तर के इलाके भारत के शेष भागों से एकदम अलग-थलग पड़ गए और इसका अर्थव्यवस्था पर इससे दुष्प्रभाव पड़ा।
- भारत के शेष भागों से अलग-थलग पड़ जाने के कारण इस इलाके में विकास पर ध्यान नहीं दिया जा सका। यहां की राजनीति भी अपने ही दायरे में सीमित रही। इसके साथ-साथ पड़ोसी राज्यों और देशों से आने वाले शरणार्थियों के कारण इलाके की जनसंख्या की संरचना में बड़ा बदलाव आया।

सामाजिक संरचना

पूर्वोत्तर का अलग-थलग पड़ जाना, इस इलाके की जटिल सामाजिक संरचना और देश के अन्य हिस्सों के मुकाबले इस इलाके का आर्थिक रूप से पिछड़ा होना, जैसी कई बातों ने एक साथ मिलकर एक जटिल स्थिति पैदा की।

- ऐसे में पूर्वोत्तर के राज्यों से बड़ी बेतरतीब किस्म की मांगें उठीं। इस इलाके में भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा काफी बड़ी है लेकिन पूर्वोत्तर और भारत के शेष भागों के बीच संचार-व्यवस्था बड़ी लचर है। इससे भी पूर्वोत्तर को राजनीति का स्वभाव ज्यादा संवेदनशील रहा।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOR EVER ABOVE

राजनीतिक मुद्दे

पूर्वोत्तर के राज्यों में राजनीति पर तीन मुद्दे हावी हैं: स्वायत्तता की मांग, अलगाव के आंदोलन और 'बाहरी' लोगों का विरोध। इसमें पहले मुद्दे यानी स्वायत्तता की मांग पर वर्ष 1970 के दशक में कुछ शुरुआती पहल की गई थी। इससे शेष दो मुद्दों ने वर्ष 1980 के दशक में नाटकीय मोड़ लिया।

स्वायत्तता की मांग

आजादी के वक्त मणिपुर और त्रिपुरा को छोड़ दें तो यह पूरा इलाका असम कहलाता था। गैर-असमी लोगों को जब लगा कि असम की सरकार उन पर असमी भाषा थोप रही है तो इस इलाके से राजनीतिक स्वायत्तता की मांग उठी। पूरे राज्य में असमी भाषा को थोपने के खिलाफ विरोध प्रदर्शन और दंगे हुए। बड़े जनजाति समुदाय के नेता असम से अलग होना चाहते थे। इन लोगों ने 'ईस्टर्न इंडिया ट्राइबल यूनियन' का गठन किया जा रहा था। एवं वर्ष 1960 में ऑल पार्टी हिल्स कांग्रेस का गठन किया गया। इन नेताओं की मांग थी कि असम से अलग एक जनजातीय राज्य बनाया जाए। आखिरकार एक जनजातीय राज्य की जगह असम को काटकर कई जनजातीय राज्य बने। केन्द्र सरकार ने अलग-थलग वक्त पर असम को बांटकर मेघालय, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश बनाया। त्रिपुरा और मणिपुर को भी राज्य का दर्जा दिया गया।

- वर्ष 1972 तक पूर्वोत्तर का पुनर्गठन पूरा हो चुका था। लेकिन, स्वायत्तता की मांग खत्म न हुई। उदाहरण के लिए, असम के बोडो, करबी और दिमसा जैसे समुदायों ने अपने लिए अलग राज्य की मांग की। अपनी मांग के पक्ष में उन्होंने जनमत तैयार करने के प्रयास किए, जन आंदोलन चलाए और विद्रोही कार्यवाइयां भी कीं। कई दफा ऐसा भी हुआ कि एक ही इलाके पर एक से ज्यादा समुदायों ने अपनी दावेदारी जतायी। छोटे-छोटे और निरंतर लघुत्तर होते राज्य बनाते चले जाना संभव नहीं था।
- इस वजह से संघीय राजव्यवस्था के कुछ और प्रावधानों का उपयोग करके स्वायत्तता की मांग को संतुष्ट करने की कोशिश की गई और इन समुदायों को असम में ही रखा गया। करबी और दिमसा समुदायों को जिला-परिषद् के अंतर्गत स्वायत्तता दी गई जबकि बोडो जनजाति को हाल ही में स्वायत्त परिषद् का दर्जा दिया गया है।

नागालैण्ड में अलगावादी आंदोलन

नागालैण्ड की कहानी भी मिजोरम की तरह है लेकिन नागालैण्ड का अलगाववादी आंदोलन ज्यादा पुराना है और अभी इसका मिजोरम की तरह खुशगवार हल नहीं निकल पाया है। अंगमी जापू फिजो के नेतृत्व में नागा लोगों के एक तबके ने वर्ष 1951 में अपने को भारत से आजाद घोषित कर दिया था। फिजो ने बातचीत के कई प्रस्ताव ठुकराए। हिंसक विद्रोह के एक दौर के बाद नागा लोगों के एक तबके ने भारत सरकार के साथ एक समझौते पर दस्तखत किए लेकिन अन्य विद्रोहियों ने इस समझौते को नहीं माना। नागालैण्ड की समस्या का समाधान होना अब भी बाकी है।

अलगाववादी आंदोलन

स्वायत्तता की मांगों से निपटना आसान था क्योंकि संविधान में विभिन्नताओं का समाहार संघ में करने के लिए प्रावधान पहले से मौजूद थे। लेकिन जब कुछ समूहों ने अलग देश बनाने की मांग की और वह भी किसी क्षणिक आवेश में नहीं बल्कि सिद्धांतगत तैयारी के साथ, तो इस मांग से निपटना मुश्किल हो गया। देश के नेतृत्व को पूर्वोत्तर के दो राज्यों में अलगाववादी मांग की लंबे समय तक सामना करना पड़ा। इन दो मामलों की आपसी तुलना लोकतांत्रिक राजनीति के कुछ सबक सिखाती है।

- आजादी के बाद मिजो पर्वतीय क्षेत्र को असम के भीतर ही एक स्वायत्त जिला बना दिया गया था। कुछ मिजो लोगों का मानना था कि वे कभी भी **'ब्रिटिश इंडिया'** के अंग नहीं रहे इसलिए भारत संघ से उनका कोई नाता नहीं है। वर्ष 1959 में मिजो पर्वतीय इलाके में भारी अकाल पड़ा।
- असम की सरकार इस अकाल में समुचित प्रबंध करने में नाकाम रही। इसी के बाद अलगाववादी आंदोलन को जनसमर्थन मिलना शुरू हुआ। मिजो लोगों ने गुस्से में आकर लालडेंगा के नेतृत्व में मिजो नेशनल फ्रंट बनाया।
- वर्ष 1966 में मिजो नेशनल फ्रंट ने आजादी की मांग करते हुए सशस्त्र अभियान शुरू किया। इस तरह भारतीय सेना और मिजो विद्रोहियों के बीच दो दशक तक चली लड़ाई की शुरुआत हुई। मिजो नेशनल फ्रंट ने गुरिल्ला युद्ध किया। उसे पाकिस्तान की सरकार ने समर्थन दिया था और तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान में मिजो विद्रोहियों ने अपने ठिकाने बनाए।

PARAMOUNT IAS Mission
A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
EVER ABOVE 2007

- भारतीय सेना ने विद्रोही गतिविधियों को दबाने के लिए जवाबी कार्यवाही की। इसमें आम जनता को भी कष्ट उठाने पड़े। एक दफे तो वायुसेना तक का इस्तेमाल किया गया। सेना के इन कदमों से स्थानीय लोगों में क्रोध और अलगाव की भावना और तेज हुई।
- दो दशकों तक चले बगावत में हर पक्ष को हानि उठानी पड़ी। इसी बात को भांपकर दोनों पक्षों के नेतृत्व ने समझदारी से काम लिया। पाकिस्तान में निर्वासित जीवन जी रहे लालडेंगा भारत आए और उन्होंने भारत सरकार के साथ बातचीत शुरू की। राजीव गांधी ने इस बातचीत को एक सकारात्मक समाधान तक पहुंचाया। वर्ष 1986 में राजीव गांधी और लालडेंगा के बीच एक शांति समझौता हुआ। समझौते के अंतर्गत मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा मिला और उसे कुछ विशेष अधिकार दिए गए।
- मिजो नेशनल फ्रंट अलगाववादी संघर्ष की राह छोड़ने पर राजी हो गया। लालडेंगा मुख्यमंत्री बने। यह समझौता मिजोरम के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ। आज मिजोरम पूर्वोत्तर का सबसे शांतिपूर्ण राज्य है और उसने कला, साहित्य तथा विकास की दिशा में अच्छी प्रगति की है।

बाहरी लोगों के विरूद्ध आंदोलन

पूर्वोत्तर में बड़े पैमाने पर आप्रवासी आए हैं। इससे एक खास समस्या पैदा हुई है। स्थानीय जनता इन्हें 'बाहरी' समझती है और 'बाहरी' लोगों के खिलाफ उसके मन में गुस्सा है। भारत के दूसरे राज्यों अथवा किसी अन्य देश से आए लोगों को यहां की जनता रोजगार के अवसरों और राजनीतिक सत्ता के एतबार से एक प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखती है। स्थानीय लोग बाहर से आए लोगों के बारे में मानते हैं कि ये लोग यहां की जमीन हथिया रहे हैं। पूर्वोत्तर के कई राज्यों में इस मसले ने राजनीतिक रंग ले लिया है और कभी-कभी इन बातों के कारण हिंसक घटनाएं भी होती हैं।

- वर्ष 1979 से वर्ष 1985 तक चला असम आंदोलन बाहरी लोगों के खिलाफ चले आंदोलनों का सबसे अच्छा उदाहरण है। असमी लोगों को संदेह था कि बांग्लादेश से आकर बहुत-सी मुस्लिम आबादी असम में बसी हुई है। लोगों के मन में यह भावना घर कर गई थी कि इन विदेशी लोगों को पहचानकर उन्हें अपने देश नहीं भेजा गया तो स्थानीय असमी जनता अल्पसंख्यक हो जाएगी। कुछ आर्थिक मसले भी थे।
- असम में तेल, चाय और कोयले जैसे प्राकृतिक संसाधनों की मौजूदगी के बावजूद व्यापक गरीबी थी। यहां की जनता ने माना कि असम के प्राकृतिक संसाधन बाहर भेजे जा रहे हैं और असमी लोगों को कोई फायदा नहीं हो रहा है।
- वर्ष 1979 में ऑल असम स्टूडेंटस् यूनियन (आसू-AASU) ने विदेशियों के विरोध में एक आंदोलन चलाया। **'आसू'** एक छात्र-संगठन था और इसका जुड़ाव किसी भी राजनीतिक दल से नहीं था। 'आसू' का आंदोलन अवैध आप्रवासी, बंगाली और अन्य लोगों के दबदबे तथा मतदाता सूची में लाखों आप्रवासियों के नाम दर्ज कर लेने के खिलाफ था।
- आंदोलन की मांग थी कि वर्ष 1951 के बाद जितने भी लोग असम में आकर बसे हैं उन्हें असम से बाहर भेजा जाए। इस आंदोलन ने कई नए तरीकों को आजमाया और असमी जनता के हर तबके का समर्थन हासिल किया। इस आंदोलन को पूरे असम में समर्थन मिला।
- आंदोलन के दौरान हिंसक और त्रासद घटनाएं भी हुईं। बहुत-से लोगों को जान गंवानी पड़ी और धन-संपत्ति का नुकसान हुआ। आंदोलन के दौरान रेलगाड़ियों की आवाजाही तथा बिहार स्थित बरौनी तेलशोधक कारखाने को तेल-आपूर्ति रोकने की भी कोशिश की गई।

समझौता एवं विराम

छह साल की सतत् अस्थिरता के बाद राजीव गांधी के नेतृत्व वाली सरकार ने **'आसू'** के नेताओं से बातचीत शुरू की। इसके परिणामस्वरूप वर्ष 1985 में एक समझौता हुआ। समझौते के अंतर्गत तय किया गया कि जो लोग बांग्लादेश-युद्ध के दौरान अथवा उसके बाद के सालों में असम आए हैं, उनकी पहचान की जाएगी और उन्हें वापस भेजा जाएगा।

- आंदोलन की कामयाबी के बाद 'आसू' और असम गण-संग्राम परिषद् ने साथ मिलकर अपने को एक क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टी के रूप में संगठित किया। इस पार्टी का नाम 'असम गण परिषद्' रखा गया।

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE

- असम गण परिषद् वर्ष 1985 में इस वायदे के साथ सत्ता में आई थी कि विदेशी लोगों की समस्या को सुलझा लिया जाएगा। और एक 'स्वर्णिम असम' का निर्माण किया जाएगा।
- असम-समझौते से शांति कायम हुई और प्रदेश की राजनीति का चेहरा भी बदला लेकिन 'अप्रवास' की समस्या का समाधान नहीं हो पाया। 'बाहरी' का मसला अब भी असम और पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों की, राजनीति में एक जीवंत मसला है। यह समस्या त्रिपुरा में ज्यादा गंभीर है क्योंकि यहां के मूल निवासी खुद अपने ही प्रदेश में अल्पसंख्यक बन गए हैं। मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश के लोगों में भी इसी भय के कारण चकमा शरणार्थियों को लेकर गुस्सा है।

समाहार और राष्ट्रीय अखण्डता

इन मामलों से पता चलता है कि आजादी के साढ़े छह दशक बाद भी राष्ट्रीय अखण्डता के कुछ मसलों का समाधान पूरी तरह से नहीं हो पाया है। हमने देश कि क्षेत्रीय आकांक्षाएं लगातार एक न एक रूप में उभरती रहीं। कभी कहीं से अलग राज्य बनाने की मांग उठी तो कहीं आर्थिक विकास का मसला उठा। कहीं-कहीं से अलगाववाद के स्वर उभरे। वर्ष 1980 के बाद के दौर में भारत की राजनीति की क्षमता की परीक्षा हुई।

- **पहला** और बुनियादी सबक तो यही है कि क्षेत्रीय आकांक्षाएं लोकतांत्रिक राजनीति का अभिन्न अंग हैं। क्षेत्रीय सूबे की अभिव्यक्ति कोई असामान्य अथवा लोकतांत्रिक राजनीति के व्याकरण से बाहर की घटना नहीं है। ग्रेट ब्रिटेन जैसे छोटे देश में भी स्कॉटलैण्ड, वेल्स और उत्तरी आयरलैण्ड में क्षेत्रीय आकांक्षाएं उभरी हैं।

  स्पेन में बास्क लोगों और श्रीलंका में तमिलों ने अलगाववादी मांग की। भारत एक बड़ा लोकतंत्र है और यहां विभिन्नताएं भी बड़े पैमाने पर हैं। अत: भारत को क्षेत्रीय आकांक्षाओं से निपटने की तैयारी लगातार रखनी होगी।
- **दूसरा** सबक यह है कि क्षेत्रीय आकांक्षाओं को दबाने की जगह उनके साथ लोकतांत्रिक बातचीत का तरीका अपनाना सबसे अच्छा होता है। जरा अस्सी के दशक की तरफ नजर दौड़ाएं- पंजाब में उग्रवाद का जोर था। पूर्वोत्तर में समस्याएं बनी हुई थीं। असम के छात्र आंदोलन कर रहे थे और कश्मीर घाटी में माहौल अशांत था।
- इन मसलों को सरकार ने क्षेत्रीय आंदोलनों के साथ समझौता किया। इससे सौहार्द का माहौल बना और कई क्षेत्रों में तनाव कम हुआ। मिजोरम के उदाहरण से पता चलता है कि राजनीतिक सुलह के जरिए अलगाववाद की समस्या से बड़े कारगर तरीके से निपटा जा सकता है।
- **तीसरा** सबक है सत्ता की साझेदारी के महत्व को समझना। सिर्फ लोकतांत्रिक ढांचा खड़ा कर लेना ही काफी नहीं है। इसके साथ ही विभिन्न क्षेत्रों के दलों और समूहों को केन्द्रीय राजव्यवस्था में हिस्सेदार बनाना भी जरूरी है। ठीक इसी तरह यह कहना भी नाकाफी है कि किसी प्रदेश अथवा क्षेत्र को उसके मामलों में स्वायत्तता दी गई है। क्षेत्रों को मिलाकर ही पूरा देश बनता है। इसकी कारण देश की नियति के निर्धारण में क्षेत्रों की बातों को वजन दिया जाना चाहिए। यदि राष्ट्रीय स्तर के निर्णयों में क्षेत्रों को वजन नहीं दिया गया तो उनमें अन्याय और अलगाव का बोध पनपेगा।
- **चौथा** सबक यह है कि आर्थिक विकास के एतबार से विभिन्न इलाकों के बीच असमानता हुई तो पिछड़े क्षेत्रों को लगेगा कि उनके साथ भेदभाव हो रहा है। भारत में आर्थिक विकास प्रक्रिया का एक तथ्य क्षेत्रीय असंतुलन भी है। ऐसे में स्वाभाविक है कि पिछड़े प्रदेशों अथवा कुछ प्रदेशों के पिछड़े इलाकों को लगे कि उनमें पिछड़ेपन को प्राथमिकता के आधार पर दूर किया जाना चाहिए। वे यह भी कह सकते हैं कि भारत सरकार ने जो नीतियां अपनायी हैं उसी के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हुआ है। अगर कुछ राज्य गरीब रहे और बाकी तेजी से प्रगति करें तो क्षेत्रीय असंतुलन पैदा होगा। साथ ही, अंतर्प्रान्तीय अथवा अंतर्क्षेत्रीय आप्रवास में भी बढ़ोत्तरी होगी।

भारत का संवैधानिक ढांचा ज्यादा लचीला और सर्वसमावेशी है। जिस तरह की चुनौतियां भारत में पेश आयीं वैसी कुछ दूसरे देशों में भी आयी लेकिन भारत का संवैधानिक ढांचा अन्य देशों के मुकाबले भारत को विशिष्ट बनाता है। क्षेत्रीय आकांक्षाओं को यहां अलगाववाद की राह पर जाने का मौका नहीं मिला। भारत की राजनीति ने यह स्वीकार किया है कि क्षेत्रीयता, लोकतांत्रिक राजनीति का अभिन्न अंग है।

❑❑❑

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE FOREVER ABOVE ESTD 2005

अभ्यास-प्रश्न (व्याख्यात्मक)

1. कश्मीर समस्या क्या थी? इसे हल करने का किस प्रकार प्रयास किया गया। व्याख्या करें।

(200 शब्द)

2. 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' से आप क्या समझते है? पंजाब की समस्याओं के संदर्भ में इसे परिभाषित करें।

(200 शब्द)

3. स्वतंत्रता के पश्चात् पूर्वोत्तर भारत में हुए बदलाव पर चर्चा कीजिए। ये बदलाव कहाँ तक वहाँ के विकास में उत्तरदायी है।

(200 शब्द)

4. अलगाववाद लोकतंत्र में अस्थिरता लाता है। नागालैण्ड के संदर्भ में इस कथन को समझाइए।

(200 शब्द)

5. वर्ष 1948 के पश्चात भारतीय राजनीति पर कांग्रेस के प्रभुत्व का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

(200 शब्द)

PARAMOUNT IAS Mission A SEGMENT OF PARAMOUNT LEAGUE
FOREVER ABOVE ESTD 2005